ੴ

श्री वाहेगुरु जी की फतह ॥

श्री गुरू नानक चमत्कार

(पहला भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू नानक चमत्कार

(पहला भाग)

अर्थात्

जीवन चरित्र

साहिब श्री गुरू नानक देव जी

जैसा कि

उनके चरणों को प्राप्त पुरुषों के प्रसंगों द्वारा विदित हुआ

लेखक

भाई साहिब डा० वीर सिंह

'सुन्दरी', 'राणा सूरत सिंघ' इत्यादि ग्रन्थों के प्रणेता

२००१

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू नानक चमत्कार (पहला भाग)
भाई साहिब भाई वीर सिंह

© भाई वीर सिंह साहित्य सदन, नई दिल्ली
हिन्दी में प्रथम संस्करण : १९६२
द्वितीय संस्करण : २००१

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली
मूल्य : ८०/-

प्रकाशकीय

संत कवि भाई साहिब डा: वीर सिंह जी की इस रचना 'श्री गुरू नानक चमत्कार' को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अति हर्ष हो रहा है। इस रचना का हिन्दी में प्रथम प्रकाशन १९६२ में हुआ था। मूल रूप में 'श्री गुरू नानक चमत्कार' पंजाबी भाषा में दो भागों में प्रकाशित है। हिन्दी में इसी रचना के चार भाग बना दिये गये हैं।

भाई साहिब डा: वीर सिंह जी पंजाबी साहित्य के एक सर्वतोमुखी मूर्धन्य साहित्यकार हैं, जिन्होंने पंजाबी काव्य एवं भाषा को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। 'श्री गुरू नानक चमत्कार' भाई साहिब जी की गद्य-रचना है। इसमें श्री गुरू नानक देव जी का जीवन-वृत्तान्त है। भाई साहिब की इच्छा थी कि समानता के उपदेशक, ईश्वर प्रेमी, जगततारक गुरू नानक देव जी की जीवन-लीलाओं एवं उपदेशों को पंजाबी भाषा से अपरिचित अन्य भारतवासियों तक भी पहुँचाया जाए। इस दृष्टि से भाई वीर सिंह साहित्य सदन की ओर से यह प्रयास किया गया है।

अनुवाद मूल रचना की अपेक्षा एक कठिन कार्य है। पर इसको सफल बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा और शैली अत्यन्त सरल रखी गई है, जिससे साधारण पाठक भी पूरा लाभ उठा सकें। बहुत सीमा तक मूल लेखक की ही भाषा ले ली गई है। मूल रचना में आए प्रचलित फ़ारसी और अरबी के कुछ शब्द भी ले लिए गये हैं। गुरूवाणी की प्रामाणिकता बनाए रखने की दृष्टि से उन्हें गुरूमुखी से ज्यों का त्यों देवनागरी लिपी में दे दिया गया है।

हमारा विश्वास है कि भाई साहिब भाई वीर सिंह जी की मूल रचना का यह अनुवाद हिन्दी पाठकों को भी उसी तरह उत्प्रेरित करेगा, जैसे कि यह पंजाबी पाठकों को करता आया है।

डा: जसवंत सिंह नेकी
आनरेरी जनरल सैक्रेटरी

भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
नई दिल्ली।

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
अरशों से तलवंडी		
१. उच्च खण्डों के कौतुक		**१**
१. ऊँची उड़ान	...	२
२. अनाद; आदि । गुरू नानक	...	६
३. जगत उत्पत्ति	...	१६
४. मातृलोक से सचखण्ड	...	२०
५. सचखण्ड से मातृलोक	...	२६
६. स्वागत सेहरा (कविता)	...	३६
२. प्यारे के बाल-कौतुक		
१. अवतार	...	३८
२. पाण्डेय	...	४७
३. पण्डित	...	५१
४. मुल्ला	...	५३
५. भैंसें	...	५७
६. न्याय	...	५८
७. जनेऊ	...	६३
३. प्यारे के कुमार-चरित		**६६**
१. ध्वनि सुनाई देती है	...	६६
२. छाया का न फिरना	...	६९
३. लवलीनता	...	७२
४. वैद्य	...	७५
४. खरा सौदा		**७८**
१. दिलगीरी	...	७८
२. प्रफुल्लता	...	८५
३. माया	...	८६
४. सौदागरी	...	८८
५. खेद	...	९१
६. प्यार	...	९५
७. गीत	...	९८

तलवंडी से सुलतानपुर

५.	**अदेशी नूर सुलतानपुर में**		**१००**
	१. तलवण्डी से विदाई	...	१००
	२. मोदीखाना	...	१०३
६.	**भाई भगीरथ**	...	**१०५**
७.	**सुलतानपुर से तैयारी**		**१२३**
	१. वाहिगुरू प्रेम	...	१२३
	२. गुरू-रूप होकर अकाल पुरुष मिले और वरदान मिला	...	१२५
	३. मसजिद	...	१३२
	(क़) हुज़ूरी में पाठ करो	...	१३५
	(ख) एकेश्वर का स्मरण	...	१३७
	(ग) सब जीवों पर दयालुता	...	१३८
	४. सुलतानपुर से विदाई	...	१३९

उदासीयाँ

८.	**उदासी की तैयारी**		**१४३**
	मलिक भागो--भाई लालो		
	१. भाई लालो	...	१४३
	२. मलिक भागो	...	१४५
९.	**फिर तलवण्डी**		**१५३**
	१. तुलसां दासी का निस्तार	...	१५४
१०.	**सज्जन ठग**		**१५७**
	१. हड़प्पे की साखी	...	१५७
	२. सज्जन का घर	...	१६१
	३. सज्जन के घरों में निमन्त्रण	...	१६५
	४. कृपा । पहला धर्म संस्थान	...	१६७
	५. भाई सज्जन	...	१७३
	बताओ किसके हैं ये नैन ? (कविता)	...	१७४
११.	**गुरू बाबा का टीला**	...	**१७८**
१२.	**तारनहार जी की हरिद्वार की फेरी**	...	**१८२**
१३.	**गंगा यात्रा**	...	**१८६**
१४.	**कुरुक्षेत्र का सूर्य-ग्रहण**	...	**१८८**
१५.	**मनसुख और शिवनाभ**	...	**१९३**
१६.	**पानीपत**	...	**१९६**
१७.	**दिल्ली**	...	**२००**

१ ओंकार

श्री वाहिगुरू जी की फतह

अरशों से तलवंडी

१ उच्च खण्डों के कौतुक

पहली विनती

यह जो-कुछ हम अपने नेत्रों से चारों ओर देखते हैं वह केवल उतना ही नहीं है और न उतने ही पर समाप्त हो जाता है । इसके अन्तर्गत कुछ और भी है और इससे परे भी कुछ और है । यह जो-कुछ हमें दृष्टिगोचर हो रहा है यह वैसा ही है जैसा हमें दिखाई देता है यहा किसी अन्य प्रकार का; इस तथ्य का भी हमें कोई ज्ञान नहीं है । इसमें हमारे अन्तस् का, जो इसके स्वरूप का ज्ञान हमें कराता है, कुछ अपना भाग भी है । अतएव इसे यह समझना कि जैसा मैं देखता हूँ यह वैसा ही है और इसके परे कुछ भी नहीं अर्थात् इसका यहीं पर अन्त है, भूल है। हमें इस तथ्य की जिज्ञासा करनी चाहिए कि जितना दृश्यमान जगत हमें अपने इन चक्षुओं से दिखाई देता है वह उतना ही है अथवा इससे परे और इसके अन्तर्गत भी कुछ है । जाँच-पड़ताल किए बगैर इस महत्वपूर्ण तथ्य से अपना मुख फेर लेने से यह 'न' नहीं हो जाता[1] और न इस महत्वपूर्ण शंका का समाधान ही हो सकता है ।

किसी स्त्री का पति परदेस में है । बहुत दिन हो गए उसका कोई पत्र नहीं आया । पत्नी झरोखे में प्रतीक्षातुर बैठी है । थोड़ी देर में उसके नेत्र मुँद जाते हैं और वह एक झोंका लेती है । उसे उस अवस्था में दिखाई देता है कि उसका पति प्रवास से वापस आ रहा है । वह समय के ज्ञान के लिए घड़ी देखती है और उसे ऐसा लगता है कि बारह बजे हैं । इसके पश्चात् उसकी आँखें खुल जाती हैं, और जब वह घड़ी की ओर दृष्टिपात करती है तो देखती है कि अभी आठ ही बजे हैं । उसे स्वप्न देखकर कुछ ऐसा आभास होता है कि उसका पति बारह बजे आयेगा । प्रतीक्षातुर वह बैठी रहती है । ठीक बारह बजे उसका पति वापस आ जाता है । यह ज्ञान, जो उस स्त्री को मिला कि उसका पति बारह बजे आ जायगा उस प्रकार का नहीं जैसा तार अथवा पत्र द्वारा प्राप्त होता है । इसी प्रकार के अनेकों चमत्कार प्रति घड़ी होते रहते हैं जिनसे इस तथ्य का आभास मिलता है कि हमारी ज्ञात सीमाओं से परे अथवा उसकी परिधि से बाहर कुछ और ज्ञातव्य भी है। हमारा अपने 'इन्द्रिय ज्ञान' को ही ज्ञान की सीमा मान लेना उचित नहीं । यह एक सीमा अवश्य है परन्तु है मात्र हमारे 'इन्द्रिय ज्ञान की सीमा' ही और जो कुछ वास्तविक है, चाहे वह उस सीमा के आगे, परे अथवा अन्तर्गत कहीं भी है, यह सीमा उसकी सीमा कदापि नहीं है । उस दशा, देश[2] अथवा ठिकाने का व्यौरा अन्य प्रकार का है । हमारे मन की सामर्थ्य अपनी साधारण या वर्तमान दशा में उस सीमा

---

१. ''नाना करत न छूटीऐ विणु गुण जम पुरि जाहि ।'' [दखिणी ओअंकार]

२. देश – Space.

तक पहुँचने की नहीं होती है । परन्तु कभी-कभी किसी घड़ी में एकाग्रता की कोई स्थिति अथवा आन्तरिक भावों को आत्मविभोर कर देने वाली कोई हिलोर या डुबकी हमें उस स्थिति में पहुँचाकर उसके कुछ संस्कार ग्रहण कर लेती है । वहाँ समय की तीन अवस्थाएँ—भूत, वर्तमान और भविष्य—नहीं होती हैं । देश की न जाने कितनी अवस्थाएँ होती हैं और अन्त में वह 'अवस्थाहीन' तथा 'अदेश' हो जाता है । अदेश तथा अकाल से इधर खण्ड दर खण्ड हैं । जो कुछ 'है' उससे परे भी बहुत कुछ शेष रहता है । वहाँ के निम्न-से-निम्न स्थान, और रंग-रूप तथा सामान दूसरी प्रकार के हैं । हमारी भाषा में उसे व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं हैं । हमारे मन के लिए वह विचारातीत है तथा उसके रूप को हमारी इन्द्रियजन्य शक्तियाँ ग्रहण नहीं कर सकतीं । अतएव 'जिस प्रकार जो कुछ वहाँ पर है' उसके सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता । जब भी उसके सम्बन्ध में कुछ कहने का प्रयास किया जाएगा वह मानव भाषा, मानव शब्द तथा मानव विचारों की पहुँच तक ही सीमित होगा । इसलिए उक्त विषय में जो कुछ कहा जाय उसका भाव सूक्ष्म अवस्था में थोड़ा अति उच्च्य मानकर ग्रहण कर लिया जाय तो ही उचित है । अक्षरी अर्थों में इसके भावार्थ को समझने का प्रयास भूल होगी । वास्तव में वह तो वहाँ के रंग-रूप तथा पदार्थों का हमारे विचारानुसार भाषा में प्रकटीकरण का प्रयास मात्र है ।

आगे के पृष्ठों में श्री गुरू नानक देव जी का सच खण्डवासी होना, तत्पश्चात् किसी प्रेम तथा भक्ति की तरंगों में निमग्न होना, अदेश अकाल अनन्त में होना, और किसी उच्च्य उपकार की भावना के हेतु इस संसार में अवतरित होना इत्यादि चमत्कार लिखे गए हैं । ये समस्त चमत्कार मनुष्य की भाषा में मानवजनों को समझाने के लिए उन्हीं के विचारों के रूप में वर्णन किए गए हैं । यह अकथनीय को कथनीय करने का प्रयास है, तथा जिन विचारों तक अपनी पहुँच नहीं हो सकती है उन्हें मूर्तिमान करने का प्रयत्न है ।

१. ऊँची उड़ान

कीर्तन—वाहिगुरू का कीर्तन, हाँ स्वर, ताल, साज, सुन्दर, सुरीले गले और प्यार से भीगे मन का कीर्तन—एक जादू है जो मन को मन से उठाकर रस-रंग में भिगो देता है और लौ के मण्डलों में उड़ान लगवा देता है । कीर्तन हो रहा है— उस वाणी का कीर्तन जो अदेश से आई है और सुन्दर, स्वच्छ तथा साफ मनों में उतरकर समा गई है । प्रातःकाल की अमृत बेला है, प्रकृति स्थिर है और चारों और शान्ति का वातावरण छाया है । इस बेला में इस ईश्वरीय वाणी का कीर्तन एक आश्चर्यजनक प्रभाव डाल रहा है । कीर्तन सुनते ही बाहरी पसारा भूल गया, मन अपने में आया, निज से ऊपर उठा और रस में डूब गया ।[1] 'धन्य गुरू नानक ! धन्य गुरू नानक ! धन्य गुरू नानक की अन्तर में एक छनकार-सी हुई और एक मीठी-मीठी कँपकँपी आई । उधर मीठे-मीठे कण्ठों तथा भीने साजों से कानों में कीर्तन सुनाई पड़ता है इधर हृदतन्त्री 'धन्य गुरू नानक' की मीठी ध्वनि में काँप-काँप उठती है :—

१. मेरे मन-मन ही उलट समाना । गुरु परसादि अकलि भई अवरै नतरु था बेगाना ।।

[गऊड़ी कबीर ३-४७]

सतिगुरु के चरन धोइ धोइ पीवा ।
गुरु नानक जपि जपि सद जीवा ।। [भैरो महला ५-५६]

हाँ जी ! धन्य गुरू नानक, धन्य गुरू नानक, धन्य गुरू नानक की प्यारी ध्वनि जिह्वा, मन तथा सारे शरीर में से एक बार फिर निकली । मन जुड़ा गया, रससिक्त हो गया, बदल गया, न जाने क्या हो गया, परन्तु रंग है और रस है । फिर दर्शन—आश्चर्यजनक दर्शन हुए । पहिले तो निमग्नता थी परन्तु अब कुछ दीख रहा है । हाँ, अब जो-कुछ दीख रहा है वह सुन्दरता है और रमणीयता है । उसमें भीनी-भीनी सुगन्ध है जिसमें 'आपा' रस-रूप होकर उमंगित होता है, और कुछ प्यार-सा उत्पन्न होता है । किसके साथ ? इसका कोई ज्ञान नहीं, परन्तु कुछ प्यार-प्यार-सा अनुभव होता है । यह प्यार अन्तस् में है, या प्यार की फुहार है अथवा यह मण्डल ही प्यार-मय है इसका कुछ पता नहीं परन्तु प्यार-प्यार, रस-रस तथा आनन्द-आनन्द अपने-आप उमंगित होता है । फिर किसी समय बाहर की ओर विचार जाने पर ऐसा प्रतीत होता है माना सहस्त्रों आकाशों को लांघकर किसी उच्चतम स्थान पर पहुँच गए हैं ।[१]

अब चारों ओर नजर दौड़ी । खण्ड, मण्डल, सूर्य, चन्द्र और ग्रह इत्यादि इस प्रकार दिखाई देने लगे जैसे विस्तृत महल्ला है परन्तु है बहुत-बहुत बड़ा । उसमें अनन्त सृष्टियाँ, अगणित सूर्य, जिनके आश्रय में ग्रह, उपग्रह तथा पुच्छलतारे श्रेणीक्रम और नियमानुसार चल रहे थे । ये सब इस प्रकार दृष्टिगोचर हुए मानो आँखों के समक्ष प्रत्यक्ष हो रहे हों । वहाँ ज्ञान क्या करे[२] बुद्धि पराजित होकर यह कहती है :

भै विचि सूरजु भै विचि चन्दु ।
कोह करोड़ी चलत न अन्तु ।। [वार आसा महला २]

इस समय बुद्धि उन सृष्टियों के समझने का यत्न करती रहती, रस-मग्नता के हिलोरों तथा अदेशी गीतों के रस में हिलोरें खाती-खाती कुछ ऐसा अनुभव करती है और मानो यह आवाज आती है :—

अपि सति कीआ सभु सति ।
आपे जाने अपनी मिति गति ।।

---

१. निरालम्ब निरबाण चलाइआ ।
उड़ै हंस उचाण किन पहुँचाइआ ।। [वारां भाई गुरुदास २२-२]
ऊडां ऊडि चड़ां असमानि ।।
साहिब संम्रिथ तेरै ताणि ।। [मलार महला १, ४६]

२. ओइ जु दीसहि अंबरि तारे ।। किनि ओइ चीते चीतनहारे ।।१।।
कहु रे पण्डित अंबरु का सिउलागा ।। बूझै बूझनहारु सभागा ।।१।। रहाऊ ।।
सुरज चन्दु करहि उजीआरा ।। सब मंहि पसरिआ ब्रहम पसारा ।।२।।
कहु कबीर जानैगा सोइ ।। हिरदै रामु मुख रामै होइ ।।३।। [गऊड़ी कबीर जी]

जिसकी सृिसटि सु करणैहारु ।
अवर न बूझि करत वीचारु ।।
करते की मिति न जानै कीआ ।
नानक जो तिसु भावै सो वरतीआ ।।७।। [सुखमनी महला ५-१६]

कुछ समय पश्चात् यह शब्द भी सुनाई न दिया । एक सन्नाटा-सा छा गया । अब संसार के समस्त पदार्थ नगर इत्यादि आँखों के आगे आने लगे । इन्द्रपुरी, शिवपुरी, ब्रह्मपुरी आदि जिन लोकों को कहा गया है और जितना सुन्दर उन्हें बताया गया है, उनसे भी कहीं अधिक मनमोहक पुरी आदि वहाँ उपस्थित दीख पड़ी । एक ओर बड़े शूरवीर तपस्वी लोग खड़े हैं, दूसरी ओर हर प्रकार की शक्तियाँ खड़ी हैं । समस्त संसार के सुन्दर द्रव्य पैरों के नीचे पड़े हैं । एक सिंहासन मानो हीरकजड़ित पड़ा है । राग-रागनियाँ आलाप कर मन को खींच रहे हैं । अठारह सिद्धियाँ नौ निधियाँ नथा सब रिद्धियाँ खड़ी हैं और समस्त देवता उपस्थित हैं ।

'यह रिद्धियों, सिद्धियों का देश है । सतगुरू जी ने सिद्धियों के बारे में मना किया है ।'[1]

इसलिए सारवस्तु दाता गुरुमुख संत की खोज करना ही आवश्यक वस्तु है । सतनाम ही रिद्धि सिद्धि, नौ निधि है, और सब रिद्धिओं सिद्धओं को मन की पकड़ से दूर रखना ही उचित और योग्य कर्म है । इस प्रकार का विचार आते ही समस्त दृष्ट पदार्थ उदास हो गए, सुन्दरता का प्रभाव उड़ने लगा और कहीं दूर से निम्न ध्वनि सुनाई दी :

इन्द्र लोक सिव लोकहि जैबो ।।
ओछे तप करि बाहुरि ऐबो ।।१।।
किआ माँगऊ किछु थिरु नाही ।।
राम नाम रखु मन माही ।।१।। रहाऊ ।।
सोभा राज बिभै बडिआई ।।
अंति न काहू संग सहाई ।।२।। [धनासरी कबीर जी]

---

१. रिधि सिधि सभु मोहु है, नामु न वसै मनि आइ । [महला ३]
तिआगि सुआमी आन कऊ चितवत मूड़ मुगध खल खर ते ।।
कागर नाव लंघहि कत सागरु ब्रिथा कथत हम तरते ।।२।।
सिव बिरंचि असुर सुर जेते काल अगनि महि जरते ।।
नानक सरनि चरन कमल की तुम न डारहु प्रभु करते ।।३।।४।। [मलार महला ।।५।। चउपदे घरु ।।१।।]
ब्रहम लोक अरु रुद्र लोक आई इन्द्र लोक ते धाइ ।
साधसंगति कऊ जोहि न साकै मलि मलि धोवै पाइ ।।
अब मोहि आइ परिओ सरनाइ ।
गुहज पावको बहुतु प्रजारै मो कऊ सतगुरु दीओ है बताइ ।।१।। रहाऊ ।।
सिध साधिक अरु जख किन्नर नर रही कंठि उरझाइ ।।
जन नानक अंगु कीआ प्रभि करतै जा कै कोटि ऐसी दासाइ ।।१२।।२१ [गुजरी महला ५]

इस शब्द के उच्चारण होते ही वह झाँकी लोप हो गई और एक दिव्य ज्योति-गुरुमुख-दृष्टिगत हुए[1] जो अपने प्रकाशमान मुख मण्डल से भी अधिक शक्तिशाली सिंह दिखते थे । अश्रुपूर्ण नेत्रों से सीस झुकाया तो बोले :[2]

आपण लाइआ पिरमु न लगई जे लौचे सभु कोइ ।
इहु पिरमु पियाला खसमु का जै भावै तै देइ ।।१३।। [सलोक फरीद]

उस सच्चे की मौज का कोई अन्त नहीं । धन्यवाद करो, धन्यवाद । सब कुछ भूल जाय परन्तु धन्यवाद न भूले । यदि कोई सेवा न कर पाये या अन्य कोई शुभ कर्म न हो सके तो धन्यवाद दे । सच्चा ईश्वर धन्यवाद से बहुत अधिक प्रसन्न होता है । धन्यवाद कहो, धन्यवाद कहो, तथा मुख से 'वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू कहो :

ध्वनि आई :

"सति साचु श्रीनिवासु आदि पुरखु सदा तुही,
वाहिगुरू, वाहिगुरू, वाहिगुरू वाहि जीऊ[3] ।।३।।८।।

फिर ध्वनि हुई :

गावऊ गुन परम गुरू सुख सागर दुरत निवारण शबद सरे ।।
गावहि गंभीर धीर मति सागर जोगी जंगम धिआनु धरे ।।
गावहि इन्द्रादि भगत प्रहलादिक आतम रसु जिनि जाणिओ ।।
कबि कल सुजसु गावऊ गुरू नानक राज जोगु जिनि माणिओ ।।२।।

[सवैये महले पहले के]

यह स्तुति गाते-गाते आपसे भेंट हुई और भेंट होते-होते आप अलोप हो गए और चारों ओर इस ध्वनि का प्रसार होने लगा :

'धन्य श्री नानक ।'
'धन्य गुरू नानक ।'
'धन्य गुरू नानक ।'

अब वह सब कुछ जिसे "है" कहा जा सकता है गुम-सा होने लगा ।

तह पावस सिंधु धूप नहीं छहीआ तह उतपति परलऊ नाही ।।
जीवन मिरतु न दुख सुख बिआपै सुन्न समाधि दोऊ तह नाही ।।१।।

---

१. गुरुमुख हरि दर सोभा पाए ।। [माझ महला ३]

२. आपे मेले आपि मिलाए । आपणा पिआर आपे लाए ।
प्रेम की सार सोई जाणै जिस नो नदरि तुहारी जीओ ।। [मारू माला ३ घर ५ असटपदीया]

३. सेवक कै भरपूर जुगु जुगु वाहगुरू तेरा सभु सदका ।।
निरंकारु प्रभु सदा सलामति कहि न सकै कोऊ तू कद का ।।
ब्रहमा बिसनु सिरे ते अगनत तिन कऊ मोहु भया मन मद का ।।
चवरासीह लख जोनि उपाई रिजकु दीआ सभ हू कउ तदका ।।
सेवक कै भरपूर जुगु जुगु वाहगुरू तेरा सभु सदका ।।१।।११।। [सवैये महले ४ के]

सहज की अकथ कथा है निरारी ।।
तुलि नही चढै जाइ न मुकाती हलुकी लगै न भारी ।।१।। रहाऊ ।।
अरध उरध दोऊ तह नाही राति दिनसु तह नाही ।
जल नही पवनु पावकु फुनि नाही सतगुर तहा समाही ।।२।। [गऊड़ी कबीर जी]

इस अकथनीय अवस्था से स्थिति में पुनः परिवर्तन हुआ । दृष्टि खुली और बाह्य दृश्य फिर से दृष्टिगत हुए, मानो समस्त ब्रह्माण्ड दिखाई देने लगे ।[1] विशेषकर भारतवर्ष की ओर दृष्टि अधिक आकर्षित होने लगी ।

अब क्या देखते हैं कि जिस प्रकार रेल के इंजन की एक कल फेर देने से गाड़ी की गति विपरीत हो जाती है उसी तरह मानो ब्रह्माण्ड का कालचक्र[2] उल्टा हो गया है ।

आज से कालचक्र उल्टी चाल चला । अस्सी-नब्बे वर्षों की घटनायें मूर्ति की भाँति प्रत्यक्ष दिखाई देने लगीं । फिर महाराजा रणजीतसिंह के अन्तिम समय की घटनायें दृष्टिगत होने लगीं । फिर महाराजा रणजीतसिंह का राज्य दिखाई दिया और चालीस वर्षों की घटनायें नेत्रों के सामने इस प्रकार घूम गईं जैसे सिनेमा के चित्र । इसके पश्चात् भारत की घबराहट सिक्खों के युद्ध, यवनों के अत्याचार, मरहठों से लोहा लेना तथा तुर्कों, पठानों की ओर से झगड़े-फसाद दिखाई दिए । फिर भृकुटि चढ़ाए सिंहासनारूढ़ औरंगजेब दिखाई दिया । जगद्गुरु श्री गोबिन्द सिंह जी के कष्ट, जगत् का उन्हें मात्र एक मनुष्य समझना, प्रेमियों का उन पर सर्वस्व बलिदान कर देना तथा गुप्त सन्तों का आनन्दित होना साक्षात् दृष्टिगोचर हुआ । इसके पश्चात् मुगलवंश के समस्त प्रारम्भिक शासक—शाहजहाँ, जहाँगीर, अकबर, हुमायूँ तथा बाबर– दृष्टिगत हुए । उनका शासनकाल वास्तविक रूप धारण कर नेत्रों के सम्मुख मूर्त रूप होकर चला गया। नौवें गुरू महाराज का समय दृष्टिगत हुआ । श्री गुरू नानक देव जी का सृष्टि पर उपकार करना तथा देशाटन करना इत्यादि सब-कुछ दृष्टिगत हुआ । फिर पठानों का समय, लोदी, सैयद, खिलजी तथा गुलामवंश के शासकों का शासनकाल दिखाई दिया । इसके बाद अत्याचारी महमूद का अनाथों को कष्ट देने के लिए ग़ज़नी से कूच करना, और भारत का एकत्रित होकर उससे लोहा लेने के लिए तैयार होना तथा भारतीय स्त्रियों का देश की रक्षा के लिए अपने आभूषण बेंचकर तथा परिश्रम कर प्राप्त किए धन को शासकों को सौंप देना दिखाई दिया । थोड़ी देर बाद हिन्दुओं एवम् बौद्धों में संघर्ष होता दिखाई दिया । बौद्धों के जहाज़ों-के-जहाज़ भरकर डुबाए जाते दिखाई दिए । बौद्धों का शासन, महाराज हर्ष का शासन, अशोक का दयापूर्ण शासन, चन्द्रगुप्त का तेज प्रताप तथा शास्त्रों का युग दृष्टिगत हुआ । इसके बाद वैदिक सिद्धान्तों के अनुयायी ऋषि मुनियों के दर्शन हुए । भारत की स्वतन्त्रता, वीरता, सचाई और धर्म आँखों के आगे आए तथा राजप्रताप के दर्शन हुए । इसके पश्चात् सनातन पूर्वजों के गोपाल[3]

१. बाजीगर इक बाजी पाई । पूरे गुरू ते नदरी आई ।। [मारू सोलहे महला ३-१८, ३]

२. समय भूतकाल दिखाने लगा ।

३. जिस समय आर्य जाति भेड़ें, बकरीयाँ तथा गायें इत्यादि पालकर उनके दुग्ध पर निर्वाह करते थे उस समय को 'गोपाल जीवन' कहते हैं ।

जीवन दृष्टिगत हुए। सब लोग देवताओं का यशोगान करते, स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन निर्वाह करते और गउओं का पालन-पोषण करते हुए दिखाई दिए। उस समय राजा व प्रजा का भेद न था। परिवार का बड़ा-बूढ़ा ही कुल का गुरू और शासक था। आपस की समस्याओं का समाधान पंचायत द्वारा कर लिया जाता था। पंचायत का निर्णय कार्यसिद्धि में सहायक होता था। इसके बाद सुदूर स्थानों से भारत में विभिन्न दलों का आना दिखाई दिया। फिर इस धरती पर समस्त मनुष्य जाति अपनी आदिम असभ्य दशा में दिखाई दी। न घर-बार न विवाह-शादी, कोई सामाजिक जीवन नहीं। शिकार मारा और खा लिया। इस काल के अनेक कौतुक दृष्टिगत हुए।

इसके पश्चात् सुनसान जैसा दिखाई दिया। समस्त पृथ्वी तापमय कीचड़ की भाँति प्रतीत हुई। फिर भूत-पिशाच की भाँति विशाल आकार वाले बड़े-बड़े पशु दिखाई दिए। फिर इससे भी बड़ी सृष्टि का विकराल रूप तथा गर्मी की तीव्रता नेत्रों के सम्मुख आकर विलीन हो गई। धरती लाल-लाल अंगारों की भाँति हो गई वैसी ही जैसा कि आजकल सूर्य है तथा समस्त ग्रह अग्नि की भाँति धधक रहे हैं, कई बड़े टुकड़े से पृथक् हो रहे हैं, कोई किसी और खिंच रहा है कोई किसी दूसरी ओर। इसके पश्चात् दिखाई दिया कि सभी अग्नि के ही पिण्डाकार रूप हैं। इसके बाद भीषण कोलाहल करते हुए समस्त पदार्थ कणों के रूप में पसर रहे हैं। फिर सब पदार्थ वायुरूप में आ गए। इसके बाद वायु भी न रही और एक प्रकार का धुन्धकार-सा चारों ओर छा गया। कहीं कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता और न इसी बात का आभास मिला कि यह सब-कुछ कहाँ विलीन हो गया। परन्तु दम मारने की भी जगह नहीं है। कौन सोचे विचार करे, कौन कहे और किससे कहे ? यह धुन्धकार इतने समय तक रहा कि इसे हमारी स्थूल बुद्धि को बोधगम्य करने के लिए सतगुरू जी ने छत्तीस युग कहा है :—

"जुग छतीह कीओ गुबारा ।।
तू आपे जाणहि सिरजणहारा ।।
होर किआ को कहै कि आखि
वखाणै तू आपे कीमत पाइदा ।। [मारू सोलहे महला ३-१८]

पुन :-

केते जुग वरते गुबारै ।।
ताड़ी लाई अपर अपारै ।।
धुन्धूकार निरालमु बैठा ना तदि धंधु पसारा हे ।।१।।
जुग छतीह तिनै वरताए ।
जिऊ तिसु भाणा तिवै चलाए ।
तिसहि सरीकु न दीसै कोई आपै अपर अपारा हे ।।२।। [मारू सोलहे महला १]

पुन :-

जुग छतीह गुबारु तिस ही भाइआ ।। [वार मलार महला १-६]

इस दशा का वर्णन करना कठिन है । यदि कोई पूछे कि क्या था, तो यह नहीं बताया जा सकता कि क्या था क्योंकि सब कुछ मानों कुछ नहीं था :—

अरबद नरबद धंधूकारा ।
धरणि न गगना हुकमु अपारा ।
ना दिनु रैनि न चन्द न सूरज सुंन समाधि लगाइदा ।।१।।
खाणी न बाणी पऊण न पाणी ।
ओपति खपति न आवण जाणी ।
खण्ड पताल सपत नहीं सागर नदी न नीरु वहाइदा ।।२।।
ना तदि सुरगु मछु पइआला ।
दोजकु भिसतु नहीं खै काला ।
नरकु सुरगु नही जंमणु मरणा न कोई आइ न जाइदा ।।३।।
ब्रहमा बिसनु महेसु न कोई ।
अवरु न दीसै एको सोई ।
नारि पुरुखु नहि जाति न जनमा ना को दुख सुख पाइदा ।।४।।
ना तदि जती सती बनवासी ।
ना तदि सिध साधिक सुखवासी ।
जोगी जंगम भेखु न कोई ना को नाथु कहाइदा ।।५।।
जप तप संजम न ब्रत पूजा ।
ना को आख वखाणै दूजा ।
आपे आपि उपाइ विगसै आपे कीमति पाइदा ।।६।।
न सुचि संजमु तुलसी माला ।
गोपी कानु न गऊ गोआला ।
तन्तु मन्तु पाखण्डु न कोई ना को वंसु वजाइदा ।।७।।
करम धरम नही माइआ माखी ।
जाति जनमु नही दीसै आखी ।
ममता जालु कालु नही माथै ना को किसै धिआइदा ।।८।।
निंदु बिंदु नही जीऊ न जिन्दो ।
ना तदि गोरखु ना माछिन्दो ।
ना तदि गिआनु धिआनु कुल ओपति ना को गणत गणाइदा ।।९।।
वरन भेख नहि ब्रहमण खत्री ।
देउ न देहुरा गऊ गाइत्री ।
होम जाग नही तीरथि नावणु ना को पूजा लाइदा ।।१०।।
ना को मुल्ला ना को काजी ।
ना को सेखु मसाइकु हाजी ।
रइअति राउ न हऊमै दुनीआ ना को कहणु कहाइदा ।।११।।
भाऊ न भगती ना सिव सकती ।

साजनु मीतु बिन्दु नही रकती ।
आपे साहु आपे वणजारा साचे एहो भाइदा ।।१२।।
बेद कतेब न सिम्रिति सासत ।
पाठ पुराण उदै नहि आसत ।
कहता बकता आपि अगोचरु आपे अलखु लखाइदा ।।१३।।

[मारू सोलहे महला १-१५]

२. अनाद; आदि । गुरू नानक

जब इस धुन्धकार की मूर्ति हट गई तब उसका स्थान ऐसे प्रकाश ने ले लिया जो मन्द परन्तु अत्यन्त सुहावना था । उस समय धुंधकार पूरी तरह से विलोप हो गया, फिर अन्य किसी पदार्थ का तो कहना ही क्या ? यह प्रकाश अत्यन्त सौन्दर्यमय और लुभावना था । यद्यपि यह प्रकाश दिखाई देने में मन्द था परन्तु वह मन्द भी इस प्रकार का था, जैसा कि निद्रावस्था में स्वप्न में देखी हुई विद्युतछटा को, जाग्रत अवस्था में सूर्य के प्रखर-प्रकाश में खड़े होकर, स्मरण करें तो उसका मन्द-मन्द सा आभास मन में आ जाता है। वास्तव में वह प्रकाश तो अत्यन्ततेजोमय था, परन्तु जो 'प्यार तथा आनंद' उसमें था उसका आभास मन्द, मीठे तथा मधुर रूप में प्रतिभासित हो रहा था । ऐसा लगता था कि यह प्रकाश अस्तित्वमय है । उस प्रकाश में एक अकथनीय अचलता थी । थी तो उसमें एक वास्तविकता परन्तु ऐसा लगता था मानो उसमें दृष्टमान का अभाव था और उसी मानो अभाव की दशा में एक अस्तित्व, सुन्दर अस्तित्व, चैतन्यमय अस्तित्व, व्यापक अस्तित्व, रसमय, स्वादमय और प्यारमय-अस्तित्व की भावना कुछ इस प्रकार से अनुभूत हो रही थी कि जैसे वह सचमुच है, निःसंशय है । इस अस्तित्व की प्रतीति का ढंग अत्यन्त आश्चर्यजनक एवं अकथनीय है । यह बात निःसन्देह तथा प्रत्यक्ष दृष्टिमान होती सी दीखती थी और घटित भी हो रही थी ।[1] इस लिए पता नहीं रहा कि यह सब क्या था ? यदि पूर्ण आत्मविस्मृति थी तो यहाँ थी और बेखबरी थी तो यहाँ थी परन्तु अचम्भा तो इस बात का था कि चेतनता और आनन्द थे तो यहीं थे, रसभीने स्वाद थे और अन्य तरह के रस तो यहीं थे । यह एक ऐसी भावना थी कि जिसको न कभी इसके

---

१. आदि पुरुख करतार करण कारण सभ आपे ।
सरब रहिओ भरपूरि सगल घट रहिओ बिआपे ।।
ब्यापत देखीअै जगति जानै कऊनु तेरी गति
सरब की रखिआ करै आपे हरि पति ।।
अबिनासी अबिगति आपे आपि उतपति ।।
एकै तूही एकै अन नाही तुम भति ।।
हरि अंतु नाही पारावारु, कऊनु है करै बीचारु
जगत पिता है स्रब प्रान को अधारु ।।
जनु नानकु भगतु दरि तुलि ब्रहम समसरि एक जीह किआ बखानै ।।
हाँ कि बलि बलि बलि बलि सद बलिहारि ।।१।। [सवैये श्री मुखवाक महला ५]

पूर्व जाना था अतएव कहा जाए तो क्या कहा जाए ? कहने की बात ही नहीं थी[१] :–

अब एक आश्चर्यजनक बात हुई । उस अस्तित्व में से--उस सत्य सुन्दर चेतना तथा आनन्दरूप[२] प्रकाश में से (या इसे कुछ और अपनी बुद्धि अनुसार कह लीजिए) एक कौतुक उत्पन्न हुआ । उसका न कोई रूप था न रंग न रेख परन्तु अनुभव ऐसा होता था जैसे कोई उसी की लहर है, कल्पना है, आदेश है अथवा इच्छा है परन्तु उससे पृथक् कुछ नहीं है । वही है परन्तु मानो उसी चेतनता का उसी अकथनीय दशा में कोई लहराव है ।[३] कुछ है उसी जैसा, वही स्वरूप है । उसके उठने से उसमें कोई अन्तर नहीं आता है । वह सदा, शाश्वत एवं अपरिवर्तनशील है । ठीक उसी प्रकार जैसे सागर में उठने वाली जलतरंगें या उसमें मिलने वाली नदियाँ सब जल ही जलमय हैं ।[४]

अब एक शब्द हुआ । वइ शब्द किस प्रकार का था ? उसकी कोई उपमा नहीं मिलती, व्यक्त करने को कोई शब्द नहीं मिलता । मनुष्य की समझ और मनुष्य की भाषा में उसके लिए कोई नाम रखकर उसका कुछ अनुभव किया जा सकता है । अतः उसका यदि नाम रखा जाए तो सारी झाँकी इस प्रकार कही जा सकती है :–

सर्वप्रथम एक अकथ था । इसका नाम रख लीजिए 'निरंकार' । इसके पश्चात् एक और अवस्था आई । उसका नाम रख लीजिए 'एकांकार' । इसके बाद एक यह अवस्था आई शब्द की । इसका नाम रख लीजिए, 'ओ अंकार' ।[५] इसको आप नाद कह लीजिए अथवा शब्द, वाणी, आवाज़ या राग कुछ भी कह लीजिए । वह सारा कहा नहीं जा सकता वह तो अकथनीय है । यह वह शब्द था जिसके विषय में लिखा गया है :—

---

१. सोई जाणै करणैहारा कीता किआ बेचारा ।।
आपणी गति मिति आपे जाणै हरि आपे पूर भण्डारा ।।३।।
[रामकली महला ५-४]

२. सति सुहाणु सदा मनि चाऊ = सत, चित, आनन्द ।।
[गुरुवाणी]

३. आपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिओ नाओ ।।
[वार आसा महला १]

४. सागरों में भी धरती पर बहने वाली नदियां की तरह तरंगें उठती रहती हैं । अपना भिन्न-भिन्न रूप दिखा कर भी सागर में अभेद जलरूप ही हैं।

५. निरंकार आकार होइि एकंकार अपार सदाया
एकंकारहु शबद धुनि ओ अंकार अकार बणाया ।।
[वारां भाई गुरुदास २६]

पुनः
निराधार निरंकार न अलख लखाया ।
होआ एकंकार आप उपाया ।
ओअंकार अकार चलित रचाया ।
सच नाऊँ करतार बिरद सदाइया ।।
[वां० भा० गु० २२-१]

खण्ड दीप सभि लोआ ।
एक कवावै ते सभि होआ ।।

[मारू महला ५]

पुन :-

कीता पसाओ एको कवाओ ।।

[जपुजी]

नानक सबद अपारु तिनि सभु किछु सारिआ ।।

[वार गऊड़ी महला ५]

निरमल सबदु निरमल है वाणी ।
निरमल जोति सभ माहि समाणी ।। [माझ महला ३]

इस शब्द की मधुर ध्वनि हुई । उस समय कुछ ऐसा प्रतीत हुआ जैसा धूप में आतिशी शीशा दिखाने पर उसमें उसी धूप का एक बिम्ब अधिक ज्योतिर्मय दिखाई देता है । उधर नजर की तो क्या देखते हैं कि हमारी समझ में लाने के लिए स्थूल वाणी द्वारा इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक अत्यन्त प्रकाशमान सिंहासन (तखत)[१] है जिसके समक्ष विश्व के समस्त ज्योतिर्मय पदार्थों की ज्योति एकत्रित कर रख दी जाए फिर भी उस प्रकाशमान सिंहासन के सामने वह फीकी दिखाई दे, क्योंकि वह तो दिव्य प्रकाश है तथा अन्य सभी प्रकाश उस ही का माया द्वारा प्रतिबिंबित हैं ।

इसके पश्चात् इस सिंहासन के प्रकाश से भी करोड़ों गुणा अधिक प्रकाशों का एक प्रकाश पुन्ज दृष्टिगोचर हुआ । यह प्रकाशपुन्ज आनन्दस्वरूप है तथा प्रेमस्वरूप सिंहासन पर विराजमान है । एक और ऐसा स्वरूप[२] जो स्वयं भी प्रकाश स्वरूप[३] है इस प्रथम स्वरूप से भिन्न होकर इस प्रकार श्रद्धा, प्रेम तथा भक्ति सहित सामने खड़ा है, जिस प्रकार एक पुत्र अपने पिता का ही अंश होकर सम्मान सहित पिता के निकट खड़ा होकर भी पिता से भिन्न दिखाई देता है। अथवा जिस प्रकार जल में

पुनः एकंकार इकांगलिखि ऊड़ा ओअंकार लखाइआ ।।

[वारां-भाई गुरुदास ३६-१]

पुनः--
सचै सचा तखतु रचाइआ ।।
निज घरि वसिया तिथै मोहु न माइआ ।।१।।

[मारू सोलहे महला ३, ७-१]

१. सचै तखत निवास है साध संगति--
सच खण्ड वसंदा ।।

[वारा भाई गुरुदास २६-१]

२. गुरू नानक देव गोविन्द रूप ।।

[बसन्त महला ५-१-८]

३. अवलि अलह नूर उपाइआ ।।

[प्रभाती कबीर ३-१]

चन्द्र प्रतिबिम्ब है चन्द्रमा का स्वरूप ही परन्तु उससे भिन्न दष्टिगोचर होता है ।[१]

इसमें अन्तर केवल इतना है कि यहाँ जल की सहायता ली गई है परन्तु वहाँ यह कुछ नहीं है। वहाँ किसी अन्य पदार्थ की सहायता के बिना ही कोई आश्चर्यजनक घटना घटती दृष्टिगोचर होती थी ।[२] इस समय की शोभा, जुगल स्वरूप की सुन्दरता और प्रेम की भेंट की दशा कौन कह सकता है। ऐसा लगा मानो कोई अगम राग गा-गाकर यह व्यक्त कर रहा हो :—

पातशाह पातिशाह सत्त सुहाणीऐ ।
बह्मा बेपरवाह अन्त न जाणीऐ ।।
लओबाली दरगाह आखि बखाणीऐ ।
कुदरति अगम अथाह चोज विडाणीऐ ।।[३]
सची सिफत सलाह अकथ कहाणीऐ ।
सतिगुरु सच्चे वाह सद कुरबाणीऐ ।।[४]

[वार भाई गुरुदास २१-१]

इस समय देखने योग्य कौतुक यह था कि समक्ष खड़े दिव्यस्वरूप जी अत्यन्त प्रेम, श्रद्धा तथा दीनतापूर्वक प्रेमभक्ति-स्वरूप बने खड़े हैं; ऐसा लगता था मानो यह कह रहे हों :—

बलि तिसु बापै जिनि हऊ जाइआ ।।

[आसा कबीर ३-२]

और उधर परम पुरुष देवाधिदेव सिंहासन पर विराजमान, प्रकाशपुन्ज, प्रकाशों के जनक, सृष्टि के स्वामी अपनी कृप्पा तथा दया के रंग से उन्हें भी रंग रहे हैं ।[५]

सची सिफति सालाहि कपड़ा पाइआ ।।

[वार माझ महला १-२७]

पुनः—

लादि खजाना गुरि नानक कऊ दीआ इहु मन हरि रंग रंगे ।।

[गुजरी महला ५-३-४]

---

१. हभ समाणी जोति जिओं जल घटाऊ चन्द्रमा ।।

[मारू वार डखणे महला ५-१४]

२. गुरुमुखि एकंकार आपि उपाइआ ।।
ओअंकार अकार परगटी आइआ ।।

[वार भाई गुरुदास १६-१]

[नोटः– यहाँ गुरुमुख से तात्पर्य गुरू नानक जी है ।]

३. इन पाँच पंक्तियों में ईश्वर का यशगान किया है ।

४. छठी पंक्ति में श्री गुरू नानक देव जी की उपमा है ।

५. पहिलां बाबे पाइआ बखश दर ।।

[बारां भाई गुरुदास १-२४]

इस बख्शीश को पाकर श्री भक्ति के पुन्ज महास्वरूप जी अपनी भक्ति के रंग में झूम रहे हैं और कृतज्ञता का स्वरूप हो गए हैं ।[१] इसका अनुवाद मनुष्य की भाषा में इस प्रकार हो सकता हैं:

जां हउ तेरा तां सभु किछु मेरा हउ नाही तू होवहि ।।
आपे सकता आपे सुरता सकती जगतु परोवहि ।।
आपे भेजे आपे सदे रचना रचि रचि वेखै ।।
नानक सचा सची नांई सचु पवै धुरि लेखै ।। [वार सारंग महला १-१३]

यह कौतुक 'अकाल' रंग का कौतुक था । यदि इसे 'समय' की सीमा में बाँधकर वर्णन किया जाय तो वह इस प्रकार होगा :

भक्ति एवं प्यार के पुंजस्वरूप महापुरुष जी वरदान प्राप्त कर विदा हुए । परन्तु प्रतीत ऐसा हुआ मानो कोई महान परिश्रम करने के लिए चल पड़े हों ।[२] ऐसा अनुभव हुआ कि आप कहीं दूर चले गए और आँखों से ओझल हो गए । इधर आँखों के सम्मुख एक और कौतुक दिखाई देने लगा । जो चक्र हमारे विचारों के अनुसार विपरीत दिशा में चल रहा था और जो हमें समय से पीछे असमय[३] अकाल तथा असीम में ले गया था वह मानो लौट आया है और हम फिर उसी कौतुक का दर्शन करने लगे । ऐसा लगा मानो समस्त रचना का कौतुक होने लगा है ।

इसके पश्चात् फिर मानो सून्य आ गया हो और उस सून्य को पार कर हम किसी अहल अस्तित्व, प्रकाशस्वरूप आनंद ही आनन्दस्वरूप में पहुँच गए थे ।

अब उसकी आज्ञा से उत्पन्न हुई वह अकथनीय[४] अवस्था तो व्यतीत हो चुकी है। शब्द की

---

१. जिन करू तखति मिलै वडिआई गुरुमुखि से परधान कीए ।।
[महला १ बसंत हिंडोल]
'गुरू नानक देव गोविन्द रूप' पंचम गुरू जी का कथन है । वाहिगुरू के तीन स्वरूप हैं : रचयिता, पालनकर्ता तथा गुरू । प्रेम स्वरूप होकर सृष्टि रचना करता है। रचना करने के पश्चात् उसका स्वधर्म है पालन-पोषण करना अतएव वह पालन-पोषण करता है । रचना करने तथा पालन करने के पश्चात् उसका स्वधर्म है गुरू होना, अर्थात् शिक्षा एवं बुद्धि देना । बुद्धि में ज्ञान देना, तारना, उबारना तथा जीवनदान देना इत्यादि । उसका यह जो गुरू स्वरूप है वही गुरू नानक देव गोविन्द रूप होकर जगत् के उद्धार हेतु प्रकट हुआ है। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि ईश्वर योनियों में पड़ता है । वह तो 'गुरू स्वरूप' गुरू व्यक्ति में प्रकाश डालकर जगत में प्रत्यक्ष अवतरित होकर उसका उद्धार करता है और वह है 'गुरू नानक देव गोविन्द रूप ।'

२. पिछों दे फिरि घाल कमाई ।।
[वारा भाई गुरुदास १-२४]

३. असमय = कालरहित समय ।
असीम = सीमा रहित ।

४. यह वह दशा है जहाँ कोई बुद्धि अथवा विचार प्रवेश नहीं करता । इस दशा में पहुँचकर भक्तजन कहा करते हैं कि हमने यह जाना है कि हमें कुछ पता नहीं चलता । कुछ लोग इस दशा को 'सून्य' की स्थिति समझकर दोनों अवस्थाओं को एक ही मानते हैं । परन्तु श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी में कहा है कि यह दशा सून्य स्थिति से भी परे है, यथा,
"सुन्न समाधि दोऊ तहं नाहीं ।।"
[गऊड़ी कबीर]

उत्पत्ति होते ही और कौतुक हो गया था परन्तु अब यह दृश्टिगोचर हुआ कि शुन्य की दशा फैल रही है ।

फिर लौटकर उसी निर्माण की गई पहली अवस्था—शून्य—में हम पहुँच गये, उस शून्य में जिसका शून्य तथा अशून्य के करतार ने निर्माण किया था :—

सुंन कला अपरंपरि धारी ।
आपि निरालमु अपर अपारी ।।
आपे कुदरति करि करि देखै ।
सुंनहु सुंनु उपाइदा ।।१।।
पउणु पाणी सुंनै ते साजे ।
सृसटि उपाइ काइआ गड़ राजे ।।
अगनि पाणी जीऊ जोति तुमारी सुंने कला रहाइदा ।।२।।

[मारू सोलहे महला १-१७]

इस शून्य के पश्चात् फिर से धुंधकार हो गया ।[1] यह धुंधकार की दशा इस प्रकार की थी जिस

फिर कहा है,

"सुन्न कला अपरंपरि धारी ।।
आपि निरालमु अपर अपारी ।।
आपे कुदरत करि करि देखै ।।
सुंनहुं सुंन उपाइदा ।।

[मारू सोलहे महला १-१७-२]

इसका भावार्थ यह है कि वह निर्विकार अकाल पुरुष सून्य का भी निर्माता है, और उससे पृथक रहता है ।

१. अरबद नरबद धुंधूकारा ।
धरणि न गगना हुकमु अपारा ।।
ना दिनु रैनि न चन्दु न सूरज सुंन समाधि लगाइदा ।।१।।

[मारू सोलहे महला १-१५१]

पहली अवस्था निरंकार तथा निराकार ही है और वह अकथनीय है । यह शून्य अवस्था में परिवर्तित नहीं हुई । अकाल पुरुष का स्वरूप, या दशा या यर्थाथ (जो कुछ भी कहा जाए) अचल शाश्वत और एक रस रहता है । वह अपरिवर्तनशील है। उसका न शून्य ही में परिवर्तन हुआ न धुंधकार ही में । वह सदा सर्वदा एक रस है । ये जो शून्य और धुंधकार की अवस्थाएँ हैं उन्हें इस प्रकार समझिए कि उस सिरजनहार से सृष्टि रचने का संकल्प किया । इस प्रकार सर्वप्रथम एवूंकार ने संकल्प किया, और उसकी इच्छा को रचना हुई (आपीनै आपि साजियो) । अपने ही प्रकाश स्वरूप से गुरू नानक देव जी की रचना की गई । ततूपश्चात् 'शून्य' से धुंधकार और धुंधकार से आगे सृष्टि की रचना की गई । ईश्वर स्वयं प्रत्येक अवस्था में निलिप्त तथा एकरस है—

धुंधूकारि निरालमु बैठाना तदि धंधु पसारा हे ।

[मारू सोलहे महला १-२-१]

'शून्य' धुंधकार से पूर्व हुआ। यह श्री गुरू नानक जी की इस वाणी से सिद्ध होता है :—

अरबद नरबद धुंधूकारा ।
धरणि न गगना हुकमु अपारा ।।

प्रकार सृश्टि जिसकी रचना ईष्वर को करनी है । जो सूक्ष्म रूप में छाया की भाँति अपने से उसे

ना दिन रैनि न चन्द न सूरजु सुन्न समाधि लगाइदा । [मारू सोलहे महला १]
इस तथ्य को उदाहरण स्वरूप इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि दिन के समय सूर्य के प्रकाश को निराकार दशा मान लो, सायंकाल को, जब प्रकाश तो होता है किन्तु धूप नहीं होती है, शून्य मान लो; सायंकाल के अंधकार को धुंधकार मान लो और नाना प्रकार के नक्षत्रों की रचना से सुसज्जित चाँदनी रात को सृष्टि की रचना, अर्थात् सम्पूर्ण नियमों तथा सिद्धान्तों से विरचित 'सृष्टि-दशा मान लो । प्रत्येक दशा में सूर्य पृथक् है परन्तु यह सब कुछ हुआ है उसी के सहारे । वह न तो इसमें लिप्त है और न ही उसका अभाव है। समस्त कौतुकों का वह स्वयं कारण है और बीच में व्यापक होकर भी पृथक् है । इस उदाहरण में सूर्य का ओझल होना एक प्रकार की भिन्नता है परन्तु उस उपमेय में तो इतना सोचने-विचारने का भी कोई स्थान नहीं हैं । वह तो परे तक भी नहीं होता है और होगा कैसे, वह तो सर्वव्यापक है ।
'बलिहारी कुदरति वसिआ' ।
पुनः
इहु जगु सचे की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ।। [वार आसा]
बीज ही में समूचा वृक्ष समाया हुआ है परन्तु उसकी दशा वृक्ष से किसी तरह मेल नहीं खाती है। बीज का स्वरूप वृक्ष से भिन्न हैं। भूमि और जल मिलने पर बीज में से अंकुर फूटता है। फिर वह पृथ्वी के भीतर से बाहर आकर कोपलें दिखाता है । इसके बाद शाखों, पत्तों, फूलों तथा आदि आदि से मिलकर वह पूर्ण वृक्ष बनता है। इस दृश्टान्त में बीज में अंकुर का समाधिस्थ होना निरंकार दशा मान लो, जल के मेल से बीज का फलना शून्य है, बीज का अंकुर फूटकर बीज से बाहर आना परन्तु अभी धरती ही में होना 'धुंधकार' है । फिर बाहर आकर वृक्ष बनकर फूलना फलना 'सृष्टि-दशा' है ।
शून्य से सृष्टि-निर्माण इस प्रकार दिखाई देता है। शून्य से फिर वायु [साचे ते पवना भइआ पवनै ते जल होइ ।। जल ते त्रिभुबणु साजिआ घटि-घटि जोति समोइ ।।]
'साचे' का अर्थ परमेश्वर है । यहाँ पर परमेश्वर से पवन, पवन से जल, तथा जल से सृष्टि की रचना बताई गई है । 'शून्य' तथा 'धुंधकार' अवस्था अत्यन्त सूक्ष्म होती हैं अतः उनका वर्णन यहाँ पर नहीं किया गया है । क्योंकि कठिन होने के कारण श्री गुरू जी ने उसके सम्बन्ध में सोलह अथवा सतरह बन्दों के भिन्न भिन्न शब्दों रचना की है। अतः 'साचे' तथा 'पवना' (वायु) के अन्तर्गत सून्य और धुंधकार का आरोप किया जाता है। अतः वायु की भाँति सूक्ष्म अवस्था बनती है । प्रत्येक पदार्थ इस वायु में होता है । उसके बाद फिर 'द्रव' अवस्था आती है, अर्थात् जल की भाँति बहने वाला रूप होता है । इसके बाद फिर स्थूल पिण्डाकार पदार्थ बनते हैं । परन्तु वायुरूप तथा द्रव्य रूप खो नहीं जाते हैं । वे दशा बदलकर शीतल तथा गुणदायक हो जाते हैं । तत्वों के तीन रूप, स्थूल, द्रव तथा वायु हो जाते हैं । इनके भिन्न-भिन्न प्रकार के मेल मिलाप से नाना प्रकार की सृष्टि का निर्माण होता है । यहाँ हमें ऊपर के दृष्टान्त का केवल एक ही पक्ष लेना है। परमात्मा को बीज की भाँति पृथ्वी में मिलना और फिर वृक्ष बन जाने पर नष्ट हो जाना, मान लेना अनुचित है। क्योंकि बीज तो कर्ता नहीं है परन्तु वह सिरजनहार कर्ता है। यह दृष्टान्त केवल एक अंग शून्य आदि अवस्था के समझाने के लिए था । वह 'आपे' तो सदा ही "आदि सचु जुगादि सचु ।। है भी सचु नानक होसी भी सचु" ।। है । [जपुजी]
आदि में भी 'अकाल पुरुष' सत्य था । इसका भाव यह है कि जिस अवस्था को उसका स्वरूप ही केवल जान सकता है, उस समय भी वह सत्य ही था । अर्थात् देश काल से परे अथवा पहले जो कुछ था, जिसका कोई नाम नहीं, उस समय भी वह सत्य था। फिर जब शून्य हुआ तब युग बीत चुके थे, उस समय भी 'जुगादि सच'–सत्य था । अब भी सत्य है तथा सदैव सत्य ही रहेगा । ईश्वर का स्वरूप सत्य है । वह सदैव एक रस सत्य है। जब संवत् आदि कुछ भी नहीं होता तब भी वह सत्य ही रहता है । सत्य के अतिरिक्त वह और कुछ भी नहीं बनता ।

भिन्न करके दिखाई है ।[१] ईश्वर स्वयं पृथक् बैठा है और अपने द्वारा निर्माण की हुई सृष्टि को भिन्न दिखाकर उसे अंग-अंग में समा रहा है । भिन्न[२] होता हुआ भी व्यापक है । आप स्वयं तो त्रिगुणतीत है परन्तु उसने रची हुई सृष्टि में तीन गुणों को समाहित कर दिया है ।[३]

३. जगत उत्पत्ति

अब क्या देखते हैं कि धुंधकार अपना रूप परिवर्तित करता हुआ अत्यन्त गर्म तथा प्रकाशित रूप में बदल गया । इसकी स्थूलता वायु के समान हो गई । गर्म और लाल रंग जैसी वायु सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित होकर कुहरे (धुंध) की भाँति चारों ओर दीखने लगी । धीरे-धीरे गर्मी कम होने लगी और पिघले हुए स्वर्ण की भाँति बीच-बीच में पिण्डाकार दीखने लगे । इनमें शत अथवा शताधिक[४] प्रकार के भिन्न-भिन्न रंग दिखाई देने लगे । कुछ ने तो अकेले ही ठोस रूप धारण कर लिया । कुछ परस्पर मिलकर ठोस रूप हो गये । कोई वायुरूप ही रह गये । कोई-कोई तरल[५] रह गये । एक आश्चर्यजनक उथल-पुथल हो गई । कुछ समय के पश्चात् स्थूलता और बढ़ी और कई ठोस परन्तु अत्यन्त गर्म पिण्ड तथा बड़े-बड़े विस्तार वाले पिण्ड बन गये । इस समय तीन प्रकार के पदार्थ दृष्टिगोचर होते थे— ठोस, तरल तथा वायुरूप । परन्तु गर्मी अत्यन्त तीव्र थी । अब देखते-देखते सर्दी बढ़ने लगी । इस काल में बहुत से पिण्डाकार गोले ठंडे[६] हो गये । कई टूटकर दो-दो खण्डों में विभाजित होकर ठण्डे हो गये । किसी शीतल हुए पिण्ड में जल[७] भर गया, और वायु हवा बनकर उसके चारों ओर लिपट गई । इस प्रकार अनेकों पिण्डाकार लोकों का निर्माण हो गया । हमारी पृथ्वी की रचना भी इसी प्रकार हुई है । इसे ग्रह कहा जाता है । इस प्रकार बने ग्रहों के चारों ओर अन्य छोटे-छोटे गोलों का निर्माण हुआ । चन्द्रमा इसी प्रकार बना है । इन्हें उपग्रह

---

१. जगु तिसकी छाइआ जिसु बापु न माइआ ।
ना तिसु भैण न भराओ कमाइआ ।।
ना तिसु ओपति खपति कुल जाति ओहु अजरावरु मनि भाइआ ।।२।। [मारू सोलहे महला १-१८]

२. तू अकाल पुरखु नहीं सिरि काला ।
तू पुरखु अलेख अगम्म निराला ।।
सत संतोखि शबदि अति सीतलु सहज भाइ लिव लाइआ ।।३।। [मारू सोलहे महला १-१८]

३. त्रै वरताइ चऊथै घरि वासा । काल बिकाल कीए इक ग्रासा ।।
निरमल जोति सरब जगजीवन गुरि अनहद सबदि दिखाइआ ।।४।। [मारू सोलहे महला १-१८]

४. भूत बन गये । भूत वे पदार्थ हैं जिन्हें खण्ड-खण्ड करके भिन्न-भिन्न पदार्थों में विभाजित न किया जा सके तथा जो अपने आप में पूर्ण हों ।

५. जल के समान बहने वाले ।

६. इनका प्रमाण इस बात से मिलता है कि धरती के भीतर केन्द्र के चारों ओर अभी तक अग्नि विद्यमान है जो ज्वालामुखी पर्वतों के द्वारा बाहर निकलती रहती हैं। कई स्थानों पर उष्ण जल के झरने पाये जाते हैं । सागर के भीतर से भी ज्वालामुखी पर्वतों का निकलना इस तथ्य की पुष्टि करता है ।

७. पवनै ते जल होइ । [सिरी रागु महला १]

कहा जाता है। बात यह है कि पाँच-पाँच, दस-दस अथवा न्यूनाधिक ग्रहों के मध्य में एक-एक प्रकाशमान पिण्डाकार गोला—उनके रूप से लाखों गुना बड़ा अपने अग्नि-रूप में ही दीख पड़ता था। ऐसा लगता था मानो इससे ही टूट-टूटकर ठण्डे गोलों का निर्माण हुआ था। यद्यपि इसका निर्माण धुंधकार ही से हुआ था, परन्तु कुछ इस प्रकार का खेल-सा किया गया कि इसकी गर्मी तथा तेज बहुत विराट् रूप में रखा गया। इसे ही सूर्य कहते हैं। सूर्य को केन्द्रीय स्थान पर रखकर और ग्रहों को अलग-अलग दूरी पर रखकर, इसके चारों ओर चक्कर लगाने की शक्ति प्रदान की गई। सूर्य बहुत विशाल होने के कारण तथा महान् आकर्षण-शक्ति रखने के कारण ग्रहों को अपनी ओर आकर्षित करने लगा। इससे ग्रह भारी होकर गिरने लगे। इस खीचाखीची में ग्रह अपने चारों ओर भी तथा सूर्य के चारों ओर भी चक्कर लगाने लगे। इसी प्रकार ग्रह उपग्रहों को आकर्षित करने लगे। इस खीचाखीची में उपग्रह भी ग्रहों की परिक्रमा करने लगे।

इस समय एक बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि अगणित सूर्यों के मध्य में काला तीत, बड़े-बड़े आकार के सूर्य (इसे सूर्य कहो या कोई और नाम रख लो) दिखाई दिये। इनके आकर्षण के कारण सूर्य अपने ग्रहों और उपग्रहों सहित इनके चारों ओर परिक्रमा करने लगे।

इनके अतिरिक्त कई पिण्ड गर्म वायु के रूप ही में रह गये। उनकी गति ग्रहों और उपग्रहों से विलक्षण बनी। ये बहुत लम्बी अण्डे की भाँति गोलाई दिखाने वाली चाल में पड़कर सूर्य के चारों ओर किसी एक केन्द्र पर नहीं बल्कि 'विकेन्द्र'[१] छोड़कर उसकी परिक्रमा करने लगे। इनमें से कई तो अपने विकेन्द्र से इतनी दूरी पर चले जाते थे कि अन्य सूर्य के आकर्षण में अधिक आ जाते थे। तब ये प्रथम सूर्य को त्याग कर दूसरे की परिक्रमा करने लगते थे। इस प्रकार अनेक तरह के छोटे-से-छोटे गोलाकार पिण्डों से लेकर लाखों-करोड़ों मीलों के घेरे वाले गोलारूप[२] सैकड़ों, हजारों, लाखों, करोड़ों तथा असंख्य मीलों की दूरी होकर ईश्वर की आज्ञानुसार[३] चक्कर लगाकर सिरजनहार के सदा आनन्द रहने वाले स्वरूप में से आनन्द प्राप्त करके आनन्द के कौतुक करने लगे तथा करतार के आदेशानुसार आकाश, देश रूप होकर इन तमाशों के लिए तमाशागृह बन गया।[४]

इस समस्त रचना के अर्न्तगत रचनाहार स्वयं विराजमान होकर अपनी सत्ता के साथ समस्त विरचे हुए को मानो चला रहा हो और महल बनाकर उनका स्वामी बनकर बीच में विराजमान हो

---

१. अंडाकार रूप के दो केन्द्र स्थानिक बिन्दु तथा द्विकेन्द्र कहे जाते हैं।

२. सचे तेरे खंड सचे ब्रहमंड ।। सचे तेरे लोअ सचे आकार ।।

[आसा वार महला १-२-१]

३. भै विचि सूरजु भै विचि चंदु ।।
कोह करोड़ी चलत न अंतु ।।

[आसा वार महला १-४-१]

४. भै विचि आडाणे आकास।

[आसा वार महला १]

गया है ।[1] इससे कोई यह न समझ ले कि ईश्वर स्वयं कोई सूर्य बनकर और नाम रूप धारण कर वहाँ आ बैठा है । ऐसा नहीं है । उसकी कला, उसकी सत्ता अंकुश की भाँति समस्त सृष्टि के ऊपर रखी गई है तथा वह स्वयं सर्वव्यापक होकर इसके मध्य विराजमान होकर इस समस्त सृष्टि को देख रहा है ।[2]

वह स्वयं निर्विकार होकर जिस प्रकार सृष्टि रचना से पूर्व पृथक् था उसी प्रकार रचना के समय[3] भी वह पृथक ही रहा और सृष्टि रचना के पश्चात् पालन समय से भी वह सच्चिदानंद घट-घट में प्रकाश करने वाला अकाल पुरुष पृथक होकर चमक रहा था ।

जिनि उपाई रंग रवाई बैठा वेखै वखि इकेला ।।[4]

[तिलंग महला १।५।३]

पवन, पानी, अग्नि, पृथवी आदि के कौतुकों द्वारा नाना प्रकार की सृष्टिरचना हाने लगी । और अन्य भूमण्डलों तथा ग्रहों की अपेक्षा अपनी पृथ्वी पर हाल कुछ इस प्रकार दृष्टिगत हुआ ।

पहले जब धरती भलीभाँति शीतल नहीं हुई थी तब गर्म पकं थी तथा गर्म वायु चलती थी । उस समय एक अद्भुत प्रकार की सृष्टि दृष्टिगोचर हुई तथा अद्भुत प्रकार की वनस्पति दिखाई देती थी जिसका अब कहीं पता नहीं लगता ।[5]

बड़ी अनोखी जीव-सृष्टि तथा विकराल आकार के डरावने पशु[6] दिखाई दिये । क्रमशः शीत के बढ़ने पर वह समस्त सृष्टि लोप हो गई और पृथ्वी का वर्तमान रूप, जिसमें पर्वत, मैदान और गहर इत्यादि थे, प्रकट हुआ । बड़े-बड़े गड्ढों में जल भर गया और उन्होंने सागर का रूप धारण किया

---

१. इहु जग सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ।। [आसा वार महला २।२।३]

२. दुयी कुदरति साजीऔ करि आसणि डिठो चाऊ ।। [आसा वार महला १]

कुदरति दिसै कुदरति सुणीऔ कुदरति भऊ सुखसारु ।।
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु ।। [आसा वार महला १।३।२]
दयु बैठा वेखै आपि जीऊ ।।

पुनः

बैठा वेखै वखि इकेला ।।

३. सभ तेरी कुदरति तूँ कादिरु करता पाकी नाई पाक ।।
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताकौ ताकु ।। [आसा वार महला १।३।२]

अर्थात् कर्तार निर्माता होकर भी निर्विकार है ।

पुनः

जहिं देखा तह दीन दइआला ।। आइ न जाई प्रभु किरपाला ।।
जीआ अंदरि जुगति समाई रहिओ निरालमु राइआ ।।१।। [मारू सोलहे महला १]

४. दुयी कुदरति साजीऔ करि आसणु डिठो चाउ ।। [वार आसा महला १।१-४]

५. उस काल की पृथ्वी के अन्दर की वनस्पति, कोयला इत्यादि के रूप में अभी तक विद्यमान है ।

६. इन पशुओं के अस्थि-पंजर भगर्भ में तथा हिम राशि के नीचे अक्सर मिल जाते हैं ।

तथा पवन प्रवहमान हुआ । शैल तथा पत्थरों इत्यादि के रूप में खनिज सृष्टि दिखाई पड़ने लगी[१]। इसके पश्चात् सृष्टि में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए । सूर्य किरणों तथा विभिन्न जलवायु के प्रभाव से प्रकृति में ऐसी हिलोरें उठी कि मानों उसमें नवजीवन पर व्याप्त गया हो । उसमें अदेश से जीवन शक्ति आ गई। एक नवीन प्रकार की सृष्टि का निर्माण हुआ जो वनस्पतिमय थी । कई प्रकार की फफूंदी पौधे तथा वृक्ष[२] उत्पन्न हुए । ये अपनी विशेषताओं से पृथ्वी को सुशोभित करने लगे । प्रत्येक वनस्पति अपने विशिष्ट गुणों से युक्त थी । कुछ वृक्षादि में प्रकाश की अनुभूति तथा त्वचा-ज्ञान की क्षमता थी और कुछ तो जीवधारियों की भाँति भोजन करते थे[३]। इसके पश्चात् कुछ और आश्चर्यजनक जीवों की सृष्टि हुई जिनमें मुख्यतः केंचुये, कीट-पतंग[४] आदि थे । इसके पश्चात् सर्प तथा पक्षियों की सृष्टि हुई ।[५] फिर कई प्रकार के मत्स्य और विशाल आकार के चतुष्पद[६] प्राणी बने । इसके बाद वानरों की कई जातियाँ तथा वनमानुष उत्पन्न हुए ।

अब जीवन का प्रत्येक कण सृष्टि में रहकर और लक्षय-लक्ष योनियों में चक्कर लगाकर परमात्मा की असीम कृपा से प्रकृति के सम्पूर्ण अस्तित्व की यात्रा करके गुणों का पुंज बन गया । जीव सृष्टि में जिन गुणों का अस्तित्व है वे सब निष्कलंक रूप में एकत्रित होकर और अकाल पुरुष की प्रेरणा से मिलकर तथा चिन्मय होकर[७] मानस शरीर सम्पूर्ण हुआ[८]। समय पाकर यह बद्धि एवं चातुर्यमय हुआ । इस मानव सृष्टि की वही दशा हुई जो उल्टा चक्र चलते समय पहले दिखाई दी थी । ऐसा अनुभव होता था कि पहिले की ही तरह समय व्यतीत हुआ है ।

---

१. ''कई जनम सैल गिरि करिआ'' ।

[गऊड़ी महला ५, ७२]

२. ''कई जनम साख करि उपाइआ'' ।

[गऊड़ी महला ५, ७२]

३. ''कई जनम हैवर बिरख जोइओ'' ।

[गऊड़ी महला ५, ७२]

हैवर जीवात्मायुक्त प्राणी को कहते हैं । हैवर वृक्ष उन वृक्ष को कहा जाता है जो अशंतः जीवधारियों की भांति हो गये थे। इस प्रकार के वृक्ष सागर की चट्टानों के साथ होते हैं ।

४. ''कई जनम भए कीट पतंगा'' ।

[गऊड़ी महला ५]

५. ''कई जनम पंखी सरप होइओ'' ।

[गऊड़ी महला ५]

६. ''कई जनम गज मीन कुरंगा'' ।

[गऊड़ी महला ५]

७. ''चिरकाल इह देह संजरीआ'' ।

[गऊड़ी महला ५]

८. इस पानी ते निज तू घरिआ । माटी काले देहुरा करिआ ।
उकत जोति लै सुरति परीखिआ । मात गरभ मंहि जिनि तू राखिआ ।

[राग आसा महला ५, २, १]

इस समय वायु से उड़ती हुई एक सुन्दर स्त्री ने सिर को पकड़कर जोर से घुमाया और एक चक्कर देकर उसे ऐसे स्थान पर डाल दिया जहाँ एक अत्यन्त रमणीक वन था । वहाँ पक्के रोड़े[१] तथा कंकड़ों का एक चबूतरा-सा बना हुआ था । उस पर एक अत्यन्त रूपवान तथा अद्बितीय तेजस्वी पुरुष समधिस्त था । इसका सुन्दर रूप देखकर मन को अत्यन्त आनंद मिला और नेत्र उसकी रूपछवि में निमग्न हो गये । इसी समय एक अन्य व्यक्ति वहाँ पधारे । ये लंबे तथा कृश शरीर के एवं अत्यन्त निरीह एवं साधु स्वाभाव के थे । इनकी अंजिल में आक की कोपलें तथा फूल थे जिसे इन्होंने एक और रख दिया और थोड़ी दूरी पर बैठकर समाधिस्त हो गये । कुछ समय पश्चात् पहिले व्यक्ति उठे और इनकी ओर देखकर कहने लगे :–

यह आप हैं, खुद आप, आप, आपके वख्शे हुए आप । आपकी मेहरवानी से सजे हुए आप । आपके रंग में साधनातीत आप । छत्तीस युगों[२] से साधना करते हुए आप । अनेकों कष्ट सहन करते हैं परन्तु आप में आपकी याद से आप हैं । युग परिवर्तन हुए परन्तु आपने प्यारे का विस्मृत नही किया । जब से आप इस स्थान पर बैठे हैं मात्रा आक[३] खाते हैं तथा जल पीते हैं । धूप इनको व्याकुल नहीं करती, और सर्दी से इनको कोई कष्ट नहीं होता । सागर की तरंगें इनकी कुछ हानि नहीं कर सकतीं । सर्प सिंह आदि इनके समीप तक नहीं आते । नींद तथा भूख इन्हें व्याकुल नहीं कर सकतीं । आप केवल एक रसमग्नता में निमग्न हैं ।[४]

४. मातृलोक से सचखण्ड

ये बातें सुनकर हृदय दुःख का अनुभव करता था कि इस रचना के कौतुक को देखने की क्या आवश्यकता थी । छत्तीस युग एक क्षण में कोटि-कोटि कौतुकों तथा तमाशों को देखने में व्यतीत हो गए । काश इतना समय इस प्रेम-मूर्ति के देखने में व्यतीत होता । इनके दर्शन तो 'आदि' में हुए थे । ये वहीं हैं जो आरम्भ से ही गुण-स्वरूप होकर दिखाई दिए थे । निश्चय ही वही है । आह मन ! यदि तुम 'मन' न होते तो प्रेम-मूर्ति के दर्शनों ही में निमग्न रहते । वाह ! वाह ! धन्यवाद दो कि फिर दर्शन तो हो गए ।

इतने में एक अगम्य आवाज़ आई :

पहला रूप नानक कहलाएगा ।
दूसरा रूप अंगद कहलाएगा ।।

'नानक' तथा 'अंगद' सुनते ही रोम-रोम में और अधिक शीतलता तथा मिठास भर गई । नाम की मिठास कितनी प्यारी है ।

---

१. रोड़ां दी गुर करी विछाई । [वार भाई गुरुदास १-२४]

२. हुकमें जुग छत्तीह गुदारे ।। [मारू सोलहे महला १, ।१६। १४]

३. रेत अक आहार करि रोड़ा दी गुर करी बिछाई ।। [वार भाई गुरुदास १-१४]

४. भारी करी तपस्सिआ बड़े भाग हरि सिओं वणिआई ।। [वार भाई गुरुदास १-१४]

धन्य गुरू नानक,
धन्य गुरू अंगद ।

फिर कितना समय उस सुन्दर तथा हृदयाकर्षक दर्शन में व्यतीत हो गया इसका किंचित्‌मात्र भी आभास नही हुआ । अचानक एक दिल वर्षा, आँधी, बादल, बिजली, ओले, बर्फ भूकम्प तथा सागर की बाढ़ आई । ऐसा प्रतीत हुआ माने सारे उपद्रवों की बाढ़ आ गई है । परन्तु इस पर भी आप अचल समाधिस्थ रहे हिले तक नहीं। उस काल में भी आपके रोम-रोम से एक प्रकार की अत्यन्त प्यारी सुगन्ध तथा मधुर-ध्वनि प्रवाहित हो रही थी :-

"हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ।।१।। [जपुजी]

इसके पश्चात् वाक्यध्वनि होने लगी और यह आवाज़ आई :-

जो तुधु भावै साई भलीकार ।।
तू सदा सलामति निरंकार ।। [जपुजी]

अब रोड़ों के बिस्तर का रंग मखमल के समान हो गया । फिर वह सिंहासन बन गया और वह ऊपर की ओर उठा । वह मूर्ति जो सेवा कर रही थी और जिसे 'अंगदजी' कहकर सम्बोधन किया गया था दैड़कर श्रीचरणों में प्रणाम करने लगी और उन्हीं चरणों में विलीयमान हो गई, जैसे निर्मल हृदय में गरीबी, जलकुण्ड में जल और धूप में चाँदनी समा जाती है । वह दिव्यसिंहासन विधुछटा की । भाँति देदीप्यमान होने लगा । तत्वों का युद्ध दूर हो गया । बाह्य दृष्टि से ऐसा अनुभव होता था कि वह सिंहासन पवन द्वारा अपने कन्धों पर उठाया गया है । सिंहासन ऊपर की ओर उठता गया । इस काल में महान् आश्चर्यजनक वाणी तथा प्रसन्नता के शब्द सुनाई देते थे । इसका वर्णन करना अत्यन्त दु:साध्य है । ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश को वाणी प्राप्त हो गई है और कोई गायन करता हुआ कह रहा है :-

सचखण्डि वसै निरंकार ।।

ऊपर की ओर उड़ता हुआ सिंहासन एक ऐसे केन्द्र पर पहुँचा जिसे समस्त ब्रह्माण्ड का केन्द्र कहा जाए तो उपयुक्त है । इस स्थान से समस्त लोक (देश) तथा खण्ड दिखाई देते थे । यहाँ की गति बड़ी निराली थी । वायु नहीं, जल नहीं, माया के अंश का कोई पदार्थ नहीं लोक नहीं, ब्रह्माण्ड नहीं परन्तु समस्त ब्रह्माण्ड अनेकों सृष्टियाँ, देश-काल के अनेक रंग, एक-दूसरे के अन्तर्गत थे । अनेक प्रकार के अभौतिक पदार्थ दिखाई देते तथा आभासित हो रहे थे ।[1] फिर भीतर तथा बाहर फिरती हुई एक अत्यन्त सूक्ष्म और सरल वस्तु आनन्द प्रदान कर रही थी । जब इस स्थान पर पहुँचे तो एक अत्यन्त विशाल तथा अभौतिक नगर दिखाई दिया जिसकी सुन्दरता को ही सुन्दरता कहना चाहिए तथा सृष्टि के समस्त सौन्दर्य को उसका धोवन कहना चाहिए । उस नगर के द्वार के समीप पहुँचने पर बाहर की ओर अनेकों सुन्दर नर-नारी दोनों ओर पंक्तियों में खड़े दिखाई दिए । इनके भौतिक शरीर दृष्टिगत नहीं होते थे परन्तु उनका अस्तित्व और नाम निश्चय ही था । इनके

---

१. तिथै खण्ड मण्डल वरभण्ड ।। [जपुजी]

वस्त्रों का रंग अत्यन्त मनोहारी था । ये सब अरूप होकर भी रूपवान थे । रंग ऐसे थे कि उन्हे न तो रंगरेज के हुनर में, न आकाश के इन्द्रधनुष में, और न सूर्योदय तथा सूर्यास्त की बेला में बादलों पर पड़ने वाले प्रतिबिम्बों में कभी देख गया है । परन्तु कबीरजी की वाणी इनकी व्यवस्था को संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कहती है :–

कोटि सूर जा कै परगास ।।
कोटि महादेव अरु कबिलास ।।
दुरगा कोटि जा कै मरदनु करै ।।
ब्रह्मा कोटि बेदु उच्चरै ।।
जऊ जाचऊ तऊ केवल राम ।
आन देव सिऊ नाही काम ।।१।। रहाऊ ।।
कोटि चन्द्रमे करहि चराक ।
सुर तेतीस उजेवहि पाक ।।
नव ग्रह कोटि ठाढे दरबार ।
धरम कोटि जा कै प्रतिहार ।।२।।
पवन कोटि चउबारे फिरहि ।
बासक कोटि सेज बिसथरहि ।।
समुदं कोटि जा कै पानीहार ।
रोमावलि कोटि अठारह भार ।।३।।
कोटि कुमेर भरहि भण्डार ।
कोटिक लखिमी करै सीगार ।।
कोटिक पाप पुन्न बहु हिरहि ।
इन्द्र कोटि जाके सेवा करहि ।।४।।
छपन कोटि जा कै प्रतिहार ।
नगरी नगरी खिअत अपार ।।
लट छूटी वरतै बिकराल ।
कोटि कला खेलै गोपाल ।।५।।
कोटि जग जा कै दरबार ।
गन्ध्रब कोटि करहि जैकार ।।
बिदिआ कोटि सभै गुन कहै ।
तऊ पारब्रह्म का अन्त न लहै ।।६।।
बावन कोटि जा कै रोमावली ।
रावन सैना जह ते छली ।।
सहस कोटि बहु कहत पुरान ।
दुरजोधन का मथिआ मानु ।।७।।

कंद्रप कोटि जा कै लवै न धरहि ।
अन्तर अन्तरि मनसा हरहि ।।
कहि कबीर सुनि सारिगपान ।
देहि अभै पद मांगऊ दान ।।८।। [भैरऊ कबीर असटपदी घर २]

पुनः

सतरि सैइ सलार है जा के । सवा लाखु पैकाबर ता के ।।
सेख जु कहीअहि कोटि अठासी । छपन कोटि जा के खेल खासी ।।१।।
मो गरीब की को गुजरावै । मजलसि दूर महलु को पावै ।।१।। रहाऊ ।।
तेतीस करोड़ी है खेल खाना । चउरासी लख फिरै दिवाना ।।

[भैरऊ कबीर १५]

ये तथा अन्य कई भाँति के जीव तथा आत्माएँ । (जो चाहे नाम रख हो) जो अनेकों ग्रहों से आत्मोन्नति करके उस स्थान पर पहुँचे हुए थे, पंक्तियों में खड़े होकर इस तरह के अनुपम बाजे बजा रहे थे जिस प्रकार किसी राजा के पधारने पर हमारे नगरों में रागरंग इत्यादि हुआ करते हैं ।

जब सिंहासन इनके बीच में पहुँचा तब सब लोग इस प्रकार यश गान करने लगे–

कवि कल सुजसु गावऊ गुरू नानक राजु जोगु जिनि माणियो ।।

[सवैये महले १]

और साष्टांग प्रणाम करने लगे । इनके बीच में से निकल जाने पर ऐसा लगा मानो एक नगर रच दिया गया हो । यह अत्यन्त अद्‌भुत तथा महान् आश्चर्यजनक नगर था । हम स्थूल प्राणियों के स्थूल मकानों के समान उन सुक्ष्म प्राणियों के सूक्ष्म मकान थे । ये इन ज्ञानेन्द्रियों द्वारा देखे नहीं जा सकते थे, परन्तु कोई सूक्ष्मतर सूझ उनके अस्तित्व का परिचय देती थी ।

उस नगर के समीप जाते ही एक ऐसी वस्तु अन्दर प्रवेश करती है कि सांसारिक बुद्धि एवं मन आदि बादाम के छिलके की भाँति टूटकर अलग हो जाते हैं, तथा एक अन्य बुद्धि की उत्पत्ति होती है ।[1] वह बड़ी विलक्षण वस्तु है । जिन बातों का वर्णन ऊपर हो चुका है उनकी प्रतीति इस बुद्धि द्वारा हो होती है । अन्यथा अरूप के रूप को देखना तथा समझना तो बहुत दूर की बात है विचार ही वहाँ तक नहीं पहुँच सकते । उस नगर की रचना का पता लगाने के लिए पंचम गुरूजी (श्री अर्जुन देव) का यह शब्द है :–

संत मंडल महि हरि मनि वसै ।
संत मंडल महि दुरतु सभु नसै ।।
संत मंडल महि निरमल रीति ।
संत संगि होइ एक परीति ।।१।।
संत मंडलु तहा का नाऊ ।
पारब्रह्म केवल गुण गाऊ ।।१।। रहाऊ ।।

१. कहि कबीर बृधि हरि लई मेरी बृधि बदली सिधि पाई । [गऊड़ी कबीर ७२]

संत मंडल महि जनम मरणु रहै ।
संत मंडल महि जमु किछू न कहै ।।
संत संग होइ निरमल बाणी ।
संत मंडल महि नामु वखाणी ।।२।।
संत मंडल का निहचलु आसनु ।
संत मंडल महि पाप बिनासनु ।।
संत मंडल महि निरमल कथा ।
संत संगि हऊमै दुख नसा ।।३।।
संत मण्डल का नही विनासु ।
संत मंडल महि हरि गुणतासु ।।
संत मंडल ठाकुर बिसराम ।।
नानक ओति पेति भगवानु ।।४।। [भैरऊ महला ५-३-७]

इस नगर के मध्य में एक बड़ा सुन्दर-सा महल आया । इसकी रचना समस्त शहरों से सुन्दर है । इसकी समस्त इमारत पारदर्शक एवं अभौतिक है तथा बिजली से भी करोड़ों गुना अधिक तरल हैं । इसका प्रकाश अकथनीय है तथा शक्ति महान है । जिस प्रकार डोर के साथ पतंग बँधी होती है उसी प्रकार इसकी अदृष्ट शक्ति के साथ समस्त ब्रह्माण्ड अपने-अपने मार्गों पर चक्कर काट रहे हैं । वह सब नेत्रों का विषय है किन्तु यह नेत्रों का विषय नहीं है :–

अगम द्रुगम गढ़ि रचिओ बास ।
जा महि जोति करे परगास ।।
बिजुली चमकै होइ अनन्दु ।
जिह पऊड़े प्रभु बाल गोबिन्द ।। [भैरऊ कबीर]

अब श्री गुरू नानक देव जी महल के भीतर गये, द्वार बन्द हो गया, परन्तु फिर द्वार खुला । भीतर जाते ही हमारी उस बुद्धि ने भी, जो अभी तक समझ तथा ज्ञान देती रही थी, चक्कर खाया । वहाँ पर प्रकाश-ही-प्रकाश हो गया । उस प्रकाश और तेज का वर्णन नहीं किया जा सकता, वह अकथनीय है । 'अकथनीय है' यही कहा जा सकता है, क्योंकि कहने से तो सीमाबन्दी होती है, और वह असीम देश है तनिक समय के पश्चात् क्या दृष्टिगोचर होता है? बिलम्ब तो वहाँ बिल्कुल हुआ ही नहीं। बस ऐसा लगा कि एक सुन्दर, भव्य सिंहासन पर, जिसका वर्णन पीछे हो चुका है, ज्योतिर्मय परमात्मा, सर्वशक्तियों के अधिष्ठाता, अकाल पुरुष जी विराजमान हैं ।[२] उनके सम्मुख प्रकाशस्वरूप

---

१. पूरे गुर ते महलु पाइआ पति परगटु लोई ।।
नानक अनहद धुनी दरि वजदे मिलिआ हरि सोई ।।

[वार सारंग २८ पौड़ी]

२. महल महि बैठे अगम अपार ।।
भीतरि अमृति सेई जनु पावै जिस गुर का सबद रतनु आचार ।।

[मलार महला १।५।१]

श्री गुरू नानक देव जी बड़े प्रेम, श्रद्धा, भक्ति सहित अहम् रहित तथा अहम् कहला सकने वाली प्रत्येक बात से निवृत हुए से, सत्यस्वरूप बने खड़े हैं । दोनों के बीच में प्रेम का एक ऐसा मिला देने वाला प्रवाह है जो दोनों को एकता में लीन करता हुआ भक्ति की प्रेम वाली भिन्नता दिखा रहा है। इस दशम का वर्णन श्री गुरू अर्जुन देव ने इस प्रकार किया है —

आगै दयु पाछै नाराइण ।
मधि भागि हरि प्रेम रसाइणि ।। [भैरऊ महला ७, १, १]

आपके पीछे दोनों ओर प्रेमभक्ति के फलस्वरूप कई स्थानों तथा कई ब्रह्माण्डों से सच्चे महल मे आमन्त्रित किये गए नामदेव, कबीर, त्रिलोचन आदि भक्त तथा अन्य महान सन्त अवतार एवं पैगम्बर आदर सहित हाथ जोड़े खड़े थे[१] तथा गुरू नानक जी की ओर अत्यन्त श्रद्धा तथा प्रेम के साथ इस प्रकार आनन्दमय होकर देखते थे जैसे किसी राजदरबार में वहाँ के मन्त्री तथा अन्य पार्षद अपने युवराज को देखते हैं। श्री गुरू अर्जुन देव ने इस दशा का इस प्रकार वर्णन किया है :-

कबीरि धिआइयो एक रंग ।
नाम देव हरिजीउ बसहि संगि ।।
रविदास धिआए प्रभु अनूप ।
गुरू नानक देव गोविन्द रूप ।।

[बसन्त महला ५ असटपदीया १-३]

इस समय भक्तगणों[२] ने यह स्तुति की—

परमादि पुरुख मनोपिमं सति आदि भावरतं ।
परमद्भुतं परक्रिति पंर जदि चिन्ति सरबगतं ।।
केवल रामनाम मनोरमं ।
बदि अमृत तत मइअम् ।।
न दनोति जसमरणेन जनम जराधि मरण मइअम् ।।१।। रहाऊ ।।

[गुजरी जैदेव जीओ]

ऐसे अद्भुत अद्वितीय आनन्दमय समय में श्री गुरू नानक देव जी के दैवी मुख से ऐसी स्तुति की सुगन्धि निसृत हो रही थी । ऐसा लगता था मानो वह यह कह रहे हों :—

वडे मेरे साहिबा अलख अपारा ।
किउ करि करऊ बेनंती हऊ आखि न जाणा ।
नदरि करहि ता साचु पछाणा ।।

[वडहंस महला १ छंत ४६]

उधर परम आनन्द स्वरूप श्री अकाल पुरुष जी के कौतुकों को देखकर ऐसा भास होता था कि

---

१. कोटि भगत बसत हरि संग ।।

[भैरऊ महला]

२. भगत तेरे मनि भावदे ।।
दरि सोहनि कीरति गावदे ।।

[वार आसा महला १-८]

वे श्री गुरू को वरदान देकर महानता प्रदान कर रहे है ।[1] उस दशा का वर्णन पंचम गुरूजी ने इस प्रकार किया है–

[2]गुननाद धुनि आनन्द बेद कथत सुनति मुनिजना मिलि सन्त मण्डली ।।१।। ।।रहाऊ ।।
गिआन धिआन मान दान मन रसिक रसन नामु जपत तह पाप खण्डली ।।१।।
जोग जुगति गिआन भुगति सुरति सबद तत बेते जपु तपु अखण्डली ।
ओति पोति मिलि जोति नानक कछू दुखु न डण्डली ।।२।। [कलआन महला ५-५]

अब श्री गुरू नानक देव जी ने आनन्द तथा कृतज्ञता का एक ऐसा आश्चर्यजनक कौतुक दिखाया, जो इस शब्द से प्रतीत होता है :

करता तू मैं माणु निमाणे ।
माणु महतु नामु धनु पलै साचै सबदि समाणे ।। रहाऊ ।।
तू पूरा हम ऊरे होछे तू गऊरा हम हऊरे ।
तुझ ही मन राते अहिनिसि परभाते हरि रसना जपि मन रे ।।३।। [सोरठ : मः १-५]

इसके बाद ज्योतिस्वरूपमय प्रभु ने परम प्रसन्न होकर श्री गुरू नानक जी से कहा — "हे नानक ! मेरी स्तुति कर ।" परन्तु श्री गुरू जी शीश झुकाकर मूक हो गये ।

उस समय ऐसा लगता था मानो "तेरी उपमा तोहि बन आवै"[3] का भाव वे प्रकट कर रहे हों । आदर तथा विनय सहित कुछ समय तक सिर झुकाये हुए वे मूक नाद से स्तुति-गान करते रहे –

सो दरु केहा से घरू केहा जितु बहि सरब समाले ।
वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे ।
केते तेरे राग परी सिऊ कहिअहि केते तेरे गावणहारे ।
गावनि तुधनो पवनु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ।
गावनि तुधनो चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु बीचारे ।
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे ।
गावहि इंद इंदासनु बैठे देवतिया दरि नाले ।
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध वीचारे ।
गावनि जती सती सन्तोखी गावहि वीर करारे ।
गावनि पण्डित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ।
गावनि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले ।

---

१. सच्चा अरजु सची अरदासि ।। महली खसमु सुणे साबासि ।।
सचै तखति बुलावै सोई ।। दे वडिआई करे सु होई ।।२।। [आसा महला १-२१]

२. इसका अर्थ अन्तिम पंक्ति से निकला आरम्भ होता है । हे नानक, तुम्हारी और मेरी ज्योति की परस्पर भेंट होने से संसार के दुःख तथा दंड नष्ट हो गये हैं । जो व्यक्ति तुम्हारे मुख से गुण-गायन श्रवण करते हैं वे ज्ञान तथा आनन्द तक पहुँच जाते हैं मुनियां तथा सन्तों की मंडलियाँ तुम्हारी उच्चरित वाणी सुनकर उसका स्वयं उच्चारण करते हैं और सुनते हैं । ज्ञान-ध्यान आदि सहित जब वे गुणगायन करते हैं (नाम का जाप करते हैं) वहाँ पाप नष्ट हो जाता है ।

३. सवैये महले ३ के ।।

गावनि रतन उपाए तेरे अठ सठि तीरथ नाले ।
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ।
गावहि खण्ड मण्डल वरभंडा करि करि रखे धारे ।
सेई तुधनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ।
होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानक किआ वीचारे ।
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ।
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ।
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ।
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिसदी वडिआई ।
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ।
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिब नानक रहणु रजाई ।।

[जपुजी]

इस स्तुति-गान के समाप्त होने के पश्चात् उस जगदाधार की दैवी वाणी की गूँज सुनाई पड़ी :–

१ ओ अंकार सतिनामु करता पुरखु निरभऊ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।। जपु ।।

हे नानक ! यह मेरे स्वरूप है। इसको स्मरण करे । तब श्री गुरू नानक देव जी ने कहा :–

"आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु" ।।१।।

यह सुनकर परम कृपालु प्रभु जी ऐसे प्रसन्न हुए कि दोनों की ज्योतियों का प्रेम-सम्बन्ध जल और दूध की भाँति हिल-मिलकर एकाएक हो गया । तीन वस्तुओं के स्थान पर एक ही रंग छा गया और चारों ओर प्रेम की एक ही भावना परिव्याप्त हो गई । यहाँ कोई दृष्टि भी कार्य नहीं कर सकती। इस प्रेम के परदे के पीछे क्या है इसका ज्ञान उसी को हो सकता है । जिसने इस दशा की अनुभूति की है ।[1] समस्त अवतार, पैगम्बर, भक्त तथा सन्तादि इसे समय के तेज के आनन्द में आकर दण्डवत् करने लगे और 'एक तुही' 'एक तुही' के रंग में निमग्न हो गये ।

इसके पश्चात् एक कौतुक हुआ जो श्री गुरू अर्जुन देव जी द्वारा उच्चरित इस शब्द से प्रकट होता है :–

पिता हमारे प्रगटे माझ ।।
पिता पूत रलि रीनी सांझ ।।
कहु नानक जऊ पिता पतीने ।।
पिता पूत एकै रंगि लीने ।। [भैरऊ महला ५-१२]

---

१. अण डीठा किछु कहणु न जाए ।।
किआ करि आखि वखाणीऐ माए ।।१।।रहाऊ।। [मलार महला १, ६]

पुनः

अकाल पुरुष का सिंहासण दृष्टिगोचर होने लगा ।।

दरबार के भक्त तथा सन्तादि उसी प्रकार खड़े दृष्टिगत हुए ।।

अब तो महल के बाहर वाले लोग भी दिखाई पड़ने लगे ।

बापु हमारा सद चरंजीवी ।।
भाई हमारे सद ही जीवी ।।
मीत हमारे सदा अबिनासी ।।
कुटंबु हमारा निज घरि वासी ।।१।।

हम सुख पाइआ तां सभहि सुहेले ।।
गुरु पूरै पिता संगि मेले ।।१।।रहाऊ।।

मंदर मेरे सब ते ऊचे ।।
देस मेरे बेअन्त अपूछे ।।
राजु हमारा सद ही निहचलु ।।
मालु हमारा अखूटु अबेचलु ।।२।।
सोभा मेरी सभ जुग अंतरि ।।
बाज हमारी थान थनंतरि ।।
कीरति हमारी घरि घरि होई ।।
भगति हमारी सभनी लोई ।।३।।

[भैरऊ महला ५-२२]

इसके बाद नगर दृष्टिगत होने लगा और फिर समस्त ब्रह्माण्ड दिखाई पड़ने लगे।

समस्त गुप्त एवं प्रकट भक्त तथा सतोदिशों को यह अनुभव हुआ कि आत्मिक संसार में गुरू नानक देव जी का ही राज्य है । अपने-अपने स्थानों पर बैठे हुए समस्त जन उनका यश गायन करने लगे ।

फिर सब-कुछ पहले की तरह ही दृष्टिगोचर होने लगा । प्रभु कृपाल प्रेम सहित कुछ कह रहे थे जिसे श्री गुरू ग्रन्थ जी ने इस प्रकार लिखा है :–

"पण्डित सूर छत्रपति राजा भगत बरोबर अऊरु न कोए" [बिलावल, रविदास २]

इसके आगे का वृत्तान्त हम अपनी बोधगम्य भाषा में इस प्रकार लिखकर समझ सकते हैं। इसके बाद श्री गुरू जी वहाँ निवास करने लगे । समस्त ब्रह्माण्ड का राज्य संचालन उनके हाथों में था । समस्त पीर पैगम्बर, अवतार, फकीर, सन्तादि उनकी आज्ञानुसार चलते थे और वे परमपिता[२] द्वारा सम्मातिन पुत्र सबका प्रबन्ध करते हुए इस ध्वनि में निमग्न थे :–[३]

जा तू ता मैं सभुको तू साहिब मेरी रासि जीओ ।।
तुधु अंतरि हऊ सुख वसा तूं अंतरि साबासि जीओ ।।

[सूही महला १ सुचजी]

१. बाबा पैधा सच्च खण्ड नौ निधि नाम गरीबी पाई ।।

[भाई गुरुदास १-२४]

२. पिता से अति तीब्रतर प्रेम सम्बन्ध का नाम है ।।

३. मगन भइओ प्रिय प्रेम सिओ सूधन सिमरत अंग ।।
प्रगटि भइओ सभ लोऊ महि नानक अधम पतंग ।।११।।

[चउबोले]

यह एक परमानन्द की दया थी जिसे श्री गुरू नानक देव जी ने अपने परमपिता के पाद-पद्मों में बैठकर प्राप्त किया । यह दशा बाणी श्रवणातीत है ।।[1]

५. सचखड से मातृलोक ।

अन्यन्त दयालु स्वभाव वाले श्री गुरू नानक देव जी ने देखा[2] :-

बाझ गुरू अन्धेर है खहि-खहि मरदे बहु बिधि लोआ ।
बरतिआ पाप जगत्र ते धउल[3] उडीणा निस दिन होआ ।
बाझ दइआ बलहीन हो निधर चलौ रसातल टोआ ।
खड़ा इकते पैर ते पाप संगि बहु भारा होआ ।।
थमे कोई न साध बिनु साधु न दिसै जग विचि कोआ ।
धरम धौल पुकारै तलै खड़ोआ ।।२२।।

[वारा भाई गुरुदास १]

प्रजा को इस प्रकार तड़पता देखकर दया की खान और करुणानिधान श्री गुरू नानक देव जी उसे सहन न कर सके । वे यकायक बोल उठे, "अपने सुख का क्या है, दुखियों को सुख देना चाहिए ।" इस विचार-भावना में निमग्न एक दिन भ्रमण करते हुए श्री सतगुरू जी ने जगत् से परलोक में आये हुए जीवों को पापों से लिपटे हुए और दुःख भोगते देखा । इस पर उन्होंने विचार किया कि धरती पर जाकर लोगों को कुछ सीख दी जाय और उनके पापों को नष्ट किया जाए । उन्हें जीवन में ऐसी गति दी जाए कि जिसे प्राप्त करके लोग भूलोक पर अपना समय पाप कर्मों में तथा माल-धन आदि के बखेड़ों में व्यर्थ नष्ट न करके दिवालिये होकर परलोक में आकर दुःख न पावें ।

इन्हीं संकल्पों में विभोर उन्होंने जगत्-तरण परमात्मा को किसी मेहर के रंग में देखा । अत्यन्त आदरपूर्वक उन्होंने परम पिता के प्रति अपने हृदयोच्छ्वास को प्रकट किया ।

अकाल पुरुषजी उनके इस संकल्प को जानकर अत्यन्त आनन्दित हुए । अकाल पुरुष को आनन्दित कहना तो गलत है क्योंकि वे तो सदा सर्वदा आनन्दमय हैं । जो भावना इस समय स्वामी और सतगुरू के बीच थी उसे अंकित नहीं किया जा सकता परन्तु फिर भी अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार कुछ-न-कुछ तो कहना ही पड़ता है । उसे इस प्रकार समझीये कि अकाल पुरुष जी मानों श्री गुरू जी से यह कहने लगे :-

नानक ! दुनिया । कैसी होई ।
गुरू जी - **सालकु मितु न रहिओ कोई ।।**

---

१. अन को दरु घर कबहू न जानसि एको दरु सचिआरा ।।
गुरु परसाद परमपद पाइया नानक कहै विचारा ।।

[भैरों महला १-३-४]

२. बाबा देखै धियान धरि जलती सभ प्रथमी दिसि आई ।
बाझहु गुरु गुबार है है है करदी सुणी लुकाई ।।

[वारा भाई गुरुदास १-२४]

३. धौलु धरमु दइआ का पूतु ।

[जपुजी]

भाई बंधी हेतु चुकाइआ ।
दुनिआ कारणि दीन गवाइआ ।।

[सलोक महला १ वारां तेवधीक – ५]

कलि होई कुत्ते मुही खाजु होआ मुरदारु ।
कूड़ बोल-बोल भऊकण चूका धरमु बीचार ।।[1]

[सारंग महला १-१४]

अकाल पुरुष :–

कहु नानक ! किनि विधि गति होई ?

हे नानक इस दशा के सम्बन्ध में कुछ कहो ।

श्री गुरूजी –

कलि काती राजे कासाई धरम पंख करि उडरिआ ।
कूड़ अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाहीं कहं चड़िआ ।।[2]
हओ भलि विकुंनी होई ।
अधेरै राहु ना कोई ।।
बिचि हउमै करि दुख रोई ।
कहु नानक किनि बिधि गति होई ।।१।।

[वार माझ महला १, १६]

इस पाप-रूपी राक्षस का वध कौन करेगा ?

श्री गुरू जी :–

है हजूरि हाजरु अरदासि ।
दुख सुखु साचु करते प्रभु पासि ।। [आसा महला १-१३]

---

१. कल आई कुत्ते मुही खाजु होआ मुरदार गुसाई ।
राजे पाप कमांवदे उलटी बाड़ खेत कउ खाई ।।
परजा अंधी गिआन बिन कूड़ कुसति मुखहू आलाई ।
चेले साज बजाइदे नचण गुरु बहुत बिध भाई ।।
सेवक बैठणा धरां बिच गुरु उठ धर्रीं तिनाड़े जाई ।।
काजी होये रिसवती वड्ढी लै के हक्क गवाई ।।
इसत्री पुरुखै दाम हित भावै आइ किथाऊँ जाई ।।
वरतिआ पाप सभसु जग मांही ।।

[वारा भाई गुरुदास १-३०]

२. बाबे कहिआ नाथ जी ! सच चन्द्रमा कूड़ अंधारा ।
कूड़ अमावस वरतिआ हऊँ भालण चढ़िआ संसारा ।
पाप गिरासी पिरथमी धउल खड़ा धर हेठ पुकारा ।
सिध छप बैठे परबती कउणा जगत कऊँ पार उतारा ।
जोगी गियाण विहूणिआ निस दिन अंग लगाइन छारा ।
बाझ गुरू डुब्बा जग सारा ।

[वारा भाई गुरुदास १-२-८]

अकाल पुरुष :-

मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा ।[1]

[वार आसा महला १-१४]

श्री गुरू जी—

नदरि करहि तू तारहि तरीऐ सच देवहु दीन दइआला ।
प्रणवति नानक दासनि दासा तू सरब जीआ प्रतिपाला ।।१।।

[तुखारी महला १ छन्द ४]

तुझ ते बाहरि किछू न होइ ।
तू करि करि देखहि जाणहि सोइ ।।१।।
किया कहीऐ किछु कही न जाइ ।
जो कुछ अहै सब तेरी रजाइ ।१।। रहाऊ ।।
जो कुछु करणा सु तेरै पासिं ।
किसु आगै कीचै अरदासि ।।२।। [भैरऊ महला १-१]

अकाल पुरुष :-

जगु करड़ा मनमुखु गावारु । [सिध गोसट ४६]

श्री गुरू जी इसे सुनकर अन्यन्त नम्रता-सहित स्वीकार की भावना में अपना मस्तक झुका दिया। उनके इस उत्तर को अकाल पुरुष जी जानते थे । परन्तु इसे हमारी समझ में लाने के लिए चतुर्थ गुरू श्री रामदास जी ने उसे इस प्रकार कहा है :-

"हऊ काटऊ काटि बाढि सिर राखऊ जितु नानक संतु चड़ि आवै ।"[2]

[रामकली महला ४-३]

अकाल पुरुष :-

अन्तर रतन पदारथ हित कौ दुरै न लाल पिआरी ।
नानक गुरमुखि नाम अमोलक जुगि जुगि अन्तर धारी ।।४।।[3]

[सारंग महला ४-३]

भाव यह कि है नानक ! तुम मेरे पूर्ण ब्रह्मस्वरूप को पहचानते हो। अतएव तुम्हें वरदान है कि तुम समस्त लोगों का उद्धार करे ।[4]

---

१. अर्थात् संसार में पाप एकत्रित करके अपने-आपको दुःखों में डाला है ।

२. इसका भाव यह हुआ क्रि मैं अपना शीश इसलिए काटकर रखता हूँ कि जिससे संसार तथा ईश्वर के बीच एक पुल का निर्माण हो जाये और संत उस पर होकर ईश्वर के दरबार में पहुँच जाए । काट-बाट इसलिए कहा है कि परोपकार निमित्त पंचम, नवम् तथा दसम् गुरुओं को शीश देना पड़ा है।

३. अर्थात् हे नानक ! तुम्हारे अन्दर मैने प्रेमरत्न पदार्थ भर दिया है। इसके प्रेम के वश होकर मेरा प्रिय लाल प्रकट होने लगा है । हे नानक ! तुम्हें गुरुमुख की अमूल्य उपाधि और नाम की अटूट निधि मैंने प्रदान की है । युगयुगान्तर से तुम ही उसके धारण करने वाले हो ।

४. सगल समूह लै उधरे नानक पूरन ब्रह्म पछाता । [देवगन्धारी महला ४-२१]
कहु नानक जन कओं बलि जाइऔ को सभना करे उधार ।।२।। [देवगन्धारी महला ५-२३]

श्री गुरू जी :–

भूर भविख नाही तुम जैसे मेरे प्रीतम प्रान अधारा ।
हरि कै नाम रती सोहागनि नानक राम भतारा ।।४।।१।।

[सारंग महला १]

इस पर अकाल पुरुष ने निम्न भावों को व्यक्त किया :–

सरब सील ममं सील सरब पावन मम पांवनह ।
सरब करतब ममं करता नानक लेप छेप न लिपते ।।

[सहिसकृती महला ५-३८]

अर्थात् तेरा समस्त धर्म मेरा धर्म होगा । तेरी समस्त पवित्रता मेरी पवित्रता होगी । तुम्हारे समस्त कर्म मेरे कर्म होंगे ।

हे नानक ! तुम्हें कोई खेद नहीं होगा । तुम्हारे कार्य मैं करूँगा; वास्तव में कार्य करने वाला तो मैं ही होऊँगा । तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा । श्री गुरू नानक देव जी प्रत्येक शरीर (गुरूओं के) धारण करते समय इसी वरदान को प्राप्त करते रहे हैं ।

अब एक पुष्प विमान आकर उपस्थित हुआ जिसे 'परोपकार' के नाम से पुकारा जाता है । एक देवता ने जिसे विरह कहा जाता है प्यारे पिता की पवित्र गोद से श्री गुरू जी को पुष्प विमान में बिठाया । तीन अन्य व्यक्ति वहाँ आकर उपस्थित हुए । इन चारों ने मिलकर विमान को उठाया ।

जिस प्रकार मूलवृक्ष से शाखा निकलकर वायु, वर्षा तथा हिमपात के दुःखों से बचाती है, और स्वयं पुष्पित तथा फलित होकर लोगों का पुष्पों की मनोरम सुगन्ध तथा फल खाने को देती है । उसी प्रकार श्री सत्यगुरू जी अपने परमपिता से मिले हुए होकर भी परोपकार करने के लिए शाखा के[1] विछोह की भाँति अविच्छिन्न बिछोह ने बिछुड़ते संसारी जीवों के कष्टों को सहन करने के लिए चल पड़े ।

जब पुष्प विमान स्वरूप के महल से निकलकर आगे बढ़ा तब कोटि-कोट ज्योतिरूप वाले सतगुरू के प्रेम में विह्ल होकर श्रद्धा तथा भक्ति की भावना से ओतप्रोत होकर सजल नेत्रों से उनसे बिछुड़ने पर शोक परन्तु उनकी आज्ञा मानने तथा उपकार करने में आनन्दित होकर, अपने को न्योछावर करते हुए, नमस्कार करते हुए और वारते हुए दृष्टिगत हुए ।

पुष्पविमान आगे-आगे चलता गया और धीरे-धीरे नीचा होता गया । सूक्ष्म-मण्डल पीछे घूमते गए और स्थूलता बढ़ती गई । प्रकाश कम होता गया । परन्तु पुष्पविमान निर्विरोध चलता गया । उसके साथ संगीत, जयध्वनि और आनन्द थे । प्रत्येक लोक, खण्ड तथा स्थान पर आदर, सम्मान और हर्ष सहित जय-जयकार हो रहा था । आखिरकार पुष्प विमान इस धरती के अँधेरे-मण्डल में आ पहुँचा । यद्यपि यहाँ इस धरती पर भी प्रकाश था परन्तु उस प्रकाश के सामने यहाँ का प्रकाश प्रतिबिम्ब की भाँति लग रहा था ।[2]

---

१. तुं पेडु साख तेरी फूली । [माझ महला ५-२०]
२. ओथै दिहु ऐथै सभराति ।। [मलार महला ५-१-८]

इस समय यह संशय होता था कि हमारे पापियों के इस संसार में सर्वोच्च श्री गुरू नानक देव जी किस प्रकार रहना पसंद करेंगे ? भला हिमगृह से निकलकर अग्निगृह में किसका निर्वाह हो सकता है । परन्तु जब इस पापी जीव के शीश झुकाने पर आप हँसे और प्यार सहित कृपापूर्ण शब्द बोले, तब समझ में आ गया कि संसार में यदि कहीं सुख मिल सकता है इनसे ही, जिन्होंने कभी भी पापी से घृणा नहीं की ।

अब पुष्पविमान भारत देश के लाहौर नगर से तीस कोस पश्चिम की ओर रायभोई के तलवंडी नामक एक नगर की ओर मुड़ा। यहाँ पर वेदी वंश के एक मध्यमवर्गीय घर में मेहता कालू नामक नगर का पटवारी तथा शासक का निजी कारदार तथा मन्त्री था । इसके घर में स्वच्छ, सुन्दर तथा विशाल दालान में इसकी पत्नी तथा उसके पास दो दासियाँ बैठी थीं । यद्यपि दीपक जल रहा था परन्तु एकाएक अपने-आप अधिक प्रकाश हो गया और उस जलते हुए दीपक का प्रकाश मन्द पड़ गया । इसके पश्चात् वहाँ के दीवानखाने में गाने की अति मधुर- ध्वनि कानों में पड़ने लगी और कुछ सूरतों के प्रतिबिम्ब दीख पड़ने लगे । इस दशा को देखकर सभी स्त्रियाँ सहम गईं किन्तु हृदय में वे प्रसन्न हुईं और एकाग्रचित हो गईं । वहाँ के वातावरण में एक प्रकार का आश्चर्य-सा छा गया । वे अपने कानों तथा नेत्रों द्वारा उस आश्चर्य को समझने का प्रयास करने लगीं । इसी समय गुप्त संसार के तपस्वी तथा सन्तजन जो लुक-छिपकर तपश्चर्या करते थे अपने-अपने सूक्ष्म शरीरों में प्रवेश कर वहाँ आ गए । यद्यपि द्वार बन्द था परन्तु यह पता न चल सका कि ये किस ओर से प्रवेश कर रहे थे । जब समस्त व्यक्ति वहाँ विराजमान हो गए तब उन्होंने सामूहिक रूप से एक भजन का गायन[1] किया जिसका तात्पर्य निम्न पंक्तियों में दिया गया है :—

आओ साजन सन्त मीत पिआरे ।।
मिलि गावह गुण अगम अपारे ।।
गावत सुणत सभै ही मुकते सो,
धिआईऐ जिनि हम कीए जीओ ।।१।।
जनम जनम के किलबिख जावहि ।।
मन चिन्दे सेई फल पावहि ।।
सिमरि साहिबु सो सचु सुआमी रिजकु सभसु कओ दीए जीओ ।।२।।

[माझ महला ५-३५]

इस भाव का संगीत हो चुकने के बाद पहले की अपेक्षा और अधिक प्रकाश हो गया । समस्त व्यक्ति सादर शीश झुकाकर धन्यवाद की भाव-मुद्रा में हाथ जोड़कर सत्यगुरु के स्वागत के लिए खड़े हो गए । इसी क्षण आदेश से आता हुआ श्री गुरू नानक जी का विमान उस सन्त दरबार के बीच पहुँचकर सुशोभित हुआ । सब व्यक्तियों ने इस प्रकार सादर कीर्तनगान किया :—

"नओतन प्रीति सदा ठाकुर सिउ अनदिनु भगति सुहावी ।।
मुकत भये गुरु दरसु दिखाया जुगि जुगि भगति सुभावी ।।

[मलार महला १-४]

---

१. जिथे जाइ भगतु सु थानु सुहावणा ।।
सगले होए सुख हरिनामु धिआवणा ।। [फुनहे महला ५-१८]

इसके पश्चात् पुष्पविमान के साथ आये हुए देवों ने गुरू यश गायन किया। वह ऐसा सुन्दर राग था कि उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। इसके बाद समस्त सन्त मण्डली ने गायन किया, जिसका भाव निम्न कविता में कुछ-कुछ मिलता है :-

सुपन चरित्र चित्र बानक बने बचित्र पावन पवित्र मित्र आजु मोरे आये हैं ।।
परम दियाल लाल लोचन बिसाल मुख बचन रसाल मधु मधुर पी आये हैं ।।
सोभत सिहजासन बिलासन दै अंकमाल प्रेम रस बिसम होइ सहजि समाये हैं ।।२०५।।

[भाई गुरुदास]

इस प्रकार के प्रेमपूर्ण वाक्य सुनकर श्री गुरू जी ने बड़े प्रेम से संत मण्डली को कुछ इस प्रकार का सन्देश दिया :

तिसै सरेवहु प्राणी ही जिसदै नाओ पलै ।।
ऐथे रहहु सुहेलिया आगै नालि चलै ।।
घरु बंधहु सच धरम का गडि थंमु अहलै ।।
ओट लेहु नारायणै दीन दुनीआ झलै ।।
नानक पकड़े चरण हरि तिसु दरगह मलै ।।[1]

[वार गऊड़ी महला ५-८]

संतों ने फिर कुछ और कहा, जिसका भाव निम्न शब्द में मिलता हैं :

सारंग महला ५ सूरदास ।
१ ओ अंकार सतिगुर प्रसादि ।
हरि के संग बसे हरि लोक ।।
तन मनु अरपि सरबसु सभु अरपिओ अनद सहज धुनि झोक ।।१।।रहाऊ।।
दरसनु पेखु भये निरबिखई पाए है सगले थोक ।।
आन बसतु सिओ काजु न कछूए सुन्दर बदन अलोक ।।१।।
सियाम सुन्दर तजि आन जु चाहत जिओ कुसटी तनि जोक ।।
सूरदास मनु प्रभु हथि लीनो दीनो इह परलोक ।।२।।

इस पर श्री गुरू जी ने कुछ ऐसा भाव व्यक्त किया :

कीरति सूरति मुकति इक नाई ।।
तही निरंजनु रहिआ समाई ।।७।।

---

१. हओं ढाढी बेकार कारै लाइआ ।।
राति दिहै कै बार धुरहु फुरमाइआ ।।
ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ ।।
सची सिफति सालाहि कपड़ा पाइआ ।।
सचा अमृत नाम भोजनु आइआ ।।
गुरमती खाधा रजि तिनि सुखु पाइआ ।।
ढाढी करे पसाओ सबदु बजाइआ ।।
नानकु सच सालाहि पूरा पाइआ ।।

[वार माझ महला १]

श्री गुरू जी ने अपने सचखंड प्रवेश तथा वर प्राप्ति की साक्षी स्वयं इन पंक्तियों द्वारा प्रकट की है ।

उसतति करहि केते मुनि प्रीति ।।
तनि मनि सूचै साचु सुचीति ।।
नानक हरि भजु नीता नीति ।।८।।

[गऊड़ी महला १ अष्टपदिया]

इस पर सन्तों ने इस प्रकार धन्यवाद दिया :

धरणि सुवंनी खड़ रतन जड़ावी हरि प्रेम पुरुखु मनि बुठा ।।
सभै काज सुहेलड़े थीए गुरु नानक सतिगुरु तुठा ।।१।।

[वार गऊड़ी महला ५-१७]

श्री गुरू जी ने फिर यह प्रभाव प्राप्त किया :

नानकु आखै इहु बीचारु।।
सिफती गंढ़ पवै दरबारि।।[1]

[वार माझ महला १-१२]

कैसी आश्चर्यजनक लीला है । संतजन तो उनकी उच्च-से-उच्च स्तुति करते हैं और श्री गुरू जी स्वयं इतने उच्च होकर भी नम्रभाव से उनको परमेश्वर की आँचल पकड़ने का उपदेश देते हैं । परन्तु वे भी गुप्त प्रसार को समझते थे। अतएव तत्काल कुछ प्रकार के शब्द बोले:

आपे पटी कलम आपि उपरि लेखु भि तूं ।।
एको कहीऐ नानका दूजा काहे कू ।।

[वार मलार महला १-२८]

गुरू जी-

भनित नानक सभना का पिरु एको सोए ।।
जिसनो नदरि करे सा सोहागणि होए ।।४।।

[आसा महला १-१०]

तपस्वी-

जितु तू लाइहि सचिआ तितु को लगै नानक गुण गाई ।।[2]

गुरू जी-

आपे बखसे मेलि मिलाए नानक सरणि तुमारी ।।

[रामकली महला १ अष्टपदिया ८]

---

१. जिस सरब सुखा फल लोड़ीअहि सो सचु कमावऊ ।।
नेड़ै देखऊ पारब्रहमु इकु नाम धिआवऊ ।।
होए सगल की रेणुका हरि संग समावऊ ।।
दुखु न देई किसै जीअ पति सिओ घरि जावऊ ।।
पतित पुनीत करता पुरखु नानक सुणावऊ ।।

[वार गऊड़ी महला ५, १७]

२. गुरू नानक हरि नामु द्रिड़ाइआ भन्नण धड़न समरथु ।
प्रभु सदा समालहि मित्र तू दुखु सबाइआ लथु ।।

[वार गऊड़ी महला ५-३२]

फिर संतों ने अपने मधुर स्वरों से एक गीत गाया जिसको गुरू अर्जुन देव जी के शब्दों के निम्न रूप में दिया गया है –

कोटि ब्रहमंड को ठाकुर सुआमी सरब जीआ का दाता रे ।।
प्रतिपालै नित सारि समालै इकु गुनु नही मूरखि जाता रे ।।१।।
हरि आराधि न जाना रे ।।
हरि हरि गुरु गुरु करता रे ।।
हरि जीओ नामु परिओ रामदासु ।। रहाऊ ।।
दीन दइआल क्रिपाल सुख सागर सरब घटा भरपूरी रे ।।
पेखत सुनत सदा है संगे मैं मूरख जानिआ दूरी रे ।।२।।
हरि बिअंतु हऊ मिति करि वरनओ किआ जाना होइ कैसो रे ।।
करउ बेनती सतगुरु अपुने मैं मूरख देह उपदेसो रे ।।
मैं मूरख की केतक बात है कोटि पराधी तरिआ रे ।।
गुरु नानक जिन सुनिआ पेखिआ से फिर गरभासि न परिआ रे ।।४।।२।।१३।।

[सोरठ महला ५]

इस प्रकार आनन्दित होकर गीत गाते[1] तथा नमस्कार कर और आशीष लेकर सन्त जन विदा हुए। उधर पुष्पविमान और देवतागण भी विदा हो गए ।

रात का समय था । तलवंडी नगर के लोग सो रहे थे । बाहर वृक्ष भी सो रहे थे । चलते कूप भी स्थिर खड़े थे, जागृति में नहीं आये थे। तारिकाओं का प्रकाश स्थिर-रूप से पृथ्वी पर पड़ रहा था । धीरे-धीरे नीरव रात्रि व्यतीत होकर एक प्रहर-भर रह गई होगी कि इसी नगर में एक पण्डित तारों की ओर देखता हुआ दृष्टिगत हुआ। वह कभी पत्री से गणना करके कुछ देखता था, कभी आकाश की ओर देखता था और कभी कुछ विचारता हुआ सोच-विचार में डूब जाता था । भीतर से उसकी पत्नी ने पुकार कर पूछा, "पण्डित जी ! आज इस समय नक्षत्रों को देखकर आप कौन से लम्बे-चौड़े हिसाब कर रहे हैं ?"

पण्डित जी थोड़ा सँभले और फिर बोले,

"मेहता कालू के घर में बालक ने जन्म लिया है, इसलिए ग्रह-नक्षत्रों का विचार कर रहा हूँ । वह तो भाग्यवान, कोई महाबली मालूम पड़ता है ।"

कृपालु श्री गुरू नानक देव जी के आने पर जगत की ओर से स्वागत सेहरा ।

६. स्वागत सेहरा

इक श्याम घटा छाई, उदास नजर आई
हो बरस रहा सहम मेघ छाये झड़ी लाई

---

१. समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई ।।
गुरू गोविन्दु गोविन्दु गुरू है नानकु भेद न भाई ।।४।। [आसा धंत महला ४-८]

तुम चमके इन्द्रधनु में पींग एक सब लगाई
ओ दमक पड़ी कालिख ज्यों फट गई हो काई
एक तेल पड़ी बत्ती, एक बुझे पड़े दीवे
नहीं तनिक रही रौनक, उर कालिमा थी छाई
तव आये तुम कहाँ से, हे ज्योति पुंज सहसा?
आ लग गये गले से अधर चूमे तुरत धाई
दे दिव्यता सलोनी भर कैसे गये जीवन
हां चले गये लग कर पर फिर भी रहे छाई
सौन्दर्य का फुव्वारा जीवन की बाँकी झाँकी
फिर बाले बुझे दीपक नई जिन्दगी-सी आई
लकड़ी के ढेर से थे जो तुल भी नहीं सकते
पत्थर से मृत न पड़ता जीवन नहीं दिखाई
आये ज्यों बिजली चमकी रंगरेलियाँ लगाई
सौन्दर्य की दमक में जीवन की गति सवाई
हो रात थी अँधेरी जिसने ढका धरणि को
पैठी थी इक उदासी छाई थी धुँधलयाई
तुम आये सूर्य बनकर लाये प्रकाश रेखा
ताम भाग गया जिससे सुन्दरता झलझलाई
हो मौत को भगाकर जीवन प्रभा बसाई
यह विरद आपका है पल भर न लगा सांईं
पतझड़ यहाँ बसा था डाली खड़ी थी नंगी
गमगीन सी थी रंगत मुख पर ज्यों काली झाँई
तुम आये इस धरा पर बन कर वसन्त सुषमा
अन्तर में आ वसे तो झनकार नई पाई
चेतनता मिल गई तो सबने दृगों को खोला
खिल उठी कंज कलियाँ मीठी हँसी समाई
मृतकों में डाल जीवन सौन्दर्य वृष्टि करते
विहँसाते तुम्हीं जीवन है धन्य तन बड़ाई

□□

नोट :- लेखक की पंजाबी कविता का यहाँ पर अनुवाद किया गया है ।

२ प्यारे के बाल-कौतुक

१. अवतार

गुरू नानक देव गोविन्द रूप ।।८।।

[वसंत महला ५]

पिछली रात का चन्द्रमा जो कई रातों से शनैः-शनैः क्षीण होता जा रहा था, आज पूरब दिशा के कोने में एक बारीक प्रकाश की कमान-सी बनाकर सूर्योदय के प्रकाश की प्रतीक्षा में अपनी चन्द्रिका बलिदान करने के लिए इस प्रकार खड़ा है जैसे किसी अग्निहोत्री के हाथों में अर्ध्यपात्र के मुँह से घी की आहुति अग्नि में कूद पड़ने को तैयार रहती है ।

नक्षत्र–मण्डल सारी रात सौन्दर्य-वर्षा करते रास-मण्डल के नृत्य की भाँति चलते बने । परन्तु अदृष्ट 'स्वयं बलिदानी' नृत्य में धीरे-धीरे ठुमकते ध्रुव-नक्षत्र के चारों ओर चक्कर खाते तथा आने वाले सौन्दर्य के आने से पूर्व उसका समाचार लेकर अपना प्रकाश अर्पण करते हुए छिपते जा रहे थे ।

नीला आकाश धुली हुई नील माटी के समान दमक रहा था । ऐसा लगता था मानो किसी भक्तिभाव मे शान्त रस रसिक होकर अपने उच्च मंडलों में किसी उच्च तथा अद्वितीय प्रकाश के उड़ते हुए रथ का 'आदर मण्डल' बनने के लिए चाव से झुककर मार्ग निहार रहा हो ।

शीतल मन्द सुवासपूर्ण पवन चल रहा था । ऐसा प्रतीत होता था मानो असीम रूपवती कुमारिकाएँ किसी ईश्वरीय ज्योति एवं धर्मस्वरूपमय जगतारप सूरमा की विजय के उपलक्ष्य में उसके स्वागत-हेतु अत्यन्त चाव से उसकी आरती उतारने जा रही हों ।

वन–प्रान्तर में सघन वनस्पति पुष्पों से लदी खड़ी थी। ऐसा लगता था मानो किसी गुणों के निधान एवं सौन्दर्यराज के स्वागत के लिए वनश्री पुष्पों के कोमल दल उसके मार्ग में बिखेरने के लिए बड़े चाव से खड़ी हो । वे अपनी मनोरम सुगन्धि चारों ओर बिखेरकर आत्मा तक को तृप्ति प्रदान कर रही थीं तथा पुष्पों की वर्षा करने के लिए उमंग में फटी पड़ रही थीं ।

ऊँचे-ऊँचे तथा लम्बे वृक्षों के कारण हरित डालियाँ 'वनस्पति वनमाली' के मार्गों पर मन्द-मन्द गति चँवर डुल रही थीं ।

हरी घास रात-भर स्नान कर स्वच्छ होकर ओस-बिन्दु की मौक्तिक-माला धारण कर सदा हरे-भरे के आगमन में न्योछावर होने की उमंग में प्यार से भरकर मखमली फर्श की तरह बिछकर लहलहा रही थी ।

पूरब दिशा में पहली प्रकाश-रेखा फूटी । इसके बाद ही महीन-महीन, कोमल-कोमल, अडिग-अडिग परस्पर मिली हुई प्रकाश-किरणें तीव्र तथा अदृष्ट गति से दौड़ती हुई आईं । चिड़िया

चहक उठीं । अनेकों पक्षी घोंसलों से निकल पड़े । सबने राग अलापना शुरू कर दिया । ऐसा लग रहा था मानो नवागन्तुक के शुभागमन का यश गायन हो रहा हो ।

देखो, पूरब की ओर से स्वर्णिम प्रकाश-रेखा के बाण गोलाई ले-लेकर उठे। ओजभरी, तेज-भरी, पिघले स्वर्ण की भाँति लहराती, दमकती तथा प्रभापूर्ण आभावाली सूर्य के गोले की गोलाई धरती के नीचे से उभरती तथा ऊँची होती हुई निकल पड़ी। नेत्रो ! उसे देखो, ताको वह साफ दिखाई पड़ रही है । किसी तरह की घबराहट नहीं होती है । नेत्र स्थिर होकर टिक जाते हैं ।

किस प्यार की आभा के साथ यह सौन्दर्य नेत्रों में आकर भरता है, अन्तकरण का सिंचन करता है तथा मन का मस्ती प्रदान करता है । हाँ, सौन्दर्य की प्यास वाले, सौन्दर्य के स्पर्श से फड़क उठने वाले, सौन्दर्य के पारखी, सौन्दर्य के लिए ही जिनकी रचना हुई है, सौन्दर्य को झोली में ग्रहण करने वाले, मानो सौन्दर्य की प्रेम-साधना में सौन्दर्य से ही विस्फारित नेत्र किस प्रकार सौन्दर्यपान कर रहे हैं । नेत्र झपकी तक नहीं लेते। जैसे-जैसे सौन्दर्य का थाल ऊपर की ओर उठता है नेत्र सौन्दर्य की वर्षा तथा सौन्दर्य सलिल में स्नान करते जाते हैं। सम्मुख खड़े तो सौन्दर्य के तेज में हैं परन्तु लगता ऐसा हैं कि किसी सरोवर में स्नान कर केवल नेत्रों ही को नहीं वरन् समस्त शरीर फूल की तरह हल्का और तरोताज़ा हो गया है ।

सौन्दर्य का वह खण्ड आकाश में ऊपर चला गया । अब उस पर नज़र नहीं टिकती । किन्तु अंधकार में आच्छादित रहने वाली धरती के गगन-मण्डल में सौन्दर्य भर गया। प्रकाश-ही-प्रकाश की झड़ी लग गई, मानो धरती पर कभी अंधकार आया ही नहीं था । घरों तथा वृक्षों की परछाइयाँ इस प्रकाश के आगे धरती पर लम्बी-लम्बी पड़ने लगीं। अंधकार धरती से भी भागा और मानस-मंण्डल से भी तिरोहित हो गया । निद्रा इतनी शीघ्र भागी कि दौड़ती हुई नज़र तक नहीं आई । सौन्दर्य अब 'जागृति' का रूप धारण कर जीवों के अंदर प्रवेश करने लगा । आलस्य की गोद में सोये हुए प्राणी तड़क-तड़ककर उठ बैठे । उद्यम के चरण पंख लगाकर उड़ने लगे । समाधि में लीन वृत्तियाँ सूर्य की फैली हुई किरणों की भाँति अपने भीतरी नूर से उठकर बाहरी पसारे मे आकर प्रकृति के जलवे में रस पिपासिनी हो रही हैं ।

दीर्घ, कोमल, एक-दो-तीन स्वर वाली ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगीं–तूँ-तूँ-तूँ-तूँ ! कौन है ? कोई व्यक्ति ? नहीं । एक चलता कुआँ हमें अचेतन दृष्टिगत होता है । किन्तु कुआँ एक ध्वनि कर रहा है घूँ-घूँ-घूँ । परन्तु अब इस ध्वनि में से तूँ-तूँ अनुभव करने वाले अदेशी कान आ गये । जिससे जागृ कर्ण कुहरों में ये नाद तुँ-तूँ का संगीत बनाने लगे । कुआँ खेतों को पानी दे रहा है । घूँ-घूँ की आवाज़ के साथ किसान को उसकी गतिशीलता की याद दिला रहा है । पर हाँ, अदेश से आये हुए अदेशी मन, कवि-मन, फकीर-मन, अवतारमन करतार के साथ सदा एक स्वर हुए मन जी इससे गुंजार प्राप्त कर रहे हैं–तूँ-तूँ-तूँ ।

कुएँ की बाल्टियों का चक्र भरकर ऊपर की ओर आता है और पानी उलटकर खाली होकर नीचे चला जाता है । परनाला जल लेकर नाले को देता है। नाला पानी लेकर आगे बहा देता है । हौज़

जल लेकर अपने-आपको भर लेता है परन्तु दूसरी ओर बरहे को दान के रूप में देना आरंभ कर देता है । बरहा लबालब भर जाता है और बहने लगता है और आगे जाकर अपना सर्वस्व खेत को अर्पण कर देता है । खेत जल लेकर अपने में समाविष्ट कर लेता है, अपनी भीतर छिपे बैठे कुओं को पिलाता हैं वे जाग उठते हैं। हरे-भरे होकर, सिर बाहर निकालकर लहलहाते हुए झूमने लगते हैं । शेष जल जीवन-दान करता हुआ खेत में से नीचे की ओर उतरता है । बीचों बीच रिसता हुआ कुओं के तल की ओर जाता है । वहाँ से फिर रहट के सहारे ऊपर की ओर चढ़ता है । हाँ, कुआँ चल रहा है— तूँ-तूँ का नाद हो रहा हैं ।

कुएँ के समीप एक अधेड़ आयु का व्यक्ति कच्चे परन्तु साफ चबूतरे पर बैठा है । वह स्नान कर चुका है और अपना साफा धूप में सुखा रहा है । कुएँ की आवाज तूँ-तूँ करती कानों में जा रही है । परन्तु उसके कानों को इस घूँ-घूँ में से तूँ-तूँ को परखने का अभ्यास नहीं है । वे स्वयं कोई जाप कर रहे हैं परन्तु उसका अनुभव नहीं कर पाते हैं । ये गाँव के पुरोहित हैं। इनका नाम हरदयाल हैं। इनका व्यवसाय यजमानी करना हैं; दान-दक्षिणा भी स्वीकार कर लेते हैं । स्वभाव से भोले-भाले, भीरू तथा पूजा-पाठ में रहने वाले हैं। इनके समय में देश महान राजकष्ट में है । पण्डित हरदयाल जी देश तथा जाति के कष्टों का अनुभव कर दुखित हैं। देश में एकता नहीं है । बल तथा साहस का अभाव है । राष्ट्र-प्रेम तथा बलिदान की भावना नहीं हैं। यह सब दुर्दशा देखते-देखते जब पीड़ा की अनुभूति अधिक हो जाती है तब रुदन कर पड़ते हैं और कोई चारा न देख परमात्मा से विनय करते हैं—"हे भगवन् ! जब धर्म का पतन होने लगता है तब तुम उसकी रक्षा करने के लिए आते हो । अब तो अति हो चुकी है । कृपा कर शीघ्र आओ और रक्षा करो । हे भगवन् ! जब राक्षस देवताओं को पीड़ित करते हैं तब तुम आकर देवताओं की रक्षा करते हो और वे अभय हो जाते हैं । अब शीघ्र पधारो । समस्त देवभूमि पापग्रस्त तथा यवनमय हो चली है ।"

इसी समय दूर वन के वृक्षों से एक ध्वनि सुनाई पड़ती है— "धन्य निरंकार ! धन्य निरंकार !" पुरोहित चौंक उठता है और कहता है—"क्या आप आ गये, लगता तो ऐसा ही है, मेरा अनुमान सम्भवतः ठीक है ।" फिर गद्‌गद कण्ठ से वह कहने लगते हैं—"धन्य हैं मेरे नेत्र ! ये परम सौभाग्यशाली हैं । हे भगवन् ! हे त्राणकर्ता नमोनमः ।"

इस मनोजुहार में बैठे थे यह सब विचार ही रहे थे कि इनमें कम आयु वाले एक सज्जन स्नान करके वहाँ आ गए । वे आकर चबूतरे पर बैठे । ये भी ब्राह्मण थे । इनका नाम गोपाल पाण्डेय था । ये थोड़ी-बहुत संस्कृत जानते थे । इसके अतिरिक्त मुड़िया ठाकर तथा शारदा के अक्षर भी जानते थे । ये बालकों को अक्षर-ज्ञान, पत्रादि पढ़ना-लिखना, पहाड़े, दर, ब्याज, कोष्ठ, बहीखाता, चिट्ठा बनाना, हानि-लाभ निकालना इत्यादि पढ़ाते थे । इनसे पढ़कर बालक दुकानदारी तथा व्यापार के कार्य में योग्यता प्राप्त कर लेता था । यद्यपि ये महान पण्डित नहीं थे किन्तु 'सहस्त्रनाम' इत्यादि कण्ठस्थ था । जब ये चबूतरे पर आकर बैठे तो पण्डित हरदयाल को देख उनसे बातचीत करने के इच्छुक हुए । परन्तु वे 'धन्य निरंकार' के आते हुए सूक्ष्म शब्द की ओर तल्लीन तथा चढ़ते हुए सूर्य को अंजुलिदान में इतने निमग्न थे कि गोपाल पाण्डेय इनकी ओर देखते ही रह गये, कुछ कह न सके ।

इसी समय कुएँ से निवृत्र होकर पण्डित बृजनाथ जी भी वहाँ आ गये । ये न तो पुरोहित थे न पाण्डेय परम विद्वान तथा शास्त्रज्ञ थे । इनकी उपजीविका थी लोगों द्वारा की गई सेवा । थोड़ी भूमि थी, जिससे खाने-पीने का अनाज हो जाता था। इनका मुख्य काम था शास्त्रों का पठन-पाठन । दूर-दूर के विद्यार्थी तथा साधु-संन्यासी इनसे शिक्षा प्राप्त करने तथा शंका-निवारणार्थ आते थे । जनता के घोर कष्टों को देखकर इनका हृदय भी पीड़ित था । दिल्ली से आये हुए एक वैष्णव साधु ने एक दुःख की बात सुना दी थी, जिसे सुनकर आज अत्यन्त दुखित थे । ये भी चबूतरे पर आकर बैठ गये और पुरोहित जी प्रतीक्षा करने लगे कि जब वे अंजुलिदान समाप्त कर लें तब उनके साथ कुछ देर विचार-विमर्श किया जाए ।

कुछ समय पश्चात् पुरोहित जी पूजा से निवृत्त हुए । पूर्व दिशा में देदीप्यमान सूर्य की ओर से जो 'धन्य निरंकार' की ध्वनि आ रही थी वह अब धीरे-धीरे दूर होती चली जा रही थी और कानों को सुनाई नहीं पड़ती थी । अंजुलियों द्वारा किया जाने वाला रस समाप्त हो गया । पण्डितजी ने प्रकृतिस्थ होकर अपने नेत्र खोले । तीनों पण्डितों ने आपस में नमस्कार किया और वे एक-दूसरे के समीप खिसककर बैठ गये । सूर्य आकाश में ऊपर चढ़ चुका था । अत्यन्त मधुर ऋतु थी तथा आनन्दमय समय था । वे आपस में बातचीत करने लगे ।

सबसे पहले पंडित बृजनाथ ठण्डी साँस भरकर बोले, "न जाने कैसी दैवगति है ? हिन्दू जाति और धर्म की समाप्ति संभवतः निकट आ गई है । पहले जौनपुर की घटना सुनी थी । देवी के समक्ष बलि देने वालों की क्या दशा की गई थी, और दिल्ली से जो रोज़-रोज़ नये-नये अत्याचारों की कहानी सुनने को मिलती रहती है । काशी के रामप्रसाद की दर्दभरी घटना रोयें खड़े कर देने वाली थी । आज फिर दिल्ली से अत्याचारों की कहानी सुनी है । ऐसा लगता है कि महमूद का वक्त फिर से लौटकर आ गया हैं ।

हरदयाल—क्या कहा जाय । जब से राजा जयपाल स्वर्गवासी हुए तब से कुशल क्षेत्र तो समाप्त हो गई । कोई भी दिन आराम से नहीं बीता । सुख, शिक्षा तथा कला से सम्पन्न और सोने-चाँदी में भरा पूरा मालामाल हमरा यह देश इन विदेशियों की भूख तथा तृष्णाग्नि के आगे बलिदान हो गया । हम मर मिटे मगर इनकी भूख न मिटी ।

यह सुनकर गोपाल धीरे से बोले—हमारे ।

इस परगने में थोड़ी शान्ति है । भाई है तो मुसलमान मगर अभी तक गौ ब्राह्मण की रक्षा करता रहा । यह आश्चर्य की बात जरूर है । क्योंकि होता तो यह है कि नया बना हुआ मुसलमान अपने हिन्दू भाईयों पर खूब ज़ोर-शोर से अत्याचार करता है । जैसे दासों में से बना मुखिया दासों के व्यापारी की अपेक्षा अपने भाईयों पर अधिक अत्याचार करता है । किन्तु राय भोइ न इसके विपरीत आचरण किया है ।

हरदयाल—मेरे विचार में उसके स्वभाव की खूबी के साथ-साथ इसमें उसके अच्छे सलाहकारों का भी पर्याप्त हाथ है । मैंने पहले भी कई बार आपसे राज्य में होने वाले अत्याचारों के बारे में बताया है । वे अति की सीमा लाँघ चुके हैं । अब निश्चय ही भगवान का आगमन होगा । अवतार

के आने के लक्षण दीख पड़ने लगे हैं । देखिए न कितने समय के पश्चात् अब वर्षा समय पर होने लगी है । ऋतुएँ अपने समय से रंचक मात्र पीछे नहीं रहती हैं । ये सब भगवान के आगमन के स्पष्ट लक्षण हैं ।

बृजनाथ—भविष्य पुराण में जो सूचना दी गई है इसके देखते हुए तो ऐसा ही अनुमान है । उसका समय भी बीत गया है । मगर कब तक आशा की जाए । हमारे कष्ट तो पहले से ही असह्य थे, परन्तु आजकल लोदियों के शासनकाल में जो अत्याचार हो रहे हैं और कष्ट मिल रहे हैं वे तो और भी असह्य हो चले हैं । हम तो ऐसे हो गए हैं कि हमें इस विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए मृत्यु भी नहीं आती है । एक रात्रि ही में हमारी मौत हो जाए तो समस्त दुःखों का कष्ट हो जाय ।

गोपाल पाण्डेय—पण्डित जी ! जैसा आप कह रहे हैं निराशा तो इसी प्रकार की है मगर किया क्या जाए । नाना प्रकार के कष्ट सहन करके भी जीवित रहने की इच्छा बढ़ती ही रहती है । हम लोग तो दीन-हीन दुर्बल ब्राह्मण हैं । हमारे राजा राव सबके सब भयग्रस्त होकर पर्वतों, वनों और मरुस्थलों की ओर चले गए हैं । जब से रायपिथौरा अपने लोगों द्वारा धोखा दिये जाने पर चल बसे तब से समस्त हिन्दू ऐश्वर्य उनके साथ ही चला गया । अब तो जो राजा हैं वे आधे मुसलमान हैं । उनकी न तो कोई आन ही है और न शान । हमें तो कुछ सीमा तक स्वतन्त्रता मिली भी है मगर राजा तो कसाई के बकरे की तरह आठों पहर भयभीत रहते हैं । भेंट, उपहार और घूस देते रहते हैं, चौबीसों घण्टे सलाम झुकाया करते हैं फिर भी दासों की तरह जीवन व्यतीत करते हैं । इसलिए समझ में नहीं आता कि किधर से आशा की जाए की और किधर से प्रतीक्षा । पुरोहित हरदयाल जी ! सच बात तो यह है कि हमें आपकी आश्वस्त वाणी सुनकर ही धैर्य होता है क्योंकि आप धर्मपरायण पण्डित है और पूर्ण विश्वास के साथ ईश्वर की उपासना भी करते हैं । संभव है आपका अनुमान ठीक हो कि भगवान के अवतरण का समय निकट आ गया है । न जाने अभी इन नेत्रों को क्या कुछ देखना है ।

हरदयाल पुरोहित—मेरा अनुमान मुझे इस निश्चय तक ले गया है कि अवतार का समय बिल्कुल निकट आ गया है । लगता तो ऐसा भी है कि वह हो गया है । अप्रत्यक्ष रूप से उनमें बालकाल के लक्षण दीख पड़ने लगे हैं ।

पण्डित बृजनाथ जी सुनकर थोड़ा तेजी से बोले—पुरोहित जी ! क्या यह सच है ? हमें भी कुछ बताइये । हम भी परखें और दर्शन करें ।

यह सुनकर पुरोहित जी ने पाण्डेय गोपाल की ओर देखा और कहा—क्यों पाण्डेय जी आपने तो संभवतः दर्शन कर लिये होंगे ?

पाण्डेय जी यह सुनकर अचम्भे में आ गए और शीघ्रता से बोले—भई कब? कहाँ? कौन?

पुरोहित—वही बालक, वेदी कुल का बालक ।

हँसमुख, सुन्दर तेजस्वी, सुडौल । विशाल भाल, रसीले, नेत्र, घुटनों को स्पर्श करती बाँहें । क्या मनोहर रूप है ।

पाण्डेय—कौन-सा वेदी कुल ? बड़े वेदी तो हमारे महतो ही हैं न कालूजी ?

पुरोहित—हाँ अपने ठीक कहा । उन्हीं का बालक-रत्न नानक ।

पाण्डेय—नानक ! नानक ! नानक क्या अवतार है ? सच ? (कुछ विचारकर) ठीक कहा आपने । उस बालक के लक्षण तो वास्तव में अलौकिक हैं ।

पुरोहित—विद्यारम्भ करने तो आप ही के पास आया था । आपने तो निश्चय ही उसे देखा होगा ।

पाण्डेय—हाँ, मैंने देखा तो है । मगर भगवान का अवतार ? इस विषय में तो मेरा विचार ही नहीं गया था । लक्षण तो वास्तव में उसके अद्‌भुत हैं । वैसे लक्षण न तो मैंने अभी तक किसी में देखे न सुने ।

पण्डित—पुरोहित जी, क्या आपने इस बात पर विश्वास कर लिया है ? अवतार के लक्षण तो बहुत महान होते हैं । आपने स्वयं कोई परीक्षा की है या नहीं ।

पुरोहित—मैं उस समय वहाँ उपस्थित था जब बालक ने जन्म लिया था। पुरोहित तथा ज्योतिषी होने के कारण मुझे उसकी जन्म-कुण्डली देखनी थी, टेवा तथा जन्मपत्री भी लिखनी थी। घड़ी-पल लिखने के लिए मैं वहाँ गया था । मुझे धाय ने बताया था कि जिस काल बालक का जन्म हो रहा था उस समय ऐसा लगता था मानो आकाश तथा धरती पर प्रसन्नता की वर्षा हो रही थी। फिर ऐसा लगता था मानो आकाश से कुछ अदृष्ट व्यक्ति सुगन्धित पुष्प तथा तारों की वर्षा कर रहे थे । बालक इस प्रकार मुस्कराता हुआ आया मानो कोई महान आत्मा कहीं से आकर प्रकट हो गई हो । धाय ने मुझे यह भी बताया कि उसे उस समय यशोगान सुनाई दिए, मानो कोई संगीत मण्डली स्वागत और आदर के गीत गा रही हो । मैंने वहाँ जाने के तुरन्त बाद ही उनके दर्शन किये थे। मेरा व्यवसाय पुरोहिताई का हैं । मैंने इस गाँव में तथा निकटवर्ती अन्य गाँवों में अनेक बालकों को देखा है और उन सबकी जन्मपत्रियाँ बनाई हैं । मगर अभी तक न तो मैंने इस प्रकार के कौतुक देखे और न ऐसे दिव्य तेजस्वी बालक के कहीं अन्यत्र दर्शन ही किये हैं ।

पण्डित—यदि इस बालक के जन्म का आप पर ऐसा प्रभाव पड़ा था कि तो आपने हमें क्यों सूचित नहीं किया । हम सब भी वहाँ आखें बिछाते हुए जाते और उसकी आरती उतारते ।

पुरोहित-भाई, एक तो माया बड़ी प्रबल है, बात को मानकर भी अचेत संशय का प्रभाव आ ही पड़ता है । इसके यदि मेरा विश्वास सचमुच ठीक है तो इस प्रकार की वस्तु को प्रकट नहीं किया जा सकता । वह छिपेगी तो है नहीं । मस्तक पर मणि तथा पाग में रखी हुई पारस ज्योति कब तक छिप सकती है । यह भी आप जानते ही होंगे कि अत्याचारी राजा अवतार-द्रोही हुआ करते हैं । श्री कृष्ण जी को मारने के लिए कंस ने कितने यत्न किये थे और फिर आजकल के राजा तो हैं ही सफेद रंग के राक्षस लोदी पठान । लोग कहते हैं कि वे दीन-दार हैं, ग्रन्थ वाले हैं तथा बड़े सभ्य हैं । मगर उनके समस्त व्यवहार अत्यन्त कठोरता तथा अत्याचार के हैं । इसीलिए भयवश मैं बोलता कम हूँ कि कहीं अत्याचारी शासकवर्ग बाल्यकाल ही में उन्हें कष्ट न देने लगे । इसी से माया मेरे मुँह पर मोहर लगा देती है ।

बृजनाथ—आश्चर्य की बात है कि हमारे इस पिछड़े हुए गाँव में श्री जगन्नाथ का अवतार हो जाय । इस स्थान पर ऐसा नररत्न प्रकट हो जो भारत का भारत हरे और हमें तथा यहाँ के निवासियों को इसका ज्ञान तक न हो ।

पुरोहित—पता तो लग जाता है पण्डित जी, पर प्रभु की माया प्रबल है । आपने भी तो यह सुना है कि कालू के घर बालक का जन्म हुआ है और वह बड़ा सुन्दर, सुडौल तथा हँसमुख है । उसके बारे में धाय प्रसन्नता तथा आत्मप्रभाव के कई कौतुक बताती है । परन्तु क्या कभी इसका पता लगाने का आपको ध्यान आया ।

बृजनाथ—भाई सुना तो था, मगर वह अवतार है इस ओर ध्यान नहीं गया था । कई बालक अनोखे होते हैं । मैंने काशी में एक बालक देखा था जो सात वर्ष की आयु में उच्च्व गणित-विद्या का ज्ञाता था । इसी तरह प्रयागराज में मैंने एक आठ वर्ष के बालक को उच्च्व संगीत ध्रुपद गाते सुना था । ये सब संस्कारी जीव होते हैं। पुरी में भी मैंने एक ब्राह्मण बालक देखा था । वह इतना मेधावी था कि जो कुछ एक बार सुन लेता था उसे कंठस्थ कर लेता था और फिर ठीक-ठीक सुना देता था । मैंने स्वयं उसके सम्मुख ऋग्वेद की ऋचायें पढ़ीं और उसने एक बार सुनकर सुना दीं । यहाँ मैं यह भी बता दूँ कि वह संस्कृत पढ़ा हुआ नहीं था । इस प्रकार के प्रतिभासम्पन्न तथा मेधावी बालक कभी-कभी जन्म लेते रहते हैं । मगर प्रायः यह देखने में आया है कि उनकी आयु दीर्घ नहीं होती है ।

पाण्डेय—यह आपने ठीक कहा पण्डित जी । मैंने लाहौर में एक बालक को देखा था । वह ज्योतिषी का पुत्र था । छःसात वर्ष की आयु ही में वह शुद्ध रेखा-गणित निकालता था । उसके पिता तथा अन्य सम्बन्धी उस पर चकित थे । परन्तु वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह सका ।

पुरोहित—आपका कहना सत्य है । इस प्रकार के बालक होते हैं । तुर्क बड़ी हठीली जाति है मगर वे भी इस बात को मानकर आश्चर्य प्रकट करते हैं । संसार भी ऐसे बालकों को देखकर चकित होता है । परन्तु हम लोग तो इस बात में विश्वास करते हैं कि यह सब पूर्व-जन्म के अभ्यास का फल है । पूर्व जन्म के संस्कार इस जन्म में आकर पनपते हैं। योग दर्शन में भी लिखा है कि सिद्धि जन्म से ही प्राप्त होती है ।[१]

परन्तु बन्धुवर ! ये सब अभ्यास द्वारा प्राप्त पूर्व जन्म के गुण हैं जो इस जन्म में बालकाल ही में प्रकट हो जाते हैं । वद्यों का भी कथन है कि कई शरीरों के मस्तिष्क का निर्माण ही इस प्रकार का होता है कि वह अलौकिक प्रवीणता दिखाता है, परन्तु यहाँ पर तो लक्षण ही भिन्न हैं । ये लक्षण प्रवीणता के ही नहीं वरन् अवतार के हैं । मेरे विचार से यह बालक चमत्कारी है ।

पण्डित—किस प्रकार पुरोहित जी ?

पुरोहित—आप शास्त्रज्ञ हैं, मैं तो गाँव का ब्राह्मण हूँ ।

फिर भी सुनिये । अवतार के आगमन का प्रभाव शीतलमय होता है । उसकी सुरति तथा कान्ति अन्य प्रकार की मीठी, रसीली तथा जलाल वाली होती है । उसका स्वभाव दानशील होता है ।

---

१. देखिए तीसरे काण्ड का सूत्र १ ।

बालकाल में भी उसकी ग्रहणवृत्ति नहीं होती है। वह अनुभवजन्य बातें करता है और अपने अच्युत[1] यथार्थ की दमक मारता है। उसके चमत्कार बगैर किसी विघ्न-बाधा के तथा यत्न-प्रयत्न के स्वतः ही निकलते हैं। इसी प्रकार के विचारों में निमग्न होकर मैंने जन्मकाल में उनके दर्शन किये। षष्टीरात्रि देखी, कुरता मैंने ही पहनाया और सारा बाल्यकाल देखा। दूसरे-तीसरे दर्शन करने के लिए जाता था। उन्हें देखते ही हृदय शीतल हो जाता था। मैंने कभी उन्हें अन्य बालकों की भाँति रुदन करते हुए नहीं देखा। पालने में लिटाये जाने पर साक्षात् देवता की भाँति दिखाई देते हैं। जब भी देखो मुस्कराते हुए दिखाई देते हैं और नेत्र तो ऐसे कि मानो उनसे प्रसन्नता का दान कर रहे हों।

जब थोड़ा चलने फिरने के योग्य हुए तो जो भी बालक घर में आया उसे जो पड़ी वस्तु देखी उठाकर दे दी। तनिक बड़े हुए तो जो भी भिखारी द्वार पर आया खाली नहीं गया। जो कुछ पास हुआ उसे दे दिया। कई बार बरतन तथा आभूषण तक उठाकर दे दिये। इस प्रकार की दानवृत्ति उच्च आत्मा का स्वभाव होती है। घर से बाहर जाकर बाल बन्धुओं के साथ खेनले की जब आयु आई तब वे सबके साथ मिलकर खेलते थे मगर मेरे देखने में हमेशा यही आया कि वे उस बाल-झुण्ड के प्रधान लगते थे। बालक अक्सर खेल-खेल में लड़ने लगते हैं मगर मैंने आज तक इन्हें खेल-कूद में किसी के साथ लड़ते-झगड़ते नहीं देखा। एक दिन मैंने देखा कि वे पीलू[2] पर चढ़े हुए थे और पीलू तोड़-तोड़-कर नीचे बाल मित्रों की ओर फेंक रहे थे और स्वयं कुछ नहीं खा रहे थे। कई बार मैंने इन्हें चार-पाँच वर्ष की आयु में दो-दो चार-चार घड़ियों तक नेत्र मूँदे समाधिस्थ देखा है। उस समय इनका प्रशस्त ललाट दमकता है। अधरों पर मुस्कराहट खेलती रहती है और आनन्दमय समाधी लगी हुई मालूम होती है। बालकों के साथ खेल में, दौड़ में, उठने-बैठने में उनका नेतृत्व-सा करते मालूम होते हैं। खेल में कभी पराजित नहीं होते, सदा जीतते ही हैं। आपको क्या-क्या बताऊँ। मेरा तो पहले दिन ही से यह पक्का विश्वास हो गया है कि ये 'अवतार' हैं। मेरे हृदय से यह भावना निकल ही नहीं पाती। मेरा विश्वास दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अभी-अभी पूरब दिशा की ओर से जो 'धन्य निरंकार' की ध्वनि आ रही थी उन्हीं की थी। वे ही अलाप रहे थे।

पाण्डेय—मेरे पास शिक्षा के लिए लाये थे न ?

पुरोहित—हाँ, उनके दानशील स्वभाव में इतनी वृद्धि हुई कि उनके पिता इससे दुखी होने लगे। माता का हृदय तो अत्यन्त कोमल होता है और फिर इनकी माता तो अत्यन्त सम्मान-योग्य, सौभाग्यशालिनी तथा सुशील है। उनके दर्शन ही परम पावनमय है। माता तृप्ता उनके द्वारा किये गए नुकसानों पर पर्दा डाल देती हैं, मगर पिता को किसी-न-किसी तरह पता चल ही जाता है। प्रतिदिन इस तरह होती हुई हाँनियों को देखकर विशेषकर मूल्यवान वस्त्र तथा आभूषणादि दे देने के स्वभाव में घबराकर मुझसे शिकायत करने लगे—आप तो कहते थे कि तुम्हारा पुत्र अत्यन्त

१. ईश्वर।
२. निर्जन प्रान्त का एक फलदार वृक्ष।

तेजस्वी तथा भाग्यवान होगा । यह या तो महान राजा होगा या अवतार; और मेरा तथा समस्त सृष्टि का उद्धार करेगा । मगर अभी तो वह मेरा अगला-पिछला सब कुछ नष्ट कर रहा है, मैंने उसे समझाया, मोह भी अधिक है मान भी जाता है । मगर ईश्वर की माया बड़ी प्रबल है । एक दिन फिर यह सलाह हुई कि उसे पढ़ाया जाए । दिन-भर घर से बाहर रहने के कारण दान का अवसर कम हो जाएगा और फिर क्षत्रिय पुत्र हैं; लेखा-पत्र बहीखाता आदि लिखना-पढ़ना सीख लेगा तो जैसे उसके पिता कालू ने कारिन्दागिरी का काम सँभाल रखा है उसी प्रकार वह भी सँभाल लेगा और घर की कारिन्दागिरी घर ही में बनी रहेगी । इसलिए पाण्डेय जी ! यह सब सोच विचारकर आपके पास ले गये थे । मगर मुझे तो कुछ और ही लक्षण दिखाई देते हैं । यह ग्रामों की कारिन्दागिरी करेगा या परगने की गद्दी लेगा ? इसे तो चक्रवर्ती होना है । जो कुछ आपने देखा है उसे बताइये न पाण्डेय जी ! मैंने तो सब लक्षण अवतारी ही देखे हैं । उनके बचन भी सुने हैं । कभी-कभी तो अबोध शिशु की समान तोतले वचन बोलते हैं तो कभी यकायक गम्भीर मुखमुद्रा बनाकर समाधिस्थ हो जाते हैं । कभी देश समाज की बातें करते हैं तो कभी आगम-निगम की । उनके गुणों की चर्चा आप पड़ोस में भी होने लगी है । सभी आपको ईश्वरीय नूर कहते सुनाई देते हैं ।[1]

पाण्डेय जी—आदरणीय जी मुझे कभी अवतारपने का भ्रम नहीं हुआ और न उस प्रकार की कोई बात ही मैंने देखी है । मगर एक बात जो मुझे हैरान कर रही है वह यह है कि कालू कहता था कि लड़का घर का सामान बहुत बिगाड़ता है, वह अनिर्भिमय तथा अस्थिर है । अभी से साधु संतों में जाकर उठता बैठता है । जो कोई भी चीज़ हाथ में आ जाती है उन्हें दे देता है । इसलिए इसे अच्छी तरह से पढ़ाओ-लिखाओ । परन्तु मैंने देखा कि वह सबकुछ पहले ही से पढ़े हुए हैं । मैंने टाकरे अक्षर लिखकर दिये उसने एक ही दिन में सब अक्षर पट्टी पर अनुकृत कर दिये । मैं कभी उसके मुख की ओर देखता था कभी पैरों की ओर कि यह क्या करामात है । इसके पश्चात् मैंने पहाड़े लिखकर दिये । वे भी उसने सब लिखकर दिख दिये । अभी कुछ ही दिन हुए हैं वह ब्याज तक पहुँच गया है । शरारती तो कतई नहीं है । दिन-भर मुस्कराता रहता है, कभी-कभी नेत्र बन्द कर मूक बैठा रहता है । मैं समझा कि बच्चा है सो जाता होगा । मगर अब आपके कहने से मेरी समझ में आ रहा है कि जिसे मैं निद्रा समझ रहा था वह सम्भवतः समाधि थी । क्योकि सोते हुए मनुष्य की तरह उसने कभी भी झोंका नहीं खाया । जब वह पाठशाला में आता है तब एक अजीब प्रकार की शीतलता तथा आनन्द का अनुभव होने लगता है । मुझे आज विद्यार्थियों ने बतलाया था कि जब कभी मैं बाजार चला जाता हूँ तब मेरी अनुपस्थिति में नानक विद्यार्थियों से 'धन्य निरंकार' की मुहुर्मुहः ध्वनि लगवाता है और ऐसा करते समय उसके मुख की कान्ति लाल हो जाती है । अतः देवता जी ! सम्भव है आपका अनुमान ठीक हो । उसके लक्षण आश्चर्य पैदा करने वाले ज़रूर हैं। वह बालक अवश्य ही पूर्ण पुरुष होगा ।

---

१. [गुरू नानक] बड्डा होया तां लगा बालकां नाल खेडण, पर बालकां ते इसकी दृष्टि और आवै, आत्मै अभ्यास परमेश्वर दा करे। जद बाबा बरसा पंजा का होया तब लगा बातां अगम निगम दीआं करन । जो कुछ बात करे जो समझ करे, तिसते सभ किसे दी निशा होय आवै । हिन्दू कहण जो कोई देवता सरूप पैदा होया हैं अते मुसलमान कहिण जो कोई खुदा दा सादक होया है । [पुरातन जन्मसाखी]

बृजनाथ—आपकी बातों से तो पाण्डेय जी ऐसा लगता है कि पुरोहित हरदयाल जी के अनुमान ठीक हैं । अच्छा एक बात तो बताइये कि यदि अन्य बालक उसे डराते हैं तो वह भयभीत होता है या नहीं ?

पाण्डेय जी—बालकों में इतना साहस कहाँ जो उसे भयभीत कर सकें । वह स्वयं न तो किसी को डराता है और न किसी का भय मानता है । न तो वह कभी क्रोधित होता है और न किसी से लड़ाई-झगड़ा ही करता है । मगर सब बालक उसी के आदेशानुसार चलते हैं । जिधर नानक उधर पूरी चटशाल ।

पण्डित—यह लक्षण तो अवश्य ही अवतार का है । मगर क्या कभी आपने उसके चारों ओर प्रकाश की क्रान्ति देखी है ?

पाण्डेय जी—मैंने तो अभी तक नहीं देखी है। वास्तव में मेरा विचार ही उस ओर नहीं गया । मगर मुझसे कई विद्यार्थियों ते बतलाया है कि जब नानक नेत्र मूँद कर और चुप होकर बैठ जाता है या जब कभी उनसे मुहर्मुह ध्वनि लगवाता है तब उसके शीश के चारों ओर सूर्य के समान प्रकाश दिखाई देता है । मैं यह सुनकर विद्यार्थियों को झिड़क देता हूँ । आज से पूर्व मेरा ध्यान इस ओर गया ही नहीं था ।

पुरोहित—यह लक्षण तो उसी के हैं । अच्छा आपने कभी इस बात का अनुभव किया है कि वह धूप में जा रहा हो और उसकी परछाई बिलकुल ही न पड़ रही हो ?

पाण्डेय जी—नहीं, मैंने इस ओर भी ध्यान नहीं किया है । मगर आपने कहा है तो इस बात को ध्यान से देखूँगा ।

पाण्डेय जी—अच्छा आप ऐसा करें कि उसे लेखापत्र, बहीखाता, चिट्ठीपत्र इत्यादि का ज्ञान करवा दें, फिर उसे थोड़े समय के लिए मेरे पास भी भेज दें । मैं भी देख लूँगा कि आपका अनुमान ठीक है या नहीं । यदि ठीक है तो मैं उसे वेदशास्त्र, दर्शन इत्यादि पढ़ा दूँगा और इसी बहाने उसके दर्शन का लाभ भी प्राप्त कर लूँगा ।

पुरोहित—यह बहुत अच्छी बात होगी । नगर मुझे अपने विश्वास से ऐसा कुछ लगता है कि वह पढ़ेगा तो क्या पढ़ायेगा । मालूम तो ऐसा पड़ेगा कि कुछ सीख रहा है मगर वास्तव में शिक्षा देगा । पण्डितजी ! कभी आप उसका मस्तक तो देखें । ऐसा विशाल मस्तक मैंने अभी तक अपनी आयु में किसी का भी नहीं देखा । फिर उसके मस्तक की चमक देखिए । ऐसी लगती है जैसे उदयकालीन सूर्य की मधुर एवं शीतलदायिनी कान्ति । चन्द्रमा की तरह उसमें शीतलपन नहीं है वरन् सूर्य प्रकाश की मधुर मनमोहक ओज है ।

२. पाण्डेय

बलिओ चरागु अंधार महिं,
सभ कल उधरी इक नाम धरम ।।

[सवैये श्री मुखवाक महला ५]

विक्रमी की पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतभूमि पठानों के अत्याचार से त्राहि-त्राहि कर उठी थी । उसी काल में पठानों का मुगलों से संघर्ष हुआ था । पठान लोदी वंश का अन्तिम शासक सिकन्दर

लोदी था। उसके तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारियों के अत्याचारों का वर्णन गुरू जी के निम्न पद्य में मिलता है :—

कलि काती राजे कासाई, धरमु पंख कर उडरिआ ।।

मुसलमान इतिहासकारों ने धार्मिक जोश में आकर उस समय के इतिहास का खूब प्रसन्नता से वर्णन किया है। उन घटनाओं को पढ़कर हृदय काँप उठता है।

हिन्दू सन्त तथा महात्मा आदि अपना जीवन ऊँचे पर्वतों, गहरे वनों, तथा निर्जन स्थानों में रहकर अथवा उन पिछड़े क्षेत्रों में जहाँ मुसलमान शासक पहुँच न पाते थे वहाँ रहकर बिता रहे थे। ऐसे ही पिछड़े क्षेत्रों में तलवण्डी नामक एक गाँव था। यह गाँव लाहौर नगर से बीस कोस की दूरी पर बसा हुआ था, मगर अत्यन्त पिछड़ा हुआ था। इसके चारों ओर सूखे-साखे जंगल थे। इस गाँव को पिण्डी भट्टीआँ के राय भोइ ने बसाया था और इसका नाम रखा था— तलवण्डी राय भोइ। यद्यपि यह गाँव प्राचीन समय से चला आ रहा था मगर भोए ने इसे नये सिरे से बसाया था और इसे अपने परगने की राजधानी बनाया था। भट्टी वास्तव में भट्ट शब्द से बना है। भट्ट वास्तव में वही होते हैं जिन्हें राय कहते हैं। ये हिन्दू राजाओं के दरबार में कविता पढ़ा करते थे तथा कीर्तन किया करते थे। काश्मीर में भी भट्ट होते हैं। काश्मीर तथा पंजाब के भट्ट वस्तुतः एक ही हैं। राय भोए अपना धर्म छोड़कर मुसलमान हो गया था। इसको शरकपुर के परगने में दस ग्राम जागीर में मिले थे। इन्हीं में से उसने तलवण्डी को नये सिरे से बसाकर अपना निवासस्थान बनाया था। इन दस ग्रामों के हिसाब-किताब, जमीनों के लेन देन की कारदारी के दिए, गोडे गाँव के रहने वाले रामनारायण के पुत्र शिवराम वेदी को नियुक्त कर राय भोए ने उन्हें तलवण्डी में ही बसा लिया था।[१] विक्रमी १५१८ के लगभग राय भोए की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र रायबुलार इन परगनों का सरदार बना। इसने शिवराम वेदी के पुत्र कन्याणचन्द को, जिसे वह कालू पुकारा करता था, पिता का उत्तराधिकारी कारदार नियुक्त किया।

तलवण्डी की भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी। भूमि की सिंचाई कुओं आदि से होती थी। इसके चारों ओर पीलू के वृक्षों का गहन था। इस कारण साधु-सन्तों का आगमन इस ओर प्रायः होता रहता था। राय भोए किसी दबाव तथा आवश्यकतावश धर्म-परिवर्तन कर मुसलमान हुआ था परन्तु उसकी रुचि अत्याचार की ओर नहीं थी। उसके परगनों में आये हुए साधु-सन्त तथा पण्डितजन सुखी रहते थे। उनके साथ किसी तरह का अत्याचार नहीं किया जाता था। राय भोए का पुत्र रायबुलार भी साधु-सन्तों में श्रद्धा रखने वाला तथा धार्मिक वृत्ति का पुरुष था। उसके समय में तलवण्डी के वनों में साधु-सन्तों का आगमन होता रहता था। यहाँ इन्हें आदर-सत्कार तथा शरण मिलती थी। रायबुलार को स्वयं साधु-सन्तों की सेवा तथा समागम में रुचि थी।

सिकन्दर लोदी के अत्याचारों से हिन्दू जनता काँप उठी थी; घर-घर उसके अत्याचारों की कहानी कही जाती थी। हिन्दू बहू-बेटियों के सम्मान का कोई मूल्य नहीं रह गया था। उनके पास आभूषण तथा वस्त्र तक नहीं रहने दिये जाते थे। कोई हिन्दू परिवार छः महीने से अधिक का खाद्यान्न अपने

---

१. खालसा तवारीख़।

यहाँ जमा नहीं कर सकता था। अधिक होने पर सब छीन लिया जाता था।[1] इस प्रकार की राजाज्ञा का पालन करने में उनके अहलकार और अधिक क्रूरता तथा बर्बरता का पालन करते थे । इस प्रकार अमानुषिक अत्याचारों से भारत-भूमि काँप उठी थी । उस काल की यादगार में गुरू जी की निम्न पंक्ति उल्लेखनीय है :—

"राजे सीह मुकदम कुत्ते"

इस विपत्ति में प्रजा को यदि कहीं कुछ थोड़ी आराम थी तो वह हिन्दू राजाओं के राज्यों में अथवा एक-दो सीधे-सादे नवाबों के इलाकों में थी । ये शासनकर्ता अपने राज्यों में न्यायप्रिय तथा कोमल व्यवहार के कारण स्वयं भी सुखी और उनकी प्रजा भी आश्वस्त थी । परन्तु इस प्रकार के राजा व नवाब इत्यादि बहुत ही कम थे । इसी तरह का एक छोटा-सा राज्य था जो साँदलवार में स्थित था । साँदलवार राज्य में स्थान-स्थान पर आबादी थी । उसमें उजाड़ क्षेत्र बहुत ही कम थे । इसी राज्य के अन्तर्गत पृथ्वी का भार हलका करने के लिए धरती ने श्री गुरू जी के अवतार का सन्मान प्राप्त किया । श्री गुरू नानक देव जी इसी भूमि पर अवतरित हुए ।

उपरोक्त बातचीत पश्चात् तीनों ब्राह्मण अपने-अपने घरों को चले गये । अगले दिन पाण्डेय जी ने अपने उस विद्यार्थी को गौर से देखा । बालक नानक आते ही अपनी पट्टी लेकर अलग जा बैठा । वह पट्टी लिखता जा रहा था और उसके पास से मधुर एवं धीमी-सी आवाज़ भी आ रही थी । ऐसा लगता था मानो वह कुछ गा रहा हो । पाण्डेय बार-बार हरदयाल की कही हुई बात का प्रमाण पाने के लिए उस ओर देखता था । परन्तु प्रमाण इतनी जल्दी नहीं मिलते और न वे इतने तेज़ ही होते हैं जितनी तेज़ हैरानी की नज़रें होती हैं ।

एक दिन पाण्डेय जी नानक के अपने पास आने की प्रतीक्षा कर रहे थे और सोच रहे थे कि आज नानक के आने पर उसे पट्टी पर नये कोष्टक लिखकर दिये जाएँगे । परन्तु उस दिल बालक नानक अवकाश के समय तक गुरू जी के पास नहीं गया, तब पाण्डेय ने उससे कहा—नानक ! आज तुमने अभी तक पट्टी नहीं दिखाई ?

गम्भीर सागर की लहर की भाँति अद्भुत ज्योति छिटकाता हुआ एक विद्यार्थी उठा और मस्त गति से चला । उसके नेत्रों में मोती के समाने सरल अश्रुविन्दु झलक रहे थे । समस्त शरीर किसी अनिर्वचनीय कान्ति एवं मस्ती से भरा था । उसने पाण्डेय जी के पास आकर उनके हाथ में एक पट्टी दे दी । दो पट्टियाँ उसने अपने पास रखीं । पाण्डेय जी ने देखा कि पट्टी में दर, कोष्ठ तथा व्याज के अंक नहीं थे परन्तु कोई और इबारत लिखी हुई थी जो दोनों अक्षरों के साथ-साथ थी । पाण्डेय कुछ चकराये। इसमें लिखा क्या था ? जो नानक ने पढ़ा था ? नहीं? पाण्डेय उसे पढ़ने लगे । प्रत्येक अक्षर के आगे पारमार्थिक अक्षरों की वाणी लिखी हुई थी :—

ससै सोइ स्रिसटि जिनि साजी सभना साहिबु ऐकु भइआ ।।
सेवत रहे चितु जिन का लागा आइआ तिनका सफलु भइआ ।।१।।

---

१. तवारीख़ खालसा ।

मन काहे भूले मूढ़ मना ।।
जब लेखा देवहि बीरा तऊ पड़िआ ।।१।। रहाऊ ।।
ईवड़ी आदि पुरखु है दाता, आपे सचा सोई ।।
एना अखरा महि जो गुरमुखि बूझे तिसु सिरि लेखु न होई ।।२।।
ऊड़ै उपमा ता की कीजै जाका अन्त न पाइआ ।।
सेवा करहि सेई फलु पावहि जिनी सचु कमाइआ ।।३।।[1]

[आसा महला १ पटी लिखी]

सभी अक्षरों की पारमार्थिकमय वाणी पढ़कर पण्डित जी हक्का-बक्का होकर रह गए । कभी वे बालक के ईश्वरीय मस्तक की ओर देखते तो कभी पट्टी की ओर । पट्टी को वे बार-बार पढ़ते थे और बालक को निहारते थे । उन्हें तुरन्त ही हरदयाल के कहे हुए वचनों की स्मृति हो आई । वे धीरे से बोले— यह आयु, यह वाणी, यह वैराग्य और यह उपदेश। फिर मन-ही-मन उन्होंने सोचा कि इस बालक को यह चेतना इतनी अल्पआयु ही में प्राप्त हो गई है, सम्भवतः इसीलिए यह अपने घर का अन्न-वस्त्र द्वारा पर आए हुए साधु-सन्तों को दे देता है और उनके साथ बातचीत कर प्रसन्न होता है। यह अवश्य ही अवतार होगा ।

थोड़ी देर बाद पाण्डेय जी ने भ्रमनिवारणार्थ बातचीत कर यह देखना चाहा कि यह बालक पट्टी पर लिखे वचनों के अनुसार व्यवहार भी करता है या नहीं । उन्होंने कहा—नानक ! तुम उस विद्या को क्यों नहीं पढ़ते जिसे तुम्हारे पिता चाहते हैं । लेखा गणित पढ़कर जगत में निजी काज व्यवहार में चतुर हो जाओ । इससे तुम्हें सुख मिलेगा ।

श्री गुरू जी ने यह सुनकर पाण्डेय जी को एक सरस-भरी दृष्टि से देखा और अपने मधुर स्वरों द्वारा उन्हें समझाकर । वह श्री गुरू जी के निम्न शब्दों में अंकित है—

जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु ।।
भाउ कलम करि चितु लिखारी गुर पुछि लिखु बीचारु ।।
लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अन्तु न परावारु ।।१।।
बाबा इहु लेखा लिखि जाणु ।।
जिथे लेखा मंगीऐ तिथै होइ सचा नीसाणु ।।१।। रहाऊ ।।
जिथै मिलहि वडिआईआ सद खुसीआ सद चाऊ ।।
तिन मुखि टिके निकलहि जिन मनि सचा नाऊ ।।
करमि मिलै ता पाईऐ नाही गली वाऊ दुआऊ ।।२।।
इकि आवहि इकि जाहि उठि रखीअहि नाव सलार ।।
इकि उपाए मंगते इकना वडे दरबार ।।
अगै गइआ जाणीऐ विणु नावै वेकार ।।३।।
भै तेरै डरु अगला खपि खपि छिजै देह ।।
नाव जिना सुलतान खान होदे डिठे खेह ।।

---

१. समस्त प्राचीन तथा आधुनिक ग्रन्थों में लिखा है कि प्रस्तुत वाणी पाण्डेय के प्रति रटी कही थी । इस वाणी का शीर्षक है "पट्टी लिखी ।" इससे यह सिद्ध होता है कि सतगुरू जी ने यह पट्टी को लिखकर दिखाई थी ।

नानक उठी चलिआ सति कूड़े तुटे नेह ।।४।।६।।

[सिरी राग महला १]

यह सुनकर पण्डित जी सारी सिट्टी पिट्टी गुम हो गई । मोह का जाल एक बार ही जलकर गिर पड़ा । संसार की असारता, व भवबंन्धन के कष्ट, उच्चजीवन-भक्ति तथा आगामी सुखों का चित्र मन पर छा गया । हरदयाल के अनुमान सत्य प्रतीत होने लगे । चरणों पर सीस झुकाकर कहा— हे सनातन पुरुष ! तुम पूर्ण पुरुष हो । जो तुम्हारे मन में आता है वही करो । मेरे कल्याण का भी विचार रखना । कृपा बनी रहे ।

इसके कुछ दिन बाद तक गरू जी पढ़ने नहीं गए । सदा घर ही में बैठे रहते या वन में साधु सन्तों के साथा वार्तालाप में निमग्न रहते ।[1]

३. पण्डित

पारसु भेटि भये से परस, नानक हरि गुरि संगि थीए ।।४।।

[वसंत हिंडोल महला १]

एक दिन मेहता कालू ने फिर हरदयाल से शिकायत की पुरोहित जी ! आपने अच्छी जन्मपत्री लिखी है । खूब अच्छे नक्षत्र विचारे हैं कि या तो लड़का आलसी होकर घर पर ही पड़ा रहता है या फिर वन में दरिद्रजनों के साथ एकान्तवास करता है । अच्छा ऐश्वर्यवाला आया है । बहीखाता पढ़-पढ़ाकर बेकार कर दिया है । यह घर-गृहस्थी कैसे सँभालेगा ?

यह सुनकर हरदयाल जी ने सलाह दी— मेहता जी ! पुत्र अमूल्य वस्तु है और फिर यह पुत्र तो ईश्वर की ओर ही से आया हुआ मालूम देता है । यह बालक जगत के कल्याण हेतु आया है । इस विषय में आप बेकार ही उदास होते हैं । यदि इसने लेखा-पत्रा, बहीखाता और जगत के व्यवहार की विद्या त्याग दी है तो इससे आप मन को उदास न करें । इसको किसी विद्वान पण्डित के पास छोड़ दें, जिससे यह उच्च दार्शनिक शिक्षा प्राप्त करे और शास्त्रज्ञ बने । क्या पता शंकर दुबारा अवतरित हुए हों और यहा दिग्विजयी बनकर यवनों को नष्ट करने वाला भगवान ही हो । यदि नीचे की विद्या नहीं लेता तो ऊँची विद्या देकर देख लो ।

तब दो-चार दिन तक मेहता कालूराम के पुत्र को अनेक प्रकार से समझाया-बुझाया और धमकाया भी । फिर हारकर उसे पण्डित बृजनाथ[2] के पास ले गए । वे तो पहले ही से प्रतीक्षा कर रहे थे कि बालक नानक आवे तो निकट से उसका अध्ययन करे । वे हरदयाल के अनुमान की परख करना चाहते थे । आज वह अवसर आ गया और बृजनाथ ने अध्यापनकार्य शुरू किया। उन्होंने नानक को संस्कृत के अक्षर लिखकर दिये और चुपचाप उसके उठने-बैठने, बोलने-चालने इत्यादि पर दृष्टि रखने लगे । उसके विशालभाल और मृदुस्वभाव पर उन्हें आश्चर्य होता । वह जब कभी भीतर कमरे में आता तो ऐसा लगता कि सुगंध का झोंका आ गया हो । वे कभी उसकी परछाईं

---

१. बैठा तां बैठा ही रहे जां सोवे तां सोया ही रहे, फकीरां नाल मजलस करे ।

[पुरातन जन्मसाखी]

२. इतिहास में इस बात का प्रमाण है कि गुरू जी पण्डित बृजनाथ के पास संस्कृत पढ़ने गए थे ।

देखते, कभी सिर के चारों ओर प्रकाश-पुंज की खोज करते । जो-कुछ भी पाठ उसे पढ़ाया जाता वह उसकी समझ में तुरन्त ही आ जाता ।

एक दिन श्री गुरू जी एक कागज हाथ में लिए हुए बालकों के बीच में खड़े थे कि इतने में उनके पिता मेहता ने आकर पूछा– बेटा, यह क्या लिये हुए हो ? बालक ने उत्तर दिया– पिता जी, यह सप्तश्लोकी गीत है ।'' पिता ने पूछा– क्या तुम इसे पढ़ लेते हो और अर्थ भी कर लेते हो बालक ने उत्तर दिया — हाँ ।

मेहता जी आश्चर्याभिभूत होकर बालक नानक को साथ लेकर पण्डित जी के पास गए और बोले–नानक यह पत्र लिये फिरता है और कहता है कि सह सप्तश्लोकी गीत है तथा यह इसका अर्थ करना भी जानता है । आप भी सुनकर देखें कि इतनी जल्दी इसे इतनी विद्या कहाँ से आ गई । क्या यह आपकी कृपा का प्रभाव है या इसकी बृद्धि ही उज्वल है ।

पण्डित ने एक प्रश्न सूचक दृष्टि से बालक नानक की ओर देखा । जगत के गुरू-शिष्य ने एक गम्भीरभाव में अधखिले तथा मस्ती से भरे नेत्रों से पुस्तक पढ़ दी तथा उसके अर्थ भी कर दिए । पण्डित आश्चर्याभिभूत होकर तथा निर्निमेष दृष्टि से उसके चेहरे की ओर देखते रह गए । उसके शीश के चारों ओर सौन्दर्य की अपूर्व आभा मण्डरा रही थी । उसके वचनों में स्निग्ध कोमलता बसी हुई थी । पण्डित आश्चर्य तथा विस्मय में भरकर उस सौन्दर्य श्री का पान कर रहा था । पाठ एवं अर्थ समाप्त हो गए और इसके बाद मृदुल अधरों से वाणी प्रस्फुटित हुई–परन्तु पण्डित जी कल्याण कीर्तन में है । पण्डित जी पथराये नेत्रों से देखते रह गए; मानो पत्थर की मूर्ति बन गए हों । कुछ समय बाद एक सुखदायी दीर्घश्वास निकला, नेत्र झपके तथा मुँद गए, हाथ जुड़ गए और शीश चरणों पर झुक गए :

''है आदि तू अनादि तूँ
रक्ष रक्ष दास नूँ ।।

परन्तु इससे पूर्व ही बिजली की चमक की भाँति ईश्वरीय बालक बाहर जा चुका था ।

जब मेहता जी घर वापस गए तो बालक नानक को वहाँ बालकों के साथ खेलते हुए देखा । उन बालकों के साथ वे खेल-कूद, हास्यविनोद, वृक्षों की चढ़ा-उतर, छलांग-कबड्डी में मग्न थे । जब वे तेजी के साथ बाहर की ओर दौड़े तो सब बालक इनके पीछे दौड़ पड़े । जो कुछ वे करते थे या जिस ओर ये जाते थे समस्त बालकवृन्द भी वही करते थे । शाम हो जाने के कारण गुरू जी दौड़कर घर से आए तो समस्त बालक भी उनके पीछे-पीछे आँगन में आकर खड़े हो गए । अब बालकों का पंक्ति में खड़ा कर मातद्वारा बनाया हुआ तथा बन रहा समस्त भोजन उन्हें खिला दिया और इस सरह उन्हें तृप्त कर घरों का वापस भेज दिया ।

इसी सरह कुछ समय तक और अपनी इच्छानुसार पण्डित जी के पास आते-जाते रहे। उनके कौतुकों को देख-देखकर तथा वचनों को श्रवण कर पण्डित जी उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु हो गए और उनके भी हृदय में उच्च आत्मजीवन की लहर दौड़ गई ।[1]

---

१. तवारीख खालसा में लिखा है – दक्खणी 'ओअंकार' नामक वाणी इस समय उच्चारित की गई थी। परन्तु नरोत्तम तारा सिंह तथा अन्य पुराने ज्ञानियों के मतानुसार 'दक्खणी ओअंकार' दक्षिण देश के ओअंकार नामक मन्दिर के पाण्डेय के प्रति उपदेश किया गया था । पुरातन जन्मसाखी में 'दखिणी ओअंकर' काशी के पण्डित ब्रह्मदास के प्रति कहा गया उपदेश लिखा है ।

४. मुल्ला

"गुर महि आपु समोहि सबदु बरताइआ"

[वार मलार महला १]

माता-पिता देवी बालक पर दो प्रकार के रंग देखकर प्रसन्न भी थे तथा उदास भी। जब बालक नानक को खेलते-हँसते तथा पढ़ते-दिखते देखते थे तब प्रसन्न होते थे और जब उसे मूक होकर वृक्षों के नीचे दिन-दिन-भर बैठे रहकर साधु, सन्तों-फ़कीरों के वचन सुनते, तथा घर पर चुपचाप सोते हुए देखते तब बड़े उदास हो जाते थे। सब हरदयाल के कहे हुए वचन तथा अपनी आँखों द्वारा देखे कौतुक जो बालक नानक को अलौकिक तथा आश्चर्यजनक बताते थे सब भुलावा दीखते थे और वे चिन्तातुर होकर कहने लगते थे कि, हे भगवान ! एक ही पुत्र है; क्या बनेगा ?

कछ समय बाद दैवी बालक नानक अधिकतर वनों ही में रहने लगा और उसे वहाँ आये गए त्यागी एवं विरक्तों के दर्शन निरन्तर होने लगे। वे उनके समीप बैठकर विद्या तथा विज्ञान के विषयों पर चर्चा सुनते थे, शास्त्रों की गहन बातें श्रवण करते थे तथा उनको अपने निजी अनुभवजन्य ज्ञान की सलाह भी दिया करते थे। एकान्त में बैठना, नेत्र बन्द कर वन की मूक आवाज़ में ईश्वर के रंग में निमग्न होना, नेत्र खोलकर प्रकृति में सर्वत्र ईश्वर के दर्शन करना, आदि को आप "कुदरति वसिआ", अथवा "बलिहारी कुदरति वसिआ" कह उठते थे। यह गुण आपको आदि से ही प्राप्त था। इसकी प्राप्ति में एक स्वर रहना, इसमें डुबकी लगाना, इसी में आनन्दित हो उठना यह ब्रह्मविद्या थी जिसका प्रवाह आपमें सदैव ही आगम स्त्रोतों से प्रवाहित होता रहता था।[1] वह महान आत्मा प्रकृति के साथ एक स्वर था, वह प्रकृति में रचना का उल्लास देखता था। उसे, वन के एकान्त में चिड़ियों की चहक से, रहँटों की गूँज में, आकाश की नीलिमा में, सूर्य के गोले में, पृथ्वी पर उसके कान्तिमय उत्थान में रात्रि की भीनी-भीनी सुन्दरता में, तारामण्डल से बरसने वाले सौन्दर्य में, पृथ्वी पर फैली हुई चाँदनी के लहराव में, अपने सूक्ष्म तथा तरल सुन्दरता की सरंगों में लीन करते तथा चाव में चाव वाला करके मस्ती में ले जाते थे। किन्तु प्रकृति के आकर्षित करने वाले दृश्य उसे अपने में बाँध कर रखने में अक्षम थे। उनकी दृष्टि में यह प्रकृति किसी अमूर्त सुन्दरता की वास्तविकता के आगे पड़े आवरण सदृश ही दिखाई देती थी तथा इसे परदे को भेदकर उसके उस पार लीन होने के मार्ग का इंगित करती थी। उन पर कभी प्रकृति के उल्लास का रंग चढ़ता था तो कभी रचना के उल्लास तथा तज्जनित आनन्द का। कभी-कभी प्रकृति के अन्तर्गत सुख, चाहना तथा सौन्दर्य की बज रही वीणा की मधुर ध्वनि उन्हें मस्त कर देती थी। वे प्रकृति में विराजमान उसकी यथार्थता

---

१. मैकालफ आदि पश्चिमी लेखक यहाँ पर बेबस होकर इस प्रकार लिखते हैं--वह आवाज़ (आदि की पुकार) जो इससे पूर्व भी कई प्रकाशवान् हृदयों से निकल चुकी है, उन वनों में देबारा बोल उठी। यह गुरू नानक के विचार-मण्डल को आत्म-आरूढ़ता के शिखर पर ले गई। ग्रीष्म ऋतु की गर्मी में, शीतकाल की सर्दी में, आकाश के जलाल तथा प्रकृति के सदैव परिवर्तनशील रंगों में, उनके ग्राम के निवासियों के आमोद-प्रमोद तथा उदासीनता एवं चिन्ताओं में वह (गुरू नानक) चमकते हुए अक्षरों में 'निरंकार' का नाम देखता तथा पढ़ता था। अथवा चाव में भरकर उस नाम की पुकार लगाकर उठा करता था।

को, जिसके आसरे वह चलती थी तथा जिसके कारण वह विकसित हो रही थी, देख रहे थे । कभी उनकी आत्मा उस 'यथार्थ' में खो जाती थी जो प्रकृति के अन्तर्गत रहता हुआ भी प्रकृति से नितान्त अलग, सर्वव्यापी सर्वोच्च, निर्मल, पवित्र तथा अपनी अचलता में स्थित है । वे उस 'यथार्थ' में लीन हो जाते थे जो समस्त प्रकृति का कारण, तथा कर्ता है । "अलख अगम अरूप" के रूप में नवयुवक ईश्वरीय बालक सदैव निवास किया करता था, उसी में वह तैरता और डुबकियाँ लगाता रहता था । उसे प्राप्त विद्या, सदा साखी कर्म तथा ईश्वरीय विद्या थी । फिर उसे कौन संसारी मुल्ला, पण्डित, तपोधन साधु तथा तपस्वी विद्या दे सकता था । अनुभवी दाता को दान देने की किस संसार जीव में शक्ति थी ।

पण्डित, पाण्डेय तथा पुरोहित को इसका आभास मात्र भी कैसे मिलता कि नानक का हृदय कहाँ जाकर टकराता है । सबसे अधिक अस्पर्श्य ईश्वर के शाश्वत स्पर्श को प्राप्त कर कभी-कभी वह उसमें से मन तथा शरीर को भी उठने नहीं देता है । उसे उसी स्पर्श को जगत को देना है । इसी स्पर्श को देने के लिए वह अवतरित हुआ है ।

वे तीनों जन इस कौतुक को देखकर यह मान गए कि नानक पूर्णपुरुष है । परन्तु भीतरी गतिवधियों को कौन जानता था ? माता-पिता भी यह देखते थे कि उसका स्वभाव, रूप, रंग, कर्मकार्य सभी अद्‌भुत हैं परन्तु भीतरी गतिविधियाँ न समझ सकने के कारण वे भूल में पड़ जाते थे कि न जाने यह सब क्या है । यदि वह सचमुच अच्छा है तो घर लुटाना, आलसी होकर सोते रहना, वनों में आलसी बनकर बैठे रहना, खेलने लगना और खेलते ही रहना ये लक्षण क्या हैं ? बावलेपन के हैं अथवा महानता के ? इसी को बुद्धिमान माया कहते हैं ।

मेहता ही देख रहे था कि उनका पुत्र वन तथा वनवासियों से अधिक प्रेम करने लगा है, परन्तु उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं था कि वे उन वनवासियों की संगति में बैठते थे जो बालक नानक की लगाई 'धन्य निरंकार' की धुन में सम्मिलित होते थे या उन्हें 'धन्य निरंकार' का कीर्तन सुना सकते थे । मगर मेहता जी का मन इन सब बातों से उदास रहता था और उनके निजी कार्यों में भी विघ्न पड़ता था । जब यह सब समाचार उनके मालिक, राय बुलार को विदित हुआ तब उन्होंने मेहता जी से सहानुभूति प्रकट की और कहा—मेहता ! तुम अपने पुत्र को फारसी पढ़ाओ । यदि वह फ़ारसी पढ़ गया तो तुम उसे अपना कामकाज भी सिखा देना । फिर कार्यालय का काम उसके सुपुर्द कर देंगे । तुम्हारा पुत्र भला है । हो सकता है उसका मन बही-खाता, संस्कृत आदि में नहीं लगा तो सम्भव है फ़ारसी में लग जाए ।

यह सुनकर मेहता ने अपने पुत्र को फ़ारसी पढ़ना तय कर लिया ।

क्या दैवी ज्योति का हृदय इस बात का इच्छुक नहीं कि अपने माता-पिता की आज्ञा माने ? वह सावधान होकर अपने माता-पिता की आज्ञा पालन करने के लिए उन्सुक हो उठता था । परन्तु वह प्रकृति तथा करतार के साथ स्वतः ही एक स्वर थे । वह प्रकृति की 'सुन्दरता' तथा उसकी रचना के 'उल्लास की पुकार' के साथ बेबस खिंच पड़ता । यदि इस सबकी समाप्ति यहीं तक हो जाती तब भी कोई बात थी परन्तु वह तो 'कुदरत वसिया' वाले सुन्दर ही अरूप सुन्तरता में न हों

तो नानक अदेशी सुलतान, एक विज्ञान अथवा एक गुणी होते । परन्तु वे तो ईश्वरीय स्पर्श में निरन्तर रहने वाले, ईश्वरीय प्रवाह के साथ सदा प्रवाहित झरने के समान, अपने उस ईश्वरीय स्पर्श के साथ जगत को जीवित करने वाले अगम के साथ, एक स्वर थे । यह कैसे हो सकता था कि जब ईश्वरीय जलवे प्रकृति के करतार का प्रत्यक्ष चमत्कार दिखावें तब वे उसमें निमग्न न हों ? और उदैव उस घर में निवास न रखें जिसे "सोदरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले" बताया गया है ।

कुछ दिन उन्हें प्रसन्न रहते देखकर एक दिन पिता जी उनको फ़ारसी के उस्ताद के पास ले गए ।[1] पहिले की भाँति वे मकतब में पढ़ने लगे । मुल्ला को महान आश्चर्य यह देखकर हुआ कि इन्होंने कितनी शीघ्रता से पढ़ लिया है :–

सिफ़त प्रकाश भई ।।
कालु सुत बुधरास पारसी इलम जो कठन सीख्यो बेगही ।।

[नानक प्रकाश]

परन्तु भीतरी आकर्षण, प्रकृतिक सौन्दर्य के साथ प्रेम तथता तादाम्यता, करतार के आकर्षण में लीन रहना, तथा जगत की विद्या तथा पदार्थों की प्राप्ति की ओर से उदासीनता, ये सब भीगी ओस की भाँति अपनी शाखत फुहार जारी रखती थी । एक दिन इसी प्रकार के उदासीन वातावरण में उस्ताद ने इनसे कहा—नानक । कई दिनों में तुम पढ़ नहीं रहे हो, समय पर आते भी नहीं हो

१. साखियों में फ़ारसी सिखाने वाले को मुल्ला लिखा है । सरदार खजान सिंह तथा तवारीख़ खालसा ने उनका नाम कुतुबदीन लिखा है । मैकालिफ़ ने रुकनदीन नाम दिया है । परन्तु एक रुकनदीन नामक मुसलमान से गुरू जी की भेंट मक्का में भी हुई थी । कनिंघम ने किसी फारसी लेख का हवाला दिया है जिसका नाम वह नहीं दे सका है, परन्तु उसमें यह लिखा है कि फ़ारसी का ज्ञाता सैयद हुसैन मेहता कालू का पड़ोसी था । इसके कोई सन्तान नहीं थी परन्तु था व धनवान । उसके हृदय में गरू रुनानक के लिए आदर-भाव भर गया था । इसने ही नानक को फारसी पढ़ाई थी । इसके बाद वह मैलकम का हवाला देकर लिखता है कि मुसलमान कहते हैं कि गुरू नानक को अलसाय पैगम्बर (अवतार) ने सांसारिक विद्या पढ़ाई थी । मुसलमान इतिहासकार यह भी लिखते हैं कि गुरू नानक ने अपने उस्तादों को अपनी आत्मिक शक्ति से चकित कर दिया था ।

वास्तव में राजनीतिक इतिहासकार ईश्वरीय शरीरों का इतिहास लिखते समय घबराते हैं कि संसारी अध्यापकों के बग़ैर उन्होंने किस प्रकार शिक्षा प्राप्त की । रूहानी इतिहासकार इसलिए लिखते घबराते हैं कि यदि किसी संसारी अध्यापक से शिक्षा प्राप्त की तो उनकी 'आत्मिक सुन्दरता घट जाएगी । परन्तु वास्तव में बात यह है कि चाहे वे सांसरिक विद्या किसी से पढ़ें या न पढ़े, ये बातें उनके आत्मिक ओज को न तो कम कर सकती हैं न बढ़ा सकती हैं । अपने ईश्वर की विद्या अथवा अदेशी ज्ञान तथा आत्मिक विज्ञान के गुरू का आभास उन्होने इस प्रकार दिया है :–

"अपरंपर पारब्रहमु परमेसरु नानक गुरु मिलिआ सोई जीओ ।।" [सोरठ महला १-११]

यह नियम है। इसमें ईश्वरीय विद्या ईश्वर की है, जिसका गुरू स्वयं ईश्वर है, उसके सामने सांसारिक दृष्टिमान विद्याएँ पनिहारी हैं । यदि उनको पढ़ लिया तो कोई हानि नहीं होती और यदि न पढ़ा तो कोई लाभ नहीं होता ।

और स्वेच्छा से चले जाते हो । यह सब क्या है !

इन्होंने उत्तर दिया--मैं पढ़ा हुआ हूँ जो पढ़ा हूँ पढ़ता हूँ जो पढ़ता है ।

मुल्ला ने प्रश्न किया--कौन है जो तुम्हें पढ़ाता है और क्या पढ़ाता है ?

उस समय इनके हाथ में एक पुस्तक लिखी हुई थीं जो इन्होंने मुल्ला को पकड़ा दी । यह पुस्तक 'सीहरफ़ी' थी जिसमें प्रत्येक फारसी के अक्षर के समक्ष उसके अर्थ, वैराग्य तथा वाहि गुरू की प्रशंसा में भरे हुए लिखे थे ।[1] इसे पढ़कर मुल्ला का शीश उनके सम्मुख झुक गया और उसने कहा—आप उच्च विद्या के विद्वान् हैं। आप ईश्वर के हैं, उसके अपने हैं। यह आयु और ऐसे विचार । आप में ईश्वर स्वयं बोलता है ।

मुल्ला का शीश काफी देर तक झुका रहा ।

गुरू जी घर वापस आ गये । फिर वही कार्यक्रम शुरू हो गया । या तो वन में दिन व्यतीत करना अथवा दिन-भर मजे से सोते रहना । उन्होंने लोगों से बोलना-चालना भी बन्द कर दिया । भोजन कभी नहीं किया । इससे लोग चिन्तित हुए और परिवार के लोगों ने यह सोचा कि सम्भवतः वन मे घूमने-फिरने के कारण हवा लग गई है । अन्त में सोच-विचार कर यह राय ठहरी कि जिसने फारसी भाषा पढ़ाई है उसी मुल्ला को बुलाया जाए ।[2] मुल्ला ने आकर बहुत यत्न किया परन्तु आप जैसे लेटे थे वैसे ही नेत्र मूँदे लेटे रहे । जब मुल्ला अपना यत्न करके हार गया तो उसने कहा—नानक ! जिस स्वामी को तुम प्यारे हो उसके लिये एक बार तो उठ कर बैठो ।

अपने प्रियतम का नाम सुनते ही आप उठ कर बैठ गये । चाँद में छिपा हुआ चेहरा बादलों को चीर कर पूर्णिमा के चन्द्र के समान निकल आया । नेत्रों के लाल डोरे अंगूरों की भाँति दमक रहे थे और उनमें से एक प्यार-भरी अरदास[3] निकल रही थी । नेत्रों से रहस्य एवं वैराग्य-मिश्रित एक झिड़की-सी निकल रही थी जो अत्यन्त आकर्षक तथा रसीली थी । बड़े मीठे स्वरों में वे उस बोली में बोले जो फ़ारसी ही है या सबसे पहले उर्दू की माँ है अर्थात् फ़ारसी में कहीं कोई हिन्दुस्तानी का शब्द भी आ गया है किन्तु जो मुख्यतः पंजाबी की ओर ही कुछ संकेत कर रही थी । आप बोले :--

यक अरज गुफ़्तम पेसि तो दर गोस कुन करतार ।।
हका कबीर करीम तू बेऐब परवरदगार ।।१।।
दुनीया मुकामे फानी तहकीक दिल दानी ।।
मम सर मूइ अजराईल गिरफ़तह दिल हेचि नदानी ।।१।। रहाऊ ।।
जन पिसर पदर बिरादरां कस नेस दसतंगीर ।।
आखिर बिअफतम् कस न दारद चूँ सबद तकदीर ।।२।।

---

१. यह सीहरफ़ी अप्राप्य है । जो मिलती है वह गुरू ग्रन्थ साहिब में नहीं है । यह पुरातन जन्मसाखी में मक्के के रुकनदीन के साथ हुई वार्तालाप के सम्बन्ध में है, तथा 'बाले वाली जन्मसाखी' मदीने में कही गई है । तवारीख खालसा में मुल्ला के पास कही गई लिखी है और इस प्रकार आरंभ होती है।
'अलफ़ अल्ला न याद कर गफ्लत मनहुँ बिसार' ।।

२. कहीं-कहीं गांवों में मुल्ला लोग अभी तक ऐसे काम करते हैं ।

३. विनय ।

सब रोज गसतम् दर हवा करदेम बदी खिआल ।।
गाहे न नेकी कार करदम मम ई चिनी अहवाल ।।३।।
बदबख़त हम चु बखील गाफिल बेनजर बेबाक ।।
नानक बुगोयद जनु तुरा तेरे चाकरां पाखाक ।।४।।

[तिलंग महला १, घर १]

यह वाणी उच्चरित कर आपने मुल्ला को सम्बोधन किया कि जीवन इस प्रकार व्यर्थ जा रहा है, अपने को सँभालो ।

मुल्ला पर इस उपदेश का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा । हाथ जोड़ कर वह कहने लगा :-

चरन शरन मैं कीनो परना ।।
हरहु मोहि जग जनमरु मरना ।।
ब्रिधन ते तुम ब्रिध बडेरे ।।
कर उपदेश कटहु दुख मेरे ।।

[नानक प्रकाश]

इस पर आपने मुल्ला को उपदेश देकर उसे ईश्वर-प्रेम का आनन्द प्रदान किया और अन्त में आदेश दिया :-

सतिनाम इक चित सिवलाई ।।
जपहु देहि अभिमान गवाई ।।
सति संगत की सेव अभंगा ।।
करहु सुखद नित संग उमंगा ।।

[नानक प्रकाश]

मुल्ला आया तो था इन्हें निरोग करने परन्तु स्वयं निरोग होकर चला गया । इसके बाद आप कई दिनों तक उसी तरह पड़े रहे ।

उनके जीवन में दो आश्चर्यजनक रंग थे–कभी अगम अकह प्रसन्न तो कभी मूक होकर पड़े रहना । ऐसा प्रतीत होता था कि उनकी अपनी रूहानी हिलोरें, चरणों के रस-रंग, प्रकृति की सुन्दरता, करतार के भीतरी तथा बाहरी स्पर्श तो आपको अन्तःकरण की उच्चभावना में रखते थे; परन्तु संसार का दुःख जलते हुए जगत की पीड़ा आदि का किस प्रकार अन्त हो–यह सब उन्हें मूक तथा कई दिनों तक बेसुध रहने वाली अवस्था में ले जाते थे । उनका हृदय जगत के कष्टों को सुन और देख कर 'जगत की रक्षा किस प्रकार हो' की पीड़ा में सहानुभूतिशील हो उठता था ।

५. भैंसें

तेरा सदड़ा सुणीजै भाई जे को बहै अलाहि ।।

कुछ दिनों के बाद आप फिर चलने-फिरने लगे । बहुधा जंगल में जाकर बैठ जाते, वापस घर आते, समय पर भोजन करते, लोगों से बातचीत करते और बालकों की तरह हँसते-खेलते भी । यह देखकर मेहता जी ने विचार किया कि किस प्रकार का पुत्र मेरे घर आया है । कभी प्रसन्न हो जाता

है, और कभी दिलगीर हो जाता है । कई स्थानों पर शिक्षा के लिए भेजा । मगर शिक्षकों ने कहा कि नानक शिक्षित हो गया है, यह तो हमें पढ़ाता है तथा अत्यन्त उच्च व्यक्ति है । वे तो यहाँ तक कहते हैं कि इसने हमारा उद्धार कर दिया है । मगर शायद उन्हें यह पता नहीं कि वह तो घर पर सुस्त बनकर पड़ा रहता है या किस प्रकार वनवासी होकर चल देता है । जिसके घर में एक ही पुत्र हो ओर वह साधु-सन्तों की संगति में जाकर बैठे, कोई कामधाम न करे, तथा धन कमाने का ढंग उसे आता न हो तो ऐसे पुत्र का कष्ट उसके माता-पिता ही समझ सकते हैं । दूसरा कौन इस तकलीफ़ को समझ सकेगा । पर अब किया भी क्या जाए कि जिससे यह किसी काम में लग सके । ऐसे ही विचारों में वे निमग्न बैठे थे कि उनके मन में ध्यान आया कि लड़के को वनों में घूमने-फिरने का अत्यधिक चाव है इसको कोई इसी तरह का काम देना चाहिए । इसका मन भी लगेगा और काम भी हो जाएगा । अमीरी न सही निर्धनता ही सही किसी काम में तो लगा रहेगा । घर की गउएँ, भैंसें चराने का काम ठीक रहेगा । इसमें उसका मन ज़रूर लगेगा । बाहर भी रहेगा और काम भी करता रहेगा । यदि इसका मन इसी काम में लग जाए तो इसे बहुत ही गाएँ-भैसें ले देंगे । घी-दूध का व्यवसाय ही सही ।

कई दिन सोचने-विचारने के बाद पिता जी ने उनसे इस बात की चर्चा की । नानक ने बहुत सावधान होकर वह बात चुनी और भैंसें लेकर चल दिए । मनुष्यों को ईश्वर के लोक में उड़ाने देने वाले दाता जी भैंसों के चरवैया बने । एक दिन वन में बैठे-बैठे उस निरंकार की ध्वनि में मग्न हो गए ।

६. न्याय

एक घने वृक्ष की छाया में एक पलंग बिछा है । पलंग के पाये लाल रंग के हैं । उसके ऊपर लाल रंग के रेशम की कोर वाला खेस बिछा है जिस पर परगने का स्वामी विराजमान है । नीचे धरती पर चटाईयाँ बिछी हुई हैं जिन पर कुछ उच्च अधिकारी तथा अन्य मुख्य सज्जन विराजमान हैं । इतने में एक भट्टी कृषक भागता हुआ वहाँ आया। उसने एक हाथ से एक सुन्दर युवक की बाँह पकड़ रखी थी ।

भट्टी ने वहाँ पहुँचकर कहा--हे भट्टियों के राजा । तुम्हारी दोहाई । मैं ठगा गया हूँ। मेरा न्याय करो, मैं ठगा गया हूँ ।

राय--न्याय की माँग करना तुम्हारा अधिकार है और न्याय देना मेरा धर्म । बतलाओ तुम्हारे साथ क्या हुआ ?

भट्टी--हे राजा ! वर्षा मूसलाधार हुई। भूमि में तराई आई; सात बार हल चलाये, गेहूँ बोये, फसल बढ़ी और खूब तैयार हो गई । शीतल वायु के चलने पर बाली भरे गेहूँ के पौधे झूम उठते । ऐसा लगता था मानो सीस पर मुकुट धारण किये हुए हरे वस्त्रों में पंक्तिबद्ध अप्सराएँ खड़ी हैं जिसे देखकर मेरा हृदय शीतल होता था । मैं सोचता था कि फसल अब पकी, अब तैयार हुई और वर्ष-भर के लिए अन्न की चिन्ता से मुक्त हो गया । फर्श पर बैठे एक सभासद ने पूछा—फिर हुआ क्या तुम्हारी उन सब्ज़ परियों का ?

भट्टी–हुआ अत्याचार। (घबराकर) मैं न्याय चाहता हूँ। बिना पक्षपात के न्याय। पूरा तोला, न्याय, इन्साफ़ (हाथ-पर-हांथ मारकर) 'ठग तथा ठगे जाने वाले' दोनों को एक बराबर कौन करे ? कौन करे ?

ग्राम का काजी–करेगा राय।

भट्टी–इसी कारण तो एक भट्टी दूसरे भट्टी के पास न्याय के लिए आया है इस प्रकार का न्याय नहीं होना चाहिए जो अन्य लोगों के लिए तो हल खड़ा कर दे तथा अपने पुत्र के लिए चुप हो जाए।

एक सभासद–होश में बातें करो। हमारे राय का न्याय है। तराजू का पूरा-पूरा तोल। सत्य न्याय।

भट्टी–इसीलिए तो राय के पास दौड़कर आया हूँ।

राय–कुछ बोल भी तो कि क्या हुआ है ?

भट्टी–मेरा नुकसान हुआ है। हाय मेरे गेहूँ। (बावलों की-सी मुद्रा में) मैं ठग लिया गया हूँ भाइयो।

राय–(पैनी दृष्टि से देखते हुए) किसने तुम्हें ठगा है ?

भट्टी–यह देखो मैं पकड़कर साथ लाया हूँ।

राय–(देखकर) यह तो कालू का पुत्र है।

भट्टा–हाँ, मेहता का सिर चढ़ा लाडला।

सभासद–मगर यह तो बावला है।

भट्टी–(हाथ-पर-हाथ मारकर) बस मुक्त कर दो इसे, बावला-बावला कहकर भगा दो। कारिन्दा का पुत्र है न, इसीलिए।········मैं······ मैं······· मैं लाहौर जाता हूँ। राय मैं लुट गया।

राय–भले आदमी। बात तो बताओ। क्यों वैसे ही झगड़ा कर रहे हो? लुट गया, लुट गया, अरे भाई किसने तुम्हें लूटा। किस तरह लूटा और तुम्हारा क्या लूटा गया?

भट्टी–यह जो तुम्हारा बावला है न ? मेहता कालू का बेटा। यह मेरी लहलहाती हरी-भरी गेहूँ की फसल सारी-की-सारी (सिर फेरकर) खा गया।

यह सुनकर सभी हँस पड़े।

सभासद–आदमी हरे गेहूँ खा गया ? ताज्जुब की बात है।

भट्टी–हाँ भई खा ही तो गया। खुद तो पेड़ के नीचे सो गया और पशुओं का झुंड मेरे खेतों में छोड़ दिया। मेरी तैयार फ़सल नष्ट हो गई। सब कुछ भैंसें चर गईं। एक तिनका तक नहीं बचा। अब तुम्ही बताओ किसके पास जाऊँ, क्या करूँ ? पूरा वर्ष किस प्रकार व्यतीत करूँगा? भूमिकर कहाँ से दूँगा ? परिवार क्या खाएगा ? हाय मैं लुट गया लुट गया (राय की ओर पैनी दृष्टि से देखकर) अब सब चुप क्यों हो गए ? कारिन्दा का पुत्र हैं न······· बावला (सिर फेरकर) बावला·····। चलो भई लाहौर चलें लाहौर।

राय–सुनो भाई भट्टी। उदास मत हो। और न ही इतनी तेज़ी करो। धीरज रखो। तुम्हारी सारी हानि पूरी की जायगी।

भट्टी–भगवान् तुम्हारा भला करे। मेरी गोद में डाल दो हानि का बदला (चादर बिछा देता है)।

राय–नत्थू जाओ जाकर मेहता को लिवा लाओ। यह तो बावला है। इसके स्थान पर वह आकर हानि का बदला भरे।

भट्टी–हे भट्टियों के मुखिया, आप अनेक वर्षों तक जीते रहें।

नत्थू, चोब उठाकर मेहता को लिवा लाने के लिये चला गया। जाते समय ठुमुक-ठुमुक मही की ओर देखता जाता था।

नत्थू के आँखों से ओझल हो जाने के बाद भट्टी पुनः राय की ओर देखकर कहने लगा–देखो राय ! किसा तरह खड़ा है यह बावला। कुछ बोलता तक नहीं है। बावला है। सभी बावले अपने लाभ के लिए चतुर होते हैं, पर इसका पता तो तब चलेगा जब बाप को दाम भरने पड़ेंगे। माता-पिता ने लाड़ प्यार में सिर चढ़ा रखा है इस युवक को। राय ने फिर एक बार देखा अडोल, अचल तथा अपने-आप में मस्त खड़े युवक को। कुछ समय बाद ही मेहता जी आ गए।

राय–मेहता ! सुनो तुम्हारे पुत्र ने क्या काम किया है ? इस भट्टी की साल-भर की कमाई मार दी है। स्वयं निश्चिंत होकर सो रहा था और भैंसें इसके खेत में छोड़ दीं। भैंसें इसका सारे-का-सारा खेत चर गईं।

मेहता (पुत्र की ओर देखकर) राय जी समझ में नहीं आता है कि मैं क्या करूँ ? इसे किसी काम में लगाने के न जाने कितने यत्न किये मगर जितने भी कामों में इसको लगाया इसने सब पर लात मार दी। क्या करूँ इसका बावलापन जाता ही नहीं।

भट्टी—बावला ! खुद नींद के झोंकों झूले और दूसरों के खेतों को उजाड़कर मेहता की भैंसों की चराई हो। ऐसे पुत्र तो सभी के हों। मगर आज पता चलेगा।

सभासद–(भट्टी से) तुम मत बोलो।

राय–सुनो मेहता ! और तो मैं कुछ नहीं जानता। तुम्हारा बच्चा तो बावला ठहरा। उसका अपराध मैंने क्षमा कर दिया मगर तुम इस भट्टी की हानि पूरी कर दो। इससे तुम मुक्त नहीं हो सकते। यह न्याय की बात है।

भट्टी–हे भगवान ! तुम्हारी गद्दी हरी-भरी रहे। शासन का वैभव कायम रहे। तराजू झुक रहा था तुमने न्याय तोलकर पलड़े बराबर कर दिए।

इतने में भट्टी के पीछे कई लोग आ गए और आकर उसके पीछे खड़े हो गए। आए हुए लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी। उनमें से एक बोला—पहले जगह तो देख लो।

भट्टी (पीछे देखकर) सौ बार देख लो। अगर वहाँ एक तिनका भी खड़ा हो तो मैं देनदार हूँ।

राय–तुमने ठीक कहा है। न्याय तब तक न्याय नहीं कहा जा सकता जब तक दोनों ओर का साक्ष्य न ले लिया जाय। (जोर से आज्ञा देते हुए) दो पियादे तुरन्त जायं। उनके साथ भट्टी तथा एक कूतिया भी जाए। जाओ कूतकर मुझे बताओ कि कितनी हानि हुई है।

इस पर भट्टी के साथ दो पियादे और कूतिया वहाँ गए और कुछ समय के बाद वापस लौट आए।

पियादा–अच्छे मालिक जी ! भट्टी ने खेत के चर जाने के बारे में जो-कुछ कहा है वह गलत है । गेहूँ वैसे-के-वैसे खड़े हैं ।

राय ने प्रश्न-भरी से कूते की ओर देखा ।

कूता–भैंसों द्वारा खेत के चर जाने का वहाँ पर कोई निशान नहीं है । एक तिनका तक टूटा हुआ नहीं दिखाई पड़ रहा है ।

राय (आश्चर्य में भरकर) क्यों भट्टी ! क्या यह सब बात ठीक है ?

भट्टी–झूठ नहीं बोलूँगा । यह सब-कुछ सच है । जो कुछ ये कह रहे हैं ठीक है ।

राय–तो बताओ तुमने झूठी शिकायत क्यों की ? क्यों झूठा रोना रोये ?

भट्टी–अल्लाह की कसम । दूध तथा पूत की सौगन्ध यदि मैं झूठ बोला होऊँ तो सर्वनाश हो जाय । चोरी से बालक नानक की ओर देखता है ।

राय–तो बता अब तुम्हारा खेत कौन हरा-भरा कर गया ? तुम्हारा पिता ?

भट्टी–अल्लाह की कसम, यह बालक कोई जादूगर लगता है । यह योगियों की संगत में बैठता है, तपस्वी इनके मित्र हैं । इसने कोई अद्भूत लीला की है या कोई मन्त्र पढ़ा है जिससे मेरा खेत हरा-भरा हो गया है ।

राय–ठीक बताओ–तुमने खुद चरा हुआ खेत देखा था ?

भट्टी–हाँ, अपने इन दोनों नेत्रों से देखा था । इन्ही नेत्रों से जो आपको लाल रंग के पलंग पर बैठा देख रहे हैं । अल्लाह की कसम, खेत में एक तिनका तक नहीं बचा था ।

राय (सबकी ओर देखकर) बताइये, आप लोगों ने इस मामले में क्या समझा है ?

एक व्यक्ति–मेहता का पुत्र बावला नहीं हैं । अभी बच्चा है खाने-पीने की आयु है, गहरी नींद सोने की आयु है । हुआ क्या होगा, शायद भैंसों ने एकाध बार खेत में मुँह मार लिया होगा और इसे अपना खेत उजड़ा दिखाई दिया होगा जैसे मृगजल में होता है ।

भट्टी–क्यों झूठ बोलते हो, चापलूसो ! भगवान का भय नहीं रहा ?

दूसरा व्यक्ति–नहीं, श्रीमान जी, भट्टी सच कह रहा है । नानक योगशक्ति वाला है । उसने कोई सिद्धि लगाई है ।

तीसरा व्यक्ति–यह तो ईश्वरीय मनुष्य है जिसे तपस्वी कहते हैं । इसने कई देव, दानव, भूत-प्रेत जिन अपने बस में कर रखे हैं । अपनी तपस्या के बल पर इसमें अनहोनी कर दिखाई है ।

चतुर्थ व्यक्ति–श्रीमान जी ! मेरा विचार तो यह है कि यह बच्चा न कोई साधारण बच्चा है, न योगी है और न जादूगर । यह तो अल्लाह का प्यारा है । ईश्वर ने अपने प्रेमी की लज्जा रखी है । मैंने वनों में बैठे देखा है । वहाँ यह अपनी हिन्दी भाषा में अल्लाह का नाम ले-लेकर झूमता रहता है ।

एक मुल्ला–राय जी अब आप न्याय कीजिए । अल्लाह की बातें तो अल्लाह ही जानता है । जो हो गया सो हो गया । भट्टी प्रसन्न है, उसकी हानि पूरी हो गई है, अतः उसे विदा कर देना चाहिए । मेहता भी मुक्त हैं, वे उज्चल मुख से अपने घर को जाएं । बच्चे को भी विदा करो, जाकर

खेले-कूदे । हमारा भी अब पेशी की नमाज का वक्त हो गया है ।

राय–बात तो ठीक है। अच्छा भाई सब लोग जाओ ।

यह बात हो ही रही थी कि ईश्वरीय बालक के गले से मधुर स्वर निकला और अत्यन्त हृदयस्पर्शी ढंग से निम्नलिखित वाणी का गायन हुआ :

जोगी होवै जोगवै भोगी होवै खाइ ।।
तपीआ होवै तपु करे तीरथि मलि मलि नाइ ।।१।।
तेरा सदड़ा सुणीजै भाई जे को बहै अलाइ ।।१।।रहाऊ।।
जैसा बीजै सो लुणे जो खटे सु खाइ ।।
अगै पुछि न होवई जे सणु नीसाणै जाइ ।।२।।
तैसो जैसा काढीऐ जैसी कार कमाइ ।।
जो दमु चिति न आवई सो दमु बिरथा जाइ ।।३।।
इहु तनु वेची बै करी जे को लऐ विकाइ ।।
नानक कंमि न आवई जितु तनि नाही सचा नाउ ।।४।।५।।

[सूही महला १-७]

अर्थात् यदि योगी हो तो योग करे, भोगी हो तो भोग खावे, तपस्वी हो तो तप करे, तथा तीर्थों पर भली प्रकार से स्नान करे । परन्तु बैठकर यदि ईश्वर के नाम का उच्चारण करे, ईश्वर का स्मरण करे तो हे करतार तुम्हारी ध्वनि सुनाई देती है ।

इसका भाव है कि योगी, भोगी और तपस्वी अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं परन्तु उनकी अन्तरात्मा में कोई सूरत नहीं जागती । मुझे हे स्वामी तुम्हारी ध्वनि सुनाई देती है । यदि कोई बैठकर नाम का अलाप करे तो उसको स्वामी की ध्वनि सुनाई देगी । रहाऊ से 'अलाइि' के दो अंग बताए हैं । एक शुभ कर्म तथा दूसरा हर समय नाम का स्मरण करना । उनका आदेश है कि काम अच्छे करो । जो नाम की निशाने वाले होंगे उनकी आगे जाने पर कोई पूछताछ नहीं होगी । अतः नाम के बिना तन किसी काम का नहीं वरन् निष्फल वस्तु है । यह नाम का निशान आत्मा में अंकित कर लेने के लिए ही मिला है । यदि यह प्रयोजन सफल नहीं किया तो जन्म व्यर्थ ही गया । राय इसके पहले भी सुन चुका था कि कालू का पुत्र बावलों की तरह बातें करता है । आज राय के सामने एक ऐसी घटना घटी जिसमें उसने देखा कि दीवाना नानक स्वरूपवान तथा भोले शाहजादा यूसुफ की तरह निश्चिन्त, अडोल एवं निर्दोष खड़ा हुआ है यहीं इसी स्थान पर परन्तु बैठा किसी अन्य स्थान पर है । फिर जब लटक लेकर गीत गाता हुआ मेहता के साथ चला गया तो सब के मनों को मधुर तथा सुन्दर स्वरों से मोहित करता गया । राय को यह सोचकर भी बड़ा आश्चर्य हुआ कि खेत किस तरह हरा-भरा हो गया । उसके कानों में बार-बार यह ध्वनि गूँज उठती थी–"सदड़ा सुणीजै जेको बहै अलाइि ।" राय ने विचार किया कि जब यह बालक बैठकर ईश्वर की ओर से आकाशवाणी सुनाई देती है । इन्हीं सोच-विचारों में निमग्न राय अपने घर चला गया । भोजन करने

के बाद वह सो गया । मगर जब बीच में नींद टूट जाती तब उसके कानों में यह आवाज़ कहीं से गूँज उठती–जो दमु चिति न आवई सो दमु विरथा जाइि । उसने सोचा कि मेरी स्वासें भी व्यर्थ जा रही हैं । मुझे अल्लाह की याद नहीं रहती । मगर इस बालक को तो अवश्य ही उसकी याद निरन्तर बनी रहती है । आज कैसा सरो के वृक्ष की तरह स्थिर खड़ा रहा, मुख पर न जाने कौन से सौन्दर्य की फुहार बरस रही थी, मस्तक कैसा दमक रहा था । बनाया जा रहा था अपराधी मगर अपने सम्पूर्ण हाव-भाव तथा क्रियाकलापों से निश्चिन्त, गम्भीर एवं स्थिर निरपराध की मूर्ति बना खड़ा रहा । उसकी मुखमुद्रा कितनी निडर थी । आश्चर्य की बात तो यह कि खेत हरा-भरा था मगर उसने एक बार भी मुँह खोलकर यह न कहा कि भट्टी चुगली कर रहा है और इसे लोग बावला कहते है ! यह बावला कैसे हैं ? वह तो ईश्वर की धुन में मस्त दीवाना है । कैसे बोल उठा था ।

सची नदरि निहालीऐ बहुड़ि न पावै ताउ ।।२।।

[सिरी राग महला १]

७. जनेऊ

'गिआनु जनेऊ धिआनु कुसपाती'

[आसा महला १-२०]

अब पिता को बालक के रंग-ढंग में कुछ चतुरता दीख पड़ने लगी । बालक प्रतिदिन भैंसे चराता था तथा सहर्ष घर लौट आता था । पिता ने सोचा कि यह काम बालक के अनुकूल है, अब इसे जनेऊ पहनाकर कुल-रीति पूरी कर देनी चाहिए । बालक बुद्धिमान होता जा रहा है, शीघ्र ही इसका विवाह भी करना होगा ।

जनेऊ का दिन निश्चित किया गया । सम्बन्धी तथा अन्य आस-पड़ोस के निकटवर्ती जनों को आमन्त्रित किया गया । रसद और सामग्री इत्यादि सब-कुछ पहले ही से एकत्रित कर ली गई थी । यज्ञ किया जाना था और क्षत्रियों की रीति के अनुसार बकरे की बलि देनी थी । पुरोहित हरदयाल ने सम्पूर्ण तैयारी कर लेने के बाद पहनाने के लए जनेऊ उठाया । श्री गुरू जी ने उसके नेत्रों में प्यार के रंग का अनुभव करते हुए जनेऊ पहनाने वाला हाथ पकड़ कर कहा–पुरोहित जी, यह आप क्या करने जा रहे हैं ?

तब पुरोहित ने समझाया और कहा कि आप उच्च-कुलीन द्विज हैं। यह पुनर्जन्म है । इस रस्म से आप अपनी जाति में सम्मानित होंगे । यह सुनते ही गुरू जी के रसीले नेत्र सहानुभूति से भर उठे । उन्होंने पुरोहित से कहा -

दइिआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु ।।
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु ।।
ना एहु तुटै न मलु लगै ना एहु जलै न जाइ ।।
धंनु सु माणस नानका जे गलि चले पाइ ।।

[वार आसा महला १-१५]

पुरोहित ने मुस्कराकर कहा कि यह धर्म का चिन्ह है, सदैव साथ रहता है ।

यह सुनकर आपने उत्तर दिया –

चऊकड़ि मुलि अणाइआ बहि चउकै पाइआ ।।
सिरवा कंनि चड़ाईआ गुरु ब्रहमणु थिआ ।।
ओहु मुआ ओहु झड़ि पइआ वेतगा गइआ ।।१।।

[वार आसा महला १-१५]

पुरोहित इस श्लोक को सुनते ही रोमांचित हो गया । उसे अपने अनुमान सत्य दिखाई देने लगे । मगर वह शास्त्र की रीति से बँधा हुआ था । उसने धीरे से कहा–बेटा, जो कुछ आपने कहा है ठीक है । वह जनेऊ जीव का है । परन्तु इस जनेऊ को धारण करना वैदिक रीति के अनुसार है और ऐसा परम्परा से होता चला आया है । सभी जनेऊ पहनते चले आये हैं । आप भी पहन लो । आपको तो धर्म स्थापित करना है ।

यह सुनकर गुरू जी ने कहा —

लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गालि ।।
लख ठगीआ पहिनामीआ राति दिनसु जीअ नालि ।।
तगु कपाहहु कतीऐ बामणु वटे आइ ।।
कुहि बकरा रिनि खाइया सभु को आखै पाइ ।।
होइ पुराणा सूटीऐ भी फिर पाईऐ होरु ।।
नानकु तगु ना तुटई जे तगि होवै जोरु ।।

[वार आसा महला १-१५]

यह सुनकर ब्राह्मण पुरोहित थोड़ा भयभीत हो गया कि इसको तो मैंने अवतार समझा था जो गा-ब्राह्मण तथा शिखा-सूत्र की रक्षा करेगा । परन्तु यह तो यज्ञोपवीत में कोई श्रद्धा ही नहीं रखता । यह क्या बात है ? उसने फिर से इसे सोचा और विचारा कि बात तो यह बालक सत्य कहता है कि यह धागा उच्च व्यक्तियों के आचरण का चिन्ह था जो सारा का सारा गिर चुका हैं। बात तो ठीक है । मगर शास्त्र-मर्यादा भी तो पूरी करना आवश्यक है । यदि यह अवतार है और सूत के जनेऊ में इसकी कोई श्रद्धा नहीं है, तो यह कौन-सा जनेऊ पहनेगा ? इसी से यह बात पूछनी चाहिए । पुरोहित के ऐसा पूछने पर उसे निम्न उत्तर मिला -

नाइि मंनिऐ पति ऊपजै सालाही सचु सूतु ।।
दरगह अन्दरि पाईऐ तगु न तूटसि पूत ।।३।।

[वार आसा महला १-१५]

ये वचन सुनकर पुरोहित के मन में एक कुरेदन-सी हुई कि यह बालक भी कैसी ऊँची उड़ान लगाता है । परन्तु फिर लोकलाज का ध्यान करते हुए पंडित ने दूसरी बार विनय की ओर कहा– श्रीमान् यह तो मर्यादा है । इसके बिना वर्णसंकर हो जाएगा । शरीर को इस तागे की आवश्यकता

है । आपका तागा मन का है । वह हमें पहना दो । आपने तो पहन ही रखा है । परन्तु शरीर के अंगों में धारण करने के लिए यह जनेऊ आप हमारे हाथ से पहन लो ।

यह सुनकर उस निर्भय तथा सत्यप्रिय ने गरजकर कहा -

तगु न इन्द्री तगु न नारी ।।
भलके थुक पवै नित दाड़ी ।।
तगु न पैरी तगु न हथी ।।
तगु न जिहवा तगु न अखी ।।
वेतगा आपे वतै ।।
वटि धागे अवरा घतै ।।
लै भाड़ि करै वीआहु ।।
कढि कागलु दसे राहु ।।
सुणि वेखहु लोका इहु विडाणु ।।
मनि अन्धा नाऊ सुजाणु ।।४।।

[वार आसा महला १-१५]

यह सुनते ही पुरोहित का मन काँप उठा । उसमें परिवर्तन हो गया और झुक गया -

सुन हरदयाल सु अस उपदेस ।।
रिदै धार लिय लखि जगतेस ।।
धन धन पुन धंन वखाणहि ।।
आपण गति तुम आपहि जाणहि।।

[नानक प्रकाश]

□□

३ प्यारे के कुमार-चरित

१. ध्वनि सुनाई देती है

"इहु तनु वेची बैकरी जे को लए विकाइ ।"

[सूही महला १-७]

ईश्वरीय आज्ञानुसार सूर्य देवता पश्चिम की ओर जाते हुए लोभ-भरी दृष्टि से पृथ्वी की ओर देख रहे हैं । ऐसा लगता है कि पृथ्वी की जिस विभाग की सुन्दरता से उसके नेत्र पृथक हो रहे हैं वह उससे पृथक नहीं होना चाहता । गमनोद्यत सूर्य की प्रभा से बिछुड़कर धरती की सुन्दरता और प्रकृति का विकास रात्रि को विश्राम करने के लिए अचल मौन होता जा रहा है । मधुर-मधुर पवन चल रही है, हरे-भरे खेत लहलहा रहे हैं । पक्षी रैन बसेरे के लिए अपने घोंसलों की ओर उड़े चले जा रहे हैं । इसी समय एक चलते हुए कुएँ से लम्बी घूँ-घूँ की आवाज़ सुनाई पड़ रही है । यह ईश्वरीय रंग में रंगे बालक के लिए एक कीर्तन के समान है । इतने में गाँव से बाहर तीन सज्जन आये और इसी कुएँ के समीप एक सुन्दर चबूतरे पर बैठकर बातचीत करने लगे ।

बृजनाथ–कहिए पुरोहित जी, आपके नये अवतारी बालक ने यज्ञोपवीत धारण करते समय कौन-सा कौतुक दिखाया ।

पुरोहित (हरदयाल)–पण्डित जी आप भी तो वहाँ पर उपस्थित थे । नगर के सभी साधु-ब्राह्मण उपस्थित थे । कभी आपने भी इतनी छोटी आयु के बालक में इस तरह के विचार देखे या सुने हैं । आपने किसी ऐसी उमंग का तथा इतना हठी बालक देखा है ?

पाण्डेय–मुझे सदैव बच्चों से वास्ता रहा हैं । मैंने कभी ऐसा नहीं देखा । है न यही बाल पण्डित जी (बृजनाथ की ओर देखता है) ।

बृजनाथ–बिल्कुल ठीक है । बालक अलौकिक है । उसमें लक्षण अवतार के हैं । यद्यपि मैं उसके आगे सिर झुका चुका हूँ । पर मुझे संशयवृत्ति खाये जा रही है कि यदि वह अवतार है और पृथ्वी का भार हलका करने आया है तो उसकी वेदशास्त्र समस्त रीतियों की परम्परा के साथ मेल क्यों नहीं है । कहीं ऐसा न हो कि इतनी शक्ति वाला पुरुष हमारा सर्वनाथ कर दे ।

हरदयाल–हाँ पण्डित जी, यही संशय मुझे भी दुखी कर रहा है । मैं उस समय भी अपनी ओर से पूरा जोर लगा रहा था, परन्तु उस बालक के आगे मेरी एक न चल सकी । किस प्रकार वह हमारे देश में गिरी हुई हिन्दु जाति के कुसंस्कारों पर हथौड़े-सी चोटें कर रहा था । मनुष्यों के पापों तथा हृदय के विकारों पर बालक की कैसी पैनी दृष्टि पड़ रही थी और कितने ज़ोर-शोर से वह कह रहा था कि जब आँखे, नाक-कान, हाथ-पाँव सभी बिना जनेऊ के हैं तब केवल गले ही में जनेऊ डालकर क्या होगा और कविता भी देखिए, तागा कह-कहकर चिल्लाता था कि इन्द्रियों को किसी रस्सी से नहीं बाँधा जा सकता । जब मन और इन्द्रियों को पापों की ओर से रोकने के लिए कोई बाधा नहीं

है तो बेकार यज्ञोपवीत से क्या लाभ । मेरी समझ में वह यज्ञोपवीत को मन तथा इन्द्रियों पर का बन्धन कह रहा था । नेकी का व्रत लो और असंयम पर बन्धन रखो । ठीक है न ?

पण्डित—ठीक तो है, मगर भाई जब मर्यादा गई तो शेष रह ही क्या गया ।

पुरोहित—मैं तो यही सोचकर दुखी हो रहा हूँ । मगर आज प्रातःकाल मैंने एक स्वप्न देखा कि मैं दक्षिण देश के पंपासर तीर्थ के तट पर बैठा हूँ । तालाब में कीड़े कुलबुला रहे हैं । आसपास का सारा वन तपस्वियों से भरा पड़ा है । वे उसी तालाब में स्नान करते हैं, दुखी होते हैं, मगर तालाब को कोई भी निर्मल नहीं कर सकता । फिर मैंने देखा कि त्रेतायुग के अवतार श्री रामचन्द्र जी सीता जी की खोज में लंका की ओर जाते हुए उस तालाब के किनारे आ बैठते हैं । जब सब ऋषि-मुनि गणों को उनके वहाँ जाने का पता चला तो वे सब युगावतार के दर्शन करने आये । सबने उनको नमस्कार किया । उनकी पूजा की और आरती उतारकर कहा, हे देव! यह तीर्थ अपवित्र जीव-जन्तुओं से भरा पड़ा है । कृपा कर अपने चरण इसमें डालकर इसे पवित्र कर दीजिए । यह सुनकर भगवान ने उससे कहा कि आप सब लोग इसमें स्नान करो । सबने उनकी आज्ञानुसार उस सरोवर में स्नान किया परन्तु वह शुद्ध नहीं हुआ । फिर श्री रामचन्द्र जी ने स्वयं उसमें स्नान किया परन्तु फिर भी वह शुद्ध नहीं हुआ । इस पर मेरी तरह सारे तपस्वी इत्यादि संशय में पड़ गए और सोचने लगे कि जिसके वचन तथा कर्म में शक्ति नहीं है वह अवतार नहीं हो सकता । इतने में श्री रामचन्द्र जी ने एक, नीच जाति की अछूत तथा वन के समस्त ऋषियों द्वारा तिरस्कृत भीलनी से कहा कि पुत्री तुम इसमें स्नान करो । मैंने देखा कि उस भीलनी के तालाब में प्रवेश करते ही उसका जल शुद्ध हो गया । तब मेरी समझ में आया कि अवतार तो स्वयं सामर्थ्यवान होता है यह कौतुक तो इन्होंने जानबूझकर सुमति प्रदार करने के लिए दिखाया है । अवतार ने एक शिक्षा दी कि जातिगत अभिमान को दूर कर उच्च्य जीवन व्यतीत करने का कौन-सा मार्ग है । अधम जाति की नीच भीलनी अपने मन में ईश्वर के लिए एक तड़प रखती थी । उसकी वृत्ति में श्रीराम जी का ध्यान स्थित था । उसके मन में पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास था । इसके बाद ही मेरी नींद खुल गई । मैं उठकर बैठ गया और कहने लगा—है भगवान । यह विश्वास तो आपने मुझे स्वयं ही दिया है कि मैं अपने मन को अस्थिर न करूँ और ऐसा समझूँ कि नानक की यज्ञोपवीत के समय की बातचीत जातिगत अभिमान को थोथा कहकर, "इहु जनेऊ जीअ का हई त पांडे धतु" कह कर हममें जीव की उच्चता, शुचिता, पवित्रता इत्यादि दृढ़ करने के लिए थी, परन्तु हम उसके मनोभावों को समझ न सके । फिर मुझे यह विचार आया कि द्वापर के अवतार श्री कृष्ण जी ने किस प्रकार पाण्डवों के यज्ञ की असफलता दिखाई थी । स्वयं भी भोजन किया और आगन्तुक ऋषि-मुनि भी भोजन कर गए, परन्तु सफलता तब हुई जब शूद्र वाल्मीकि ने, जो भगवद्भक्ति में निपूण सथा प्रेममय रहता था, भोजन किया और यज्ञ की सफलता के लिए हाँ कहा ।[1] ऐसी बात तो नहीं थी कि श्री कृष्ण जी यज्ञ को सफल नहीं कर सकते थे, परन्तु उनका मुख्य प्रयोजन जातिगत अभिमान को दूर करने का था । भगवान कृष्ण ने नीच जाति के भक्तों को उच्च्य जाति के अभिमानियों की अपेक्षा अधिक सम्मान तथा बड़ाई दी

१. देखिए श्री भागवत् भगतमाल तथा वेष्णवों के अन्य ग्रन्थ ।

है । अतएव मेरा संशय तो इस तरह दूर हो गया कि यह कौतुक किसी प्रकार हमारे बीच से झूठा जातिगत अभिमान तथा इसके कारण हमारी जाति में से स्वार्थसिद्धि पापमय आचरण तथा पतन को दूर करने के लिए था । यह तो आप जानते ही हैं कि जब तक आचरण उच्च नहीं होता तब तक वीरता की भावना नहीं आ सकती, आपस में मेल-मिलाप नहीं हो सकता, साझे के कामों के लिए बलिदान का भावना नहीं आ सकती और इन गुणों के बिना देश का 'राज्य दुःख' दूर नहीं हो सकता । मैं समझता हूँ कि जगत के दुःख तथा प्रजा की पीड़ा दूर करने के कार्य का आरम्भ यह अवतार सदाचार से करेगा और हमारे कर्तव्य—करनी करतूत—में सुधार करके उसके ऊपर आत्मजीवन का पैबन्द लगायेगा ।

पण्डित (एक लम्बी साँस लेकर) ऐसा ही लगता है । आप ठीक ही कहते हैं । उदास होने की कोई बात नहीं ।

पाण्डेय—ठीक है पुरोहित जी ! आपके हृदय में श्रद्धा की अत्यधि ज्योति जगी हैं । उसी के प्रकाश ने आपको सीधा मार्ग दिखला दिया है ।

इन तीनों व्यक्तियों में परस्पर वार्तालाप हो ही रही थे कि वहाँ मुल्ला जी आ गए । तीनों पण्डितों को वहाँ बैठा देखकर वे उनके समीप आये और कहने लगे कहिए आपने भी नानक को पढ़ाया है, देखा ही होगा । पढ़ाया तो मैंने भी है । कैसा अनोखा बालक है ? यह आयु, ऐसे विचार और ऐसी उड़ान । मैंने पहले तो पढ़ाया और बाद में सबकुछ देख-सुनकर सीस झुका दिया । वली है वली । हमारे धर्मग्रन्थों में लिखा है कि आखिरी अवतार हो चुका है । नहीं तो मैं इन्हें ही अवतार कह देता । मगर है यह जरूर अवतार । कितनी पवित्रता है । जनेऊ के बारे में मैंने उनके नये गीत को सुना है । बुराई तथा आचरण के पतन पर कैसा हमला किया है और खुद कैसा रूहानी जनेऊ बनाकर दिखाया है । नानक 'शरह' से ऊँचा उड़ता है, मारफत और हकीकत की बातें करता है, इसमें किसी का लिहाज नहीं करता । किसी रीति-रिवाज में नहीं पड़ता है और बहुत ठिकाने पर चोट मारता है । मैं अभी बड़े कुएँ की तरफ से आ रहा हूँ, वहाँ एक कट्टर मुसलमान के साथ अनुपस्थिति की नमाज़ पर मजाक कर रहा था । कैसा निर्भय होकर बातचीत करता है । अपने-आपको पराजय का रूप दे देता है मगर वार्तालाप करने वाला उस दीखने वाली पराजय में स्वयं लज्जित हो जाता है । क्यों पण्डित जी आप तो निश्चय ही उसे अवतार मानते होंगे ।

हरदयाल——जी हाँ ! अभी हम लोग यही बात कर रहे थे कि निश्चस ही वह कोई अवतार है ।

इसी समय वन में से एक मनमोहक मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी–

"तेरा सदड़ा सुणीजै तेरा सदड़ा सुणीजै पिआरे,
तेरा सदड़ा सुणीजै, भाई जे को बहै अलाइ ।।"

धीरे-धीरे यह गीत स्वर बन्द हो गया और इसी के मधुर प्रवाह से मिलती दूसरी ध्वनि सुनाई पड़ी–

जो दमु चिति न आवई सो दमु बिरथा जाइ,

पिआरे, सो दमु विरथा जाइ ।।····
तेरा सदड़ा सुणीजै पियारे तेरा सदड़ा सुणीजै,
भाई जे को बहै अलाइ ।।····
इिहु तनु बेची बैकरी जे को लए विकाइ,
पियारे जे को लए विकाइ,
तेरा सदड़ा सुणीजै पियारे, सदड़ा सुणीजै,
हाँ हाँ सदड़ा सुणीजै ।।

धीरे-धीरे गान निकट आता मालूम हुआ और थोड़ी देर में गायक, दैवीय बालक उन चारों व्यक्तियों के निकट आकर स्नेहभाव से खड़ा हो गया । सबकी ओर उसने सम्मानपूर्वक देखा और सीस झुकाकर प्रणाम किया । चारों उपस्थित व्यक्ति कुछ चकित-से होकर उठकर खड़े हो गए । मुल्ला जी ने कहा—नानक, हमने तुम्हें अशुद्ध शिक्षा पढ़ाई परन्तु तुमने उनके बदले में हमें शुद्ध ज्ञान अर्थात् ईश्वरीय नाद सुनाया । तुम धन्य हो ।

मुल्ला जी की स्नेहमयी वाणी सुनकर दैवी युवक के नेत्र जल से भर गए । वे अदेश की ओर उठे, चारों ओर फिरे निमीलित हो गए और उसके कोमल कण्ठ से यह ध्वनि निकली—

तेरा सदड़ा सुणीजै जे को बहै अलाइ ।।"

इस गीत को गाते-गाते उसी की ध्वनि में आत्मविभोर होकर नेत्र बन्द किए वे वहाँ से चल पड़े और धीरे-धीरे आँखों से ओझल हो गए ।

चारों व्यक्तियों के मन एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति से भर उठे । उन्हें ऐसा लगा मानो किसी शान्ति पवित्र सरोवर में डुबकी लगाकर निकले हों और उनके मन के समस्त पाप उसी में घुल गये हों ।

२. छाया का न फिरना

"सतहु खेतु जमाइयो सतहु छावाणु" ।।

[रामकली वार राय सतै बलवंड]

ईश्वरीय बालक अजीब रंग में मस्त रहता है । कभी सावधान कभी आत्मविस्मृत, कभी हँसता है कभी गाता है । कभी सुन्दर-सुन्दर गीतों द्वारा अमर काव्य-सौन्दर्य का प्रकाश फेंकता है तो कभी गोष्ठी और मजलिस करता है । कभी चुपचाप घर में चादर तानकर पड़ा रहता है तो कभी वन में नेत्र मूँद कर बैठ जाता है । परन्तु इन दिनों मुख्यतः वह भैंसों का चरवाहा है । भैंसें चरती रहती हैं और वह अचल समाधिस्थ बैठ जाता है । ईश्वरीय बालक के काम तो ईश्वर आप ही करता है ।

कहा जाता है कि इसी आयु में माता-पिता ने उसका विवाह भी कर दिया । माता-पिता का हिन्दू धर्मानुसार पुत्र का विवाह कर देना आवश्यक था । इसलिए जिस समय ईश्वर का लाड़ला अपनी प्रफुल्लता तथा विकास में सहर्ष मग्न था उसी समय उसका विवाह कर दिया गया । मेहता कालू का एक विचार यह भी था कि पत्नी-प्रेम तथा घर-गृहस्थी का मोह उस सुन्दर कान्तिमान युवक को अपने

वहमी रंग से निकल कर मेहनत और कमाई की ओर लगा देगा और घर-गृहस्थी का खेवैया बना देगा । एक गृहस्थ को स्त्री-प्रेम पर बड़ा भरोसा होता है क्योंकि इसका जादू समस्त जंजालों से निकाल कर बड़ों-बड़ों को गृहस्थी के जाल में फाँस देता है । परन्तु गुरू नानक जिस रंग की तरंग में बह रहे थे वन किसी काल्पनिक धर्म, हठ अथवा साधारण मानवीय समझ द्वारा प्राप्त धारणा पर आधारित नहीं थी । उसका रंग ही दूसरा था । वह इन्द्रधनुषी रंग था, उसमें विद्युत तरंगें थीं, उसमें आकाश में स्वगुम्फित होने वाली पवन तथा जल की लहरें थीं । मध्यालयों के समान बिना लीक बिना राह के तैरना था । पक्षियों के समान बिना लीक तथा पगडण्डी के उड़ानें लेना था । श्री गुरू नानक के मन के भीतर कुछ ऐसी अगम लहरें उठतीं कि वह उनके सौन्दर्य में एक-स्वर होकर उसी में लहरा उठते थे । प्रेम मे चुप रहना, प्रेम में शोर मचाना, प्रेम में हँसना, प्रेम में रोना, प्रेम में समाधिस्थ हो जाना, प्रेम में ठुमक-ठुमक कर चलना, प्रेम में प्रफुल्लित होना, प्रेम में विकसित होना, तथा प्रेम ही में मग्न हो ईश्वरीय-संगीत गाना ! इस ईश्वर के बेटे ने जान बूझ कर कभी भी अपने शारीरिक माता-पिता को नहीं खिजाया । जो कुछ उन्होंने कहा वही करने को तैयार और उसे पूरी तरह कर दिया । परन्तु जिस समय अगमी उच्छाल उठा, और सुरत ने अन्दर से छोह उभार दिया कि प्रकृति से 'कुदरत बसे' की छोह ने रंग जमाया तब उस समय उसी रंग में 'धन्य निरंकार' की ध्वनि लग गई और जिधर ईश्वर ने इंगित किया उधर ले गई । अदेशी बाबुल की सदा, अदेशी बाबुल की सैनत, अदेशी बाबुल की आँख मिचौली, अदेशी बाबुल के नैनदीदार जिधर बालक को ले गये वह उधर ही चल दिया । वह उसकी आशा की मधुर वीणा की ध्वनि के पीछे चल दिया । बाबुल की किंगरी के स्वर के पीछे, किसी अगमी सुगन्ध के पीछे अलमस्त भौंरें की तरह उड़ता चल दिया । ऐसा था विचार की आज्ञा से विवश और स्वतन्त्र जीवन जो द्वारा खींची गई रेखाओं वाले मार्गों पर चलने से उनको उड़ानों में ले जाया करता था । वनों में मृगए मीन तथा पक्षियों के कलरव उस बाबुल के लाड़ले के कानों में हरि के जाप[1] की ध्वनि डालते थे । चलते हुए कुँओं की घूँ-घूँ की आवाज़ें उसके रसज्ञ कानों में तूँ-तूँ[2] की गुँजार लाते थे ।

इनके धरती के बाबुल ने इनका विवाह कर दिया और इन्होंने करवा लिया ।[3] परन्तु इनके अन्दर की तड़प, मन की ताल, ईश्वरीय सरोद के मधुर गीतों के साथ बजने से न हटी । मेहता जी की यह आशा और प्रयत्न कि उनका युवा पुत्र घर-गृहस्थी के मोहजाल में पड़ कर आजीविका कमाने लगेगा पूरा न हुआ ।

इसके बाद भी वे यथानियम वन में जाते रहे और सोचा हुआ काम भैंसों का चराना-- करते रहे । पिता ने सोचा कि चलो पुत्र कुछ करता तो है, यही सही कि भैंसें चरा कर ले आता है ।

हे अदेशी तथा पृथ्वी के स्वामी ! भैसें चराओ, भैंसें । वास्तविक तथ्य तो यह है कि जब तुम्हें

---

१. जो बोलत हैं मृग मीन पखेरू सो बिनु हरि जापत है नहीं होर ।।३।। [मलार महला ४ पऊड़ी]

२. हरहट भी तूँ-तूँ करहि ।। [वारा ते वधीक महला ३]

३. पुरातन जन्मसाखी में तथा जन्म साखी भाई मनी सिंह में विवाह का इसी समय होना लिखा है । इस समय इनकी आयु चौदह वर्ष की थी । श्री गुरू नानक प्रकाश में विवाह सुल्तानपुर में होना लिखा है ।

अदेशी पिता पकड़ कर बैठाता है तब तुम बैठ जाते हो और तुम्हारी भैंसें देवता तथा फरिश्ते आकर चराते हैं । एक दिन जाल के एक पुराने वृक्ष के नीचे आपको अदेशी बाबुल का कोई महान संकेत हुआ । भैंसें अपनी इच्छानुसार किसी ओर चली गईं, और आप अपने बाबुल के संकेतानुसार उन्हीं के रंग में निमग्न उस जाल वृक्ष के नीचे छाया में विराजमान बैठे रहे । दोपहर का समय हुआ । बैठे-बैठे आप वहीं लेट गये । आप आपके देश में न जाने किस रंग में रंगे पालने में झूल रहे थे । आदेश बाबुल की गोद में लेट कर सुखासीन हो गये । इतने ही में राय बुलार उनके निकट से गुज़रा । उसने देखा कि उसके कारदार का पुत्र बावला नानक, जिसकी प्रशंसा काजी, मुल्ला, पंडित, पाण्डेय सभी करते हैं ।, वहाँ पर है । वह मन-ही-मन श्रद्धावनत हो, "पड़े रहो, लेटे रहो अपूर्व सुन्दर बालक," कहता वहाँ से चला गया ।

राय बुलार शिकार खेलने चला गया और सारे दिल उसी में लगा रहा । सूर्य पश्चिम की ओर चल पड़ा, परछाईं पूरब की ओर चली गई, और धूप ने पश्चिम की ओर जाकर धरती का दामन चूमा । राय बुलार शिकार खेल कर वापस लौट आया । उसने देखा कि 'बावला नानक' पूर्वावस्था में उसी तरह लेटा हुआ है । मित्रो ! लोगों ने नानक के चमत्कार देखे हैं, हमने सुने हैं, परन्तु नेत्रों से कोई नहीं देखे । किन्तु यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो क्या में आज एक चमत्कार नहीं देख रहा हूँ । देखो मित्रो !.... हमें धिक्कार है... देखो सभी वृक्षों की परछाइयाँ फिर गईं किन्तु इस जाल[१] वृक्ष की परछाईं नहीं फिरी, मानो नानक के शरीर को छाया देने के लिये पहरे पर किसी का खड़ा किया हुआ पहरेदार दिखाई देता हो ।

इस बात को सुनते ही साथियों ने भी देखा कि ठीक नानक के ऊपर जाल वृक्ष की परछाईं अभी तक खड़ी है ।[२]

राय बुलार ने कहा—नानक महान पुरुष है, पिछले दिन खेत हरा किया था हमने सुना जरूर था मगर देखा नहीं । लेकिन बात पक्की तथा मानने योग्य थी । आज स्वयं आखों से देखा है । फिर शीश झुका कर बोला—जाओ, जगाओ ।

सुन्दर सुगन्धियुक्त स्वाँस लेकर ईश्वर की गोद से बालक उठा और उसने राय की ओर देखा । वे रसीले नेत्र जो ईवरीय रंग में भीगे पड़े थे उठे और राय बुलार के आश्चर्यमय तथा श्रद्धावनत नेत्रों पर पड़े। कोई छोह लगा गए, कलेजा कँपा गए और अपने अदेशी देश का कोई पनपा हुआ बीज बो गए । राय बुलार अपने घर वापस आया और मेहता को बुला भेजा । मेहता के आ जाने पर आँखों देखी बात बतला कर कहने लगा—कालू । मत इस पुत्र नूँ फिटकार देदा होवहिं । इहु महापुरुष है, इसदा सदका मेरा शहिर वसदा है। कालू ! तूँ भी निहाल है जो तेरा पुत्तर है, अर मैं भी निहार हाँ जिससे शहर विच इहि पैदा होया है ।[३]

---

१. जाल का यह पुराना वृक्ष अभी तक स्थित है । यह वृक्ष कई तरह के परिवर्तन देख चुका है परन्तु अभी तक छायादार है । विगत पांच वर्षों में लाखों प्यार-भरे नेत्रों ने इसके दर्शन किए हैं । इस स्थान पर अब "माल साहब" नामक गुरुद्वारा स्थित है ।

२. पर जब देखते हैं तो अन्य वृक्षों की परछाईयाँ चली गई हैं । परन्तु इस वृक्ष की परछाईं अभी तक खड़ी है ।

३. पुरातन जन्मसाखी ।

इसी प्रकार एक दिन वन में भैसें चर रही थीं और आप ठहर गये, एक वृक्ष की झाड़ में । ग्रीष्म ऋतु थी, जिस वृक्ष के नीचे ठहरे थे कुछ समय के बाद इसकी ओर से धूप टिककर मुख पर पड़ने लगी । इसी समय वृक्ष पर श्वेत रंग का एक फणधारी सर्प आया और उनके पीछे शीश पर अपना फन तान कर खड़ा हो गया जिससे चेहरे पर धूप पड़नी बन्द हो गई ।

घट का खट बीत गई जब ही बदली तरु छाँइ लगी मुख घामा ।
स्वेद के बिन्दु मनो अरविन्द पे है मकरन्द कनी अभिरामा ।
शेष जू आन करी अभिनन्दन सेत सरूप महा छवि धामा ।
तीन प्रदिक्षण दै प्रभु को फण छाइ करी मुख पे तिह ठामा ।

[गुरू नानक सूर्योदय]

आज भी सौभाग्य से राय बुलार वहाँ आ निकला । उसने समझा कि कोई चरवाहा कपड़ा तानकर सो रहा है । परन्तु ध्यान से देखने पर उसे पता चला कि फणधारी सांप है । भयभीत होकर उसने सवार से कहा कि साँप को डरा कर भगा दो, कहीं बच्चे को डस न ले । इधर खटका सुनकर अदेशी स्वामी की गोद में सोया हुआ लाल उठ खड़ा हुआ, और साँप गुम हो गया । राय बुलार हक्का-बक्का सा होकर आगे बड़ा । वह टकटकी बांध कर उनकी आरे देखने और सोचने लगादृक्या सर्प भी इस पर छाया करते हैं । परन्तु हे राय बुलार ! ईश्वर की जुबानी फरीद जी क्या कहते हैं वह भी सुनो -

फरीदा जे तू मेंरा होइ रहहि सबु जगु तेरा होइ ।[1]

राय के आश्चर्य को श्रद्धा ने आकर शान्त किया । जो फणधारी साँप की इतनी निकटता में भी जाता रहा और जिसे सर्प अपने फण से साया कर रहा था वह अवश्य ही करामाती व्यक्ति है । उसने आगे बढ़कर सुन्दर सन्त को सीस झुकाया फिर उन्हें गले लगाकर वह छोह प्राप्त किया जो ईश्वरीय लहर में भीग कर प्राप्त होती है । सुन्दर के शरीर के प्रतिभासित ईश्वरीय रंग उसे भी लग गया ।[2]

३. लवलीनता

सो किऊ बिसरै मेरी माइ; साचा साहिबु साचै नाइ ।।

[आसा महला १]

फिर कहीं से भीतर वाले के आकर्षण का प्रबल वेग आया । भैंसें चराने का काम दिया । या तो वन में टिके रहना या साधु सन्त फकीरों की संगति में जाकर बैठ जाना । उनकी बातें सुनना, अपनी पूँछना, तक प्रस्तुत करना, कभी किसी समय कोई शब्द कह देना, गाने लगना और फिर मूक हो जाना । अपने आप में मग्न अथवा सन्त सभा में हरिकीर्तन आदि का व्यवहार ही रह गया ।

---

१. शेख सादी ने लिखा है,

तू हम गर्दन अज हुकमे दावर मपेच ।
कि गर्दन पेचद जि हुकमे तौ हेच ।
अर्थात् तुम ईश्वर की आशा से गर्दन (सिर) न फेरो ताकि तुम्हारी आज्ञा से भी कोई सिर न फेरे।

२. माल साहब नामक गुरुद्वारा इस सर्प की छाया की यादगार है ।

कुछ समय जब इसी तरह व्यतीत हो गया तो लोगो में चर्चा चल पड़ी कि कहीं पागल तो नहीं हो गया है । चतुर लोगों ने कहा कि अब इसके फकीरी घर कर गई है, अब यह संन्यासी होकर घर से निकल पड़ेगा । ये बातें उनकी माता को अच्छी नहीं लगती थीं । अतः एक दिल उसने इन्हें बहुत समझाया बुझाया । मगर इनके मन को कोई बात अच्छी नहीं लगी । चार-पाँच दिल यूँ ही पड़े व्यतीत हो गये; न कुछ खाया न पिया । तब बहू ने सास से कहाद् माता जी, कोई उपाय करो । फिर माता ने दैवी बालक को समझाया बुझाया और अन्त में कहा कि चाहे तुम कोई काम करो, या न करो, परन्तु दिलगीरी छोड़ दो । उठो बैठो, चलो फिरो और खाओ पिओ।

इसके बाद आप फिर कुछ विकास में आ गये । आपको प्रसन्न देखकर मेहता कालू ने बात चलाई और कहाद् बेटा जी, तुम कृषि का काम सँभलो । मैं मजदूर लगाये देता हूँ । जमीन अपनी है, खेती कराओ । काम थोड़ा निगरानी का होगा । बाकी करने वाले मज़दूर करेंगे । तुम अब परिवार वाले हो । कुछ करोगे तो आगे आने वाला जीव पलेगा और हमारी मान प्रतिष्ठा भी बनी रहेगी । अगर खेती में मन न लगे तो सौदागरी कर लो । घोड़े ले दूँगा, देश-विदेश चक्कर लगाओ और क्रय-विक्रय करो । यदि किसी कार्य में भी रुचि न हो तो कहीं देश-विदेश नौकरी कर लो । अगर तुम बेकार बैठे रहोगे तो लोग निखट्टू कहेंगे और ताने कसेंगे और अगर तुम साधू बन कर चले गये तो फिर हम किस के सहारे जीवित रहेंगे और लोग अलग से ताने कसेंगे । यह सुनकर श्री गुरू जी ने जवाब दिया, "पिता जी ! अब कृषि का ही काम हो रहा है, अच्छी उपज हुई है, निरंकार फसल पकायेगा । दूकान भी खुल गई है, निरंकार लाभदायक करेगा । सौदागरी भी चल रही है निरंकार लाभ का मुँह दिखायेगा । नौकरी-चाकरी भी हो आई है स्वामी-ईश्वर के साथ हमारी निभ जायेगी । अचंभित होकर मेहता कालू ते व्यौरा पूछा कि आप एक गंभीर तथा अडोल स्वर में गाने लगे:

मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु ।
नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु ।।
भाऊ करम करि जमसी से घर भागठ देखु ।।१।।
बाबा माइआ साथि न होइ ।।
इनि माइआ जगु मोहआ विरला बूझै कोइ ।।रहाऊ।।
हाणु हटु करि आरजा सचु नामु करि वथु ।
सुरति सोच करि भांडसाल तिसु विचि तिसनो रखु ।।
वणजारिआ सिऊ वणजु करि लै लाहा मन हसु ।।२।।
सुणि सासत सौदागरी सतु घोड़े लै चलु ।।
खरचु बनु चगिआईआ मतु मन जाणहि कलु ।
निरंकार कै देसि जाहि ता सुख लहहि महलु ।।३।।
लाइ चितु करि चाकरी मंनि नामु करि कंमु ।
बंनु बदीआ करि धावणी ताको आंखै धंनु ।
नानक वेखै नदरि करि चड़े चवगण वंनु ।।४।।

[सोरठ महला १ घर १]

यह आवाज देकर सहज ही गुरू जी ने पिता से ये वचन कहे :–

[1]पिता जी ! हमारी बोई हुई खेती अच्छी जमी है। इस खेती का हमें इतना आसरा है कि दीवान का सभी कर उतर जायेगा । कोई नहीं माँगेगा । पुत्र तथा पुत्रियाँ सभी सुख का जीवन व्यतीत करेंगी और सन्त फकीर भाई आदि सभी लाभ उठायेंगे । जिस स्वामी की मैंने खेती की है वह मेरी बहुत अधिक रक्षा करता है । जिस दिन से उसके साथ बन आई है उसी दिन से बहुत अधिक प्रसन्न रहता हूँ । मैं जो कुछ माँगता हूँ वह मुझे दे देता है। पिता जी, मैंने इतना बड़ा साहिब खोज लिया है कि उसे ही सौदागरी, नौकरी, दुकानदारी इत्यादि सब कुछ अर्पण कर दिया है ।

यह सुनकर कालू चकित हो गया और कहने लगा बेटा तेरा स्वामी हमने देखा सुना नहीं ।

यह सुनकर गुरू जी ने कहा, जिन्होंने मेरा स्वामी देखा है उन्होंने उसकी बड़ी तारीफ़ की है । इसके बाद गुरू नानक जी ने एक शब्द कहा :–

सुणि वडा आखै सभु कोइ ।
केवडु वडा डीठा होइ ।।
कीमति पाइ न कहिआ जाइ ।
कहणै वाले तेरे रहे समाइ ।।१।।
वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा ।
कोइ न जाणै तेरा केता केवड चीरा ।।१।।रहाऊ ।।
सभि सुरती मिलि सुरति कमाई ।
सभ कीमति मिलि कीमति पाई ।।
गिआनी धिआनी गुर गुर हाई ।।
कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई ।।२।।
सभि सत सभि तप सभि चंगिआईया ।।
सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ ।।
तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ ।।
करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ ।।३।।
आखण वाला किआ वेचारा ।।
सिफती भरे तेरे भंडारा ।।
जिसु तू देहि तिसै किआ चारा ।।
नानक सचु सवारणहारा ।।४।।

यह सुन कर कालू ने कहादृये बातें छोड़ो और दुनियादारी का मार्ग पकड़ो । कार्य के बिना क्या जीवन ?

---

१. पुरातन जन्मसाखी ।

यह सुनकर गुरू जी मूक हो गये और कालू अपने काम में लग गया और कहने लगादृयह हमारे काम का नहीं रहा। मगर बाहर खेती न उजड़े तो अच्छा। तब माता आई और उपदेश देने लगी– बेटा तुम चार दिन ईश्वर का नाम भूल जाओ। उठ कर वस्त्र पहिन कर गलियों में चक्कर काटो जिससे लोगों में विश्वास हो और सब यह कहने लगे कि कालू का पुत्र ठीक हो गया है।
यह सुन कर गुरू जी ने वाणी कही :–

आखा जीवा विसरै मरि जाऊ।
आखिण अऊखा साचा नाऊ ।।
साचे नाम की लागै भूख ।।
उतु भूखै खाइि चलीअहि दूख ।।१।।
सो किऊ विसरै मेरी माइ ।।
साचा साहिबु साचै नाइ ।।१।।रहाऊ।।
साचे नाम की तिलु वडिआई ।।
आखि थके कीमति नहि पाई ।।
जे सभि मिलि कै आखण पाहि ।।
वडा न होवै घटि ना जाइ ।।२।।
ना ओह मरै न होवै सोगु ।।
देंदा रहै न चूकै भोगु ।।
गुणु एहो होर नाही कोइ ।।
ना को होआ ना को होइ ।।३।।
जेवडु आपि तेवड तेरी दाति ।।
जिनि दिनु करि कै कीती राति ।।
खसमु बिसारहि ते कम जाति ।।
नानक नावै बाझु सनाति ।।४।।२।।

[आसा महला १ घर २]

यह सुन कर माता चली गई और जाकर परिवार में सूचना दी। बेदियों का सारा परिवार दुखी हो गया और कहने लगा कि बड़े दुःख की बात है जो कालू का पुत्र पागल हो गया है।

४. वैद्य

परिवार के लोग आ-आकर गुरू जी को समझाने लगे। उनके चाचा लालू ने उन्हें विशेष रूप से समझाया और कहा– तुम परिवार के बताये हुए किसी कार्य को करके प्रसन्न नहीं हुए तो कोई बात नहीं। तुम और कुछ न करो तो खूब चलो-फिरो, खाओ-पिओ और कुछ न सही तो खुश तो दिखाई दो जिसमें लोग हुम्हें बावला न कहें।

रंग में रंगे हुए ने सब बातें सुनकर कोई उत्तर नहीं दिया। फिर इसके बाद कई दिनों तक आप उठे नहीं। न कुछ खाया न पिया। परिवार के लोगों ने समझा कि कहीं कोई रोग न हो गया हो। उद्यम, स्फूर्ति तथा कार्य के लिए साहस इसके बस का ही न हो। यह तीन मास से इसी दशा में

पड़ा है, शायद कोई अन्दर का रोग न हो ।

यह सोचकर मेहता कालू वैद्य को लिवा लाया । वैद्य ने आकर हाथ की नाड़ी देखी आपने हाथ खींच दिया और पैर इकट्ठा करके उठ बैठे और पूछने लगे– तुम क्या कर रहे हो ?

वैद्य ने उत्तर दिया– तुम्हारे रोग का पता लगा रहा हूँ । यह सुनकर रंग में रंगे हुए के अधरों पर मुस्कान सी आई और वे कहने लगे –

वैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह ।
भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि ।। [वार मलार महला १]

यह सुनकर वैद्य ने कहादृहे नानक ! यदि कलेजे में पीड़ा है तो मुझे देख लेने दो । मैं ऐसी औषधि दूँगा जिससे तुम स्वस्थ हो जाओगे ।

यह सुनकर आपने उत्तर दिया–

दुखु विछोड़ा इकु दुखु भूख ।
इकु दुखु सकतवार जमदूत ।।
इकु दुखु रोगु लगै तनि धाइ ।
वैद न भोले दारू लाइ ।
दरदु होवै दुखु रहै सरीर ।
ऐसा दारू लगै न बीर ।।१।। रहाऊ ।।
खसमु विसारि कीए रस भोग ।
तां तनि उठि खलोऐ रोग ।।
मन अंधे कउ मिलै सजाइ ।
वैद न भोले दारू लाइ ।।२।।
चन्दन का फलु चन्दन वासु ।
माणस का फलु घट महि सासु ।।
सासि गइऐ काइआ ढिल पाइ ।
ता कै पाछै कोइ न खाइ ।।३।।
कंचन काइआ निरमल हंसु ।
जिसु महि नामु निरंजन अंसु ।।
दूख रोग सभि गइआ गवाइ ।
नानक छूटसि साचै नाइ ।।४।।२।।७।।

[मलार महला १ घर २]

यह सुनते ही वैद्य सहम गया और सोच-विचार में पड़ गया । उसने यह समझकर कि यह रोगी नहीं, यह तो किसी उच्च रंग में है, धीरे से कहा–औषधि की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है, कोई यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ कराओ जिससे सुरत सँभले और फिर यदि इसके कोई शारीरिक रोग हुआ तो भस्म की हुई ऐसी औषधि दूँगा जिसकी थोड़ी-सी मात्रा में सेवन ही से शरीर में शक्ति और बल आ जाएगा ।

यह सुनकर जगत दाता ने वैद्य की ओ दया और उपदेश से भरपूर, माँ की ममता और पिता की शिक्षा तथा झिड़की-भरी दृष्टि से देखा और निम्न पद उच्चारित किया—

दुख महुरा मारण हरि नामु ।
सिला संतोख पीसणु हथि दानु ।।
नित नित लेहु न छीजै देह ।
अंत कालि जमु मारै ठेह ।।१।।
ऐसा दारू खाहि गवार ।
जितु खाधै तेरे जाहि विकार ।।१।। रहाऊ ।।
राजु मालु जोबनु सभु छाँव ।
रथि फिरंदै दीसहि थाव ।।
देह न नाऊ न होवै जाति ।।
ओथै दिहु ऐथै सभ राति ।।२।।
साद करि समधाँ त्रिसना घिऊ तेलु ।
काम क्रोधु अगनी सिऊ मेलु ।
होम जग अरु पाठ पुराण ।
जो तिस भावै सो परवाण ।।३।।
तपु कागदु तेरा नामु नीसानु ।
जिनि कऊ लिखिआ इहु निधानु ।।
से धनवंत दिसहि घरि जाइ ।
नानक जननी धंनी माइ ।।४।। [मलार महला १ घर २]

यह सुनते ही वैद्य डरकर पीछे हट गया, उसके नेत्र मुंद गए, और उनमें आँसू भर गए । दोनों हाथ जोड़कर उसने नमस्कार किया और कहने लगादृ

अब मुझ पर इहु करुणा करीए ।
मन के रोग सकल परहरीए ।।
श्री गरू कह्यो करो सत्तिसंगा ।
दिन थोरन मै होवहि भंगा ।। [नानक प्रकाश]

वैद्य नमस्कार करके विदा हुए और परिवार से कहते गए कि यह तो महापुरुष हैं, रोगी नहीं, चिन्ता न करो ।

जब वे इसी रंग में थे तब एक दिन तीनों पण्डित उनके दर्शन हेतु आये और श्रद्धापूरित शब्दों में समझाने लगे कि माता-पिता दुखी हैं, आप उठो और उनको सुखी करो ।

यह सुनकर आपके नेत्र अदेश की ओर उठे । कुछ आश्चर्यचकित भाव उनके मन में उठे फिर नेत्र मुँदकर खुले । तत्पश्चात् उनके मनोभाव इस शब्द का रूप लेकर निःसृत हुए :

कत की माई बापु कत केरा किदू थावहु हम आए ।
अगनि बिम्ब जल भीतरि निपजे काहे कंमि उपाए ।।१।।
मेरे साहिबा कउण जाणै गुण तेरे ।

कहे न जानी अउगण मेरे ।१।। रहाऊ ।।
केते रुख बिरख हम चीने केते पसू उपाए ।
केते नाग कुली महि आये केते पंख उडाए ।।२।।
हट पटण बिज मन्दर भंनै करि चोरी घरि आवै ।
अगहु देखै पिछहु देखै तुझ ते कहा छपावै ।।३।।
तट तीरथ हम नव खंड देखे हट पटण बाजारा ।
लै कै तकड़ी तोलणि लागा घट ही महि वणजारा ।।४।।
जेता समुंदु सागरु नीरि भरिआ तेते अउगण हमारे ।
दइआ करहु किछु मिहर उपावहु डुबदे पत्थर तारे ।।५।।
जीअड़ा अगनि बराबर तपै भीतरि वगै काती ।
प्रणवति नानकु हुकमु पछाणै सुखु होवै दिन राती ।।६।।५।।१७।।

[गऊड़ी चेती महला १]

□□

४ खरा सौदा

१. दिलगीरी

माता—बेटी, जब से शरद् ऋतु आई है तुम्हारे भईया रात-दिन पड़े ही रहते हैं । न उठते हैं, घूमते-फिरते हैं, न किसी से कोई बातचीत करते हैं। कभी तुम्हारे साथ भी बातचीत करते हैं या नहीं ?

बेटी—माँ जी, वे कम ही बोलते हैं । वे तो अपने ही किसी रंग में निमग्न पड़े रहते हैं। तीन महीने होने को आये यही हालत है ।

माता—क्या किया जाय ? इकलौता बेटा, वह भी कभी बावला, कभी पागल; कभी घर लुटा देता है, कभी पड़ा रहता है । कभी स्फूर्ति, कभी दिलगीरी । हे भगवान न जाने हमारे भाग्य कैसे हैं ? क्या किया जाए ?

बेटी—माँ जी, ऐसा न कहो । हमारे भाग्य तो सारे जगत से अच्छे हैं । भैया सबसे ऊँचे हैं । जो कुछ कौतुक वे करते हैं सभी उनके चोज हैं । माँ, भैया तो इस जगत की चेतना हैं । उन्हें बावला न कहो ।

माता—बेटी, तुम्हें पता नहीं कि क्या दिखाई देता है और कैसे दिखाई देता है । बदनामी सुनते-सुनते हमारी तो जान तंग हो गई है और चिन्ताओं के मारे हमारा दिल बैठ गया है । होश में आये, उठे, चले फिरे, कोई काम-काज करे, घर-बार सम्भाले, कमाई करने वाला, सुन्दर सपूत बने, भागता-दौड़ता आये, हँसे बसे रसे । प्रसन्नमुख होकर हमें भी प्रसन्न करे । दिन-रात पड़े रहना, कभी रोने लगना तो रोते ही रहना, हँसने लगना तो हँसते ही जाना । सिर ढककर पड़े रहना, कई-कई जून खाना न खाना । अगर उठना-फिरना भी हुआ तो वनों में । घर की चीज़ वस्तु

उठाकर बाहर लोगों में बाँट देना, क्या यही होश है ? घर-घर में इसी की बातों की चर्चा है। तुम्हारे पिता जी की चिन्ता के मारे भूख-प्यास भी हर गई है। वे कहते हैं क्या करूँ, क्या न करूँ ? पहले पाण्डेय के पास शिक्षा के लिए भेजा कि कुछ लेखागणित का ज्ञान प्राप्त कर ले। फिर पण्डित के पास भेजा। वहाँ पर भी कुछ न बना। फिर मुल्ला के पास भेजा कि कुछ फारसी ही सीख ले। हम व्यापारी ठहरे। यदि शिक्षा प्राप्त कर ले तो किसी ऊँचे पद पर पहुँच जाए। मगर हमारी सब मेहनत व्यर्थ गई । पाण्डेय, पण्डित, मुल्ला किसी के पास भी तुम्हारे भैया ने लग कर शिक्षा नहीं प्राप्त की। फिर सोचा कि यदि इसके भाग्य में मजदूरी करना ही बदा है तो चलो भैंसें ही चराए । अवकाश में रहकर काम सीखे, झुण्ड लेकर दे देंगे तो भी अपनी आजीविका कमा लेगा और सुख से रहेगा। मगर वह भी न हुआ। खेती के काम में लगाया तो इसे भी उजाड़ दिया। अब कौन-सा व्यवसाय बाकी रह गया है जिससे इसको लगाया जाए ? यदि दो-चार दिन स्फूर्ति आती भी है तो फिर दो-दो महीनों तक उदासीनता घेर लेती है । वनों में जाकर बैठे रहना, किसी के साथ मिलना न जुलना, न बातचीत। आवारा फकीर इसके सामने आकर हाथ जोड़कर बैठते हैं और यह उनके साथ बोलता-चालता है। मगर हमारे लिए तो वही मूकता । किस बात का घमंड करूँ और तुम्हारी तरह कह दूँ कि बहुत अच्छा है। लोग कहते हैं कि इकलौते पुत्र की माँ अन्धी होती है। बात तो यह ठीक है। मैं तो बावली हुई रहती हूँ। इकलौता पुत्र, कभी ओर लोगों के पुत्रों की तरह प्रसन्न होता नहीं देखा ।

बेटी—माँ, तुम ठीक ही कह रही हो। मगर भैया तो संसारी हैं ही नहीं। वे तो ईश्वरीय हैं । मैं तो बिल्कुल अनजान हूँ मगर मेरे ऊपर जो भैया के झलकार पड़ते हैं वे अति अनुपम है। हमारा भैया खेती व चाकरी करने नहीं आया है। तुम उदास मत हो। भैया को प्रसन्न रखो, फिर तुम देखोगी कि कोई-न-कोई बात ऐसी जरूर होगी जिससे तुम प्रसन्न होगी। माँ, तुम चाहे जो कहो, सच बात तो यह है कि भैया बड़े ऊँचे हैं। वे तो विशुद्ध प्रकाश हैं, और मैंने स्वयं उस प्रकाश को देखा है।

माता—बहनों के अपने भाईयों से प्रेम होता ही है। उनका आपस में बड़ा कोमल मधुर स्नेह होता है। इसीलिए तुम अपने भैया का पक्ष ले रही हो। मगर तुमने कभी अपने भैया को समझाया भी है कि उसके माता-पिता कितने दुखी हैं। उसे हमारा कहा मानना चाहिए। तुम्हीं उसे समझाओ बेटी !

बेटी—माता जी, मैं आयु में निःसन्देह उनसे बड़ी हूँ, मगर और सब बातों में तो भैया ही बड़े हैं, बहुत ऊँचे और इतने उच्च्य से मैं कहूँ भी तो क्या कहूँ मेरे साथ जब वे कोई बात करते हैं तो यही कहते हैं कि "जो कुछ दिखलाई पड़ता है सब भुलावा है, इसमें यथार्थ कोई अन्य है"। फिर उसकी बातें बड़े प्यार से करते हैं और नेत्रों से आसुओं की झड़ी लग जाती है। यदि मैं कभी कहती हूँ कि माता-पिता बहुत दुखी हैं उनकी भी तो कुछ सुना करो, तब वे मेरी ओर देख कर कहते हैं– दीदी, तुम भी वैसी ही बातें करने लगीं ? यह सुनकर, मां-मेरे अन्दर एक कसक-सी उठती है । मैं चुप होकर रह जाती हूँ और फिर थोड़ी देर बाद स्वतः ही बोल पड़ती हूँ– नहीं भैया, जैसी तुम्हारी इच्छा, तुम बहुत ऊँचे हो। कभी किसी समय मैंने उनसे यह भी कहा कि, भैया, पिता जी बहुत दुखी हैं, तब वे आकाश की ओर सजल नेत्रों से देखकर कहते हैं—हाँ बहन, जगत बहुत दुखी है। अच्छा माँ यह तो बताओ कि इसका अर्थ क्या है ?

माता—अब उल्टे पड़े हुए को लगभग दो मास होने को आये हैं । उसे यह तो समझाओ कि और सब कुछ तो त्याग दिया है अपने शरीर का होश तो करे ।

बेटी—मां, इन दिनों मैं जब कभी उनके पास गई और भैया कहकर उन्हें पुकारा तो उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया । इस पर मैं चुपचाप उनके पास बैठ गई तो मैंने देखा कि भैया के चारों ओर एक प्रकाश का चक्कर-सा बना हुआ है। ऐसा प्रकाश बाह्य प्रकाश नहीं होता । एक दिन इसी तरह उस प्रकाश में उनके चारों ओर प्रकाश ही के बने हुए अनेकों जन दिखाई दिए । एक दिन यकायक वहाँ पर अत्यन्त मधुर संगीत ध्वनि सुनाई दी । उनके समीप बैठने पर चित्त को बड़ी शान्ति मिलती है और चित्त अनायास किसी अनिवर्चनीय आनन्द में खो-सा जाता है । इसलिए माता जी मैं जितनी बार वहाँ उनके पास गई कुछ सहम-सी गई, मेरा मन उनके प्रति आनन्द की भावना से भर गया । मैं वहाँ पहुँचकर ठिठक गई और कुछ कह ही न सकी ।

माता—बेटी । न जाने क्यों भैया के पीछे तुम भी बावली-सी हो गई हो । तुम होश करो । वह तो पुरुष है, जैसे-तैसे दिन काट ही लेगा, मगर तुम्हें तो बेटी ससुराल जाकर सास तथा ननदों के साथ रहना है । यदि तुम भी अपने भैया की सी बातें करना सीख गई तो कैसे काम बनेगा । संभालो ओर होश में रहो । इस तरह के वहमों में पड़ना ठीक नहीं। यह एक ही रही कि तुम भाई-बहनों को अदेशी लोग तो दिखाई पड़ने लगे हैं और पास ही बैठे रोते-चिल्लाते माँ-बाप नहीं दिखाई देते । हाँ माँ-बाप का क्या । चाहे रोवें चाहे कुढ़ें भाई बन्धु भले ही कुछ कहें सुनें, बदनामी होती रहे और तुम दिवास्वप्न में उड़ाने भरो ।

बेटी—(सजल नेत्रों से) माँ तुम नाराज़ न हो । मेरी प्यारी माँ, मेरे कलेजे में कसक उठती है । तुम नाराज़ न हो । सच बात तो यह है कि भैया बहुत ऊँचे हैं ।

इतना कहते ही बेटी का गला भर आया और वह बेबस होकर रोने लगी । माता ने उसे अपने गले से लगा दिया, प्यार किया और माथा चूमा मगर उसकी रुलाई न रुकी । अन्त में वह रोते-रोते सिसकियाँ भरने लगी और माँ की गोद ही में सो गई । इसी समय मेहता कालू राम घर पर आये । माँ ने बेटी को तकिया लगाकर लिटा दिया और स्वयं उनके भोजन इत्यादि की व्यवस्था में लग गई ।

भोजन करते समय कालू जी ने अपनी पत्नी से पूछा—तृप्ता ! नानक उठा है या नहीं ?

तृप्ता—उठकर बाहर चला गया और दो घड़ी बाहर बिताने के बाद लौट आया और फिर पहले की तरह पड़ा हुआ है । परसों का खाना खाया हुआ है। वह भी बड़ी मुश्किल से बिटिया ने मिन्नत करके दो-एंक कौर खिला दिये थे ।

कालू—बिटिया ही से कहो कि उसे समझाये-बुझाये और सुबुद्धि दे । उसका कहना तो मानेगा ही ।

तृप्ता—आज मैंने यही बात चलाई थी । बेटी से कहा था कि अपने भैया को समझाये जिससे वह आलस्य छोड़े, उठ कर स्नान करे, कुछ खाये-पिये, कोई रोज़गार-धन्धा करे, सुन्दर-साफ होकर बिरादरी में निर्भय होकर घूमे-फिरे । मैंने उससे इतना कहा ही था कि उसका गला भर आया और वह रोने लगी । रोते-रोते ही उसने कहा कि भैया बहुत ऊँचे हैं, तुम उन्हें कुछ भी मत कहो, उनकी जो इच्छा होगी वही वह करेंगे । उसने यह भी कहा कि उसे उनके चारों ओर एक मधुर प्रकाश का चक्कर घूमता-सा दिखाई देता है । उसके चारों ओर ईश्वरीय राग होते हैं । उसके समीप प्रकाश

के हजारों जीव आदर हेतु खड़े दिखाई देते हैं । मैं तो यह सब सुनकर काँप उठी । क्या जिस मार्ग पर लड़का जा रहा है उसी पर बेटी भी जायगी ? हे भगवत् ! क्या हम छीर इस संसार में लोगों की हँसी-मजाक बनने के लिए रह गये हैं । मैंने तो उससे कुछ कहा भी नहीं, मगर उसे इतना वेराग्य हुआ कि गले लगकर रोने लगी चुप ही नहीं हुई और बेचारी रोते-रोते ही सो गई । अभी-अभी आपके आ जाने पर चरापाई पर लिटा कर आई हूँ । अब तुम ही बताओ मैं किस-किस को समझाऊँ । मैं जब कभी उसके पास जाती हूँ तो कभी तो थोड़ा-मा बोलबाल देता है और अधिकतर तो मूक ही रहता है । दौलतां दासी जाती है तो वह भी मिन्नत कराके और निराश होकर लौट आती है । वह भी डरने लगी है और भ्रम में पड़कर कई बातें वहम की कह बैठती है । मैं दुर्बल नारी, समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ? तुम ही कोई उपाय सोचो ।

कालू—(मस्तक पर हाथ फेरता हुआ) मैं क्या करूँ । औझा आए उनसे ओझाई कराई; मैद्यों को लिवा लाया उन्होंने भस्म औषधि दी; पाण्डेय, मुल्ला आये मगर किसी का बस न चला । मैने खुद भी उसे बहुतेरा समझाया । चाचा लालू ने महीनों तक सिर मारा मगर कुछ न बना । जिस किसी ने भी समझाया उसी के उसकी तीखी तुक बन्दियाँ सुनी या फिर उसकी चुप्पी देखी । क्या करें क्या न करें कुछ समझ में नही आता है । उसके आमोद प्रमोद के न जाने कितने यत्न किये, पढ़ने के लिए पाठशाला में भेजा, पशु चराने में लगाया, खेती-बारी में चिपकाया, मगर ये सब बातें चार दिनों तक रहीं । नानक फिर उसी उदासीन अवस्था तथा दिलगीरी में है । भगवान ने इस बड़ी उम्र में पुत्र दिया मगर उससे कोई भी मनोकामना पूरी न हूई । क्या करूँ क्या न करूँ कुछ समझ में नहीं आता ।

तृप्ता—राय जी से कहो । शायद उनके समझाने से मान जाय । वे बड़े मान्यवर पुरुष हैं, परगने के राजा हैं और फिर हम उन्हीं का दिया नमक खाते हैं । बहुत सम्भव है नानक उनका कहना मान ले ।

कालू—क्या कहूँ ? या तो मैं बावला हूँ या संसार के अन्य लोग । राय भी तो नानक को सन्त और पवित्र व्यक्ति कहता है । जब से भैंसों के खाये हुए खेत के हरे-भरे होने की घटना घटी है और उसने नानक के शीश पर सर्प की छाया देखी है तब से तो वह उल्टा नानक का सम्मान करता है और मुझे सदुपदेश देता है । कहता है कि नानक ईश्वर की ओर से आया है । वह उसकी इस आयु में उसके कौतुक और लीलायें देख कर चकित है । अब भागवान तुम्हीं कहो उससे क्या कहूँ । जब कभी भी कुछ कहा तो उल्टे उसने मुझे सदुपदेश दिया नानक से कुछ भी नहीं कहा । न जाने लोग बावले हैं या कालू ।

तृप्ता—फिर क्या किया जाय ? दुःख में सूखने से भी तो कोई लाभ नहीं है । जैसा कुछ चल रहा है ठीक है । कोई बस नहीं चल सकता, कोई दांव-पेच काम नहीं करता । जैसा होता जाय देखते चलो । हाथों की खिलाई बेटी भी यही कहती है कि तुम देख लेना भैया जो कुछ करेंगे भला ही होगा और अति उच्च ही होगा । देखना है क्या होता है ? अभी तो सहम में पड़े हुए हैं ।

इस प्रकार तृप्ता जी ने अपने हृदय की बातें कह दीं और कालू जी उन्हें सुनते-सुनते सो गए । स्वप्न में उन्होंने देखा :—

जाड़े की ऋतु है । एक नदी बह रही है । उसका जल उतर रहा है मगर फिर भी अधिक और शीतल है । प्रातःकाल का समय है, शीतल वायु चल रही है। कालू जी स्वयं जल में खड़े होकर तप्सया कर रहे हैं । इसी तरह तप्सया करते-करते सूर्योदय हो गया, मगर बादलों के छाया कर देने के कारण थोड़ा-सा अँधेरा हो गया है। कालू जी जल से बाहर निकले । यद्यपि दीर्घकाल तक तपस्या करते रहने के कारण कालू जी का गर्मी तथा सर्दी सहन करने का अभ्यास पड़ चुका था मगर आज जब वे बाहर निकले तब उन्हें सर्दी लगी और उसकी अधिकता के कारण उनके दाँत बजने लगे । कालू जी ने तुरन्त ही अपने शरीर को पोंछा, लगोंटी बदली, गाती बाँधी, गुदड़ी ओढ़ी और कमण्डल उठाया मगर शरीर में कुछ आलस्य आ जाने के कारण एक वृक्ष की ओट लेकर बैठ गये । बैठते ही थकावट के कारण नेत्र मुँद गये और एक बेहोशी-सी छा गई । उसी दशा में उन्होंने देखा कि एक दिव्य मूर्ति सामने आकर खड़ी है और उनसे कह रही है, कालू, तुमने बहुत उग्र तपस्या की है । अब तो तुम्हारा शरीर क्षीणता के कारण हार गया है । अब मेरी सलाह है कि तुम तपस्या छोड़कर भक्ति करो ।

कालू—मेरे लिए जो आज्ञा होगी वही करूँगा, मगर मेरी कामना की पूर्ति तो होनी ही चाहिए ।

दिव्य मूर्ति—अपने मन की मनसा कहो ।

कालू—मेरी कामना है कि वह ईश्वर जिसे ज्योतिस्वरूप कहा जाता है मुझे मेरा जैसा रूप धारण कर मिले और मिले भी इस प्रकार कि मुझे वह अपना ही लगे ।

दिव्य मूर्ति—देखो कालू, तुमने तपस्या तो वास्तव में बड़ी उग्र की है मगर भक्ति नहीं की है । भक्ति न करने कारण अभी तुम्हारे अज्ञान का पर्दा दूर नहीं हुआ है और न अहम् पूरी तरह से भीतर से निकला है । जो कुछ तुम माँग रहे हो उसकी लौ तो तुम्हें लगी ही नहीं । उसके मिल जाने पर तुम्हें रस नहीं आयेगा क्योंकि बीच में माया छाई रहेगी और रस से तुम्हें दूर रखेगी । इसलिए पहले तुम भक्ति करो ।

कालू—यदि अज्ञानता दूर हो गई तो जो स्वाद मैं प्राप्त करना चाहता हूँ वह किस प्रकार मिलेगा । ज्ञान तथा भक्ति द्वारा तो मैं ईश्वर के देश में पहुँच जाऊँगा । मगर मेरी इच्छा तो यह है कि ईश्वर स्वयं मेरे देश में मेरे आँगन में, मेरी गोद में खेले ।

दिव्य मूर्ति—कालू ! सोच लो क्या माँग रहे हो । तपस्या करना और फल माँगना सरल कार्य है मगर जो कुछ माँगना उसके प्रतिफल का विचार करना अथवा आत्मिक सुख में पहुँचना बहुत कठिन है । इससे एक बार फिर सोच-विचार लो तब माँगो ।

कालू—यदि आप तुष्ट हैं तो मेरे मनोरथ को पूर्ण कीजिए । अब इससे ऊँचा मैं नहीं उठ सकता । मैं इसी में कल्याण देखता हूँ कि मैं यहाँ पर ही रहूँ और वह यहीं पर आवें । वह यदि यहाँ आयेगा तो सारा संसार उसके दर्शन करेगा, अनेकों का कल्याण होगा और यदि मैं इससे ऊँचा उठूँगा तो केवल मेरे एक का ही कल्याण होगा ।

दिव्य मुर्ति—यह तो तुमने ठीक कहा है, पर तेरी सलाह है कि तुम भक्ति करो जिसमें अँधेरा हटे और शान्ति प्राप्त हो । तपस्या से तो सतोगुण की वृद्धि होगी और एकाग्रता आयेगी मगर

सतोगुण का सुख नहीं मिलेगा ।

कालू—अब मैं थक गया हूँ। अब तो न मुझ से पहले की तरह तपस्या हो सकेगी न भक्ति । अतः यदि आप तुष्ट हैं तो वरदान दीजिए ।

दिव्य मूर्ति—तथास्तु–तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी ।

इनता कहकर वन दिव्य मूर्ति अन्तरध्यान हो गई । तपस्वी बाबा के नेत्र खुले । दोपहर का समय हो चुका था और कुछ बूँदाबाँदी हो रही थी । मगर ऐसी वर्षा नहीं थी कि गुदड़ी भीग जाती । शनैः-शनैः वे अपनी कुटिया की ओर आ गये और सोचने लगे कि मैंने वरदान सो ठीक ही माँगा है और वह मिल भी गया है । अब कार्य सिद्ध हो जायगा । इसी समय इनके शिक्षक एक साधु वहाँ आ गए । वरदान-प्राप्ति की समस्त कथा सुन कर कहने लगे कालू, यदि तुम्हारी अपेक्षा मुझे ऐसा सुअवसर मिलता तो मैं कभी भी अपने मन के कहने पर न चलता । मैं उनकी बात को निश्चय ही मान लेता । महान ज्योतियों तथा महापुरुषों के वचनों को मानना ही कल्याणकारी होता है । मानने में कठिनाई ज़रूर होती है मगर सुख की प्राप्ति उन्हें मानने ही में है । निजी माँग पर उस समय ज़ोर देना चाहिए । हम यह भूल जाते हैं कि सुख की प्राप्ति तो आज्ञा मानने ही से होती है ।

तपस्वी—मुझे तो जो माँगना था माँग चुका और अब तो वरदान पाकर प्रसन्न ही हूँ । अब तो समय भी व्यतीत हो चुका है, दूसरी बार तप कर भी तो नहीं सकता । शरीर क्षीण हो चुका है ।

शिक्षक—जो कुछ होना था हो चुका । मगर अभी भी एक अवसर है । तुम कुछ थोड़ा विचार तथा भक्ति कर लो । क्योंकि वरदान तो तुम प्राप्त कर ही चुके हो मगर उन्होंने जो माया पड़ी रहने की बात कही है इसका अर्थ यह है कि जब उनकी भेंट तुम से होगी तब तुम अन्धकार में रहोगे, उन्हें पहचानोगे नहीं बेटा ! माया बड़ी प्रबल होती है । वह एक महान सघन पर्दा है जिसके कारण भेंट में बाधा पड़ती है और यह अत्यन्त सूक्ष्म रूप धारण करती है । अतः भक्ति करो जिससे इस मोहक जादू से रक्षा हो सके । अधिक नहीं तो कुछ कर लो, जिसमें भेंट होने पर पहले नहीं तो पीछे ही सही पर्दा तो हटे और तुम उन्हें देख सको । ईश्वर-भेंट का लाभ ही क्या हुआ यदि तुम्हें इस बात की प्रतीति ही न हो कि जिनसे तुम मिल रहे हो वे ईश्वर हैं । हाँ यदि प्यार ने हिलोर न खाया कि यह मेरा है और मन ने मेरा-तेरा का भेद मिटाकर उसके साथ मेल न पाया तथा उसके स्वरूप में निवास न हुआ तो प्राप्ति का लाभ ही क्या हुआ ।

तपस्वी—(चौंक कर) हैं, तो क्या मुझे यह समझ नहीं आयेगी कि यह मेरा स्वामी है ?

शिक्षक—जो कुछ दिव्य मूर्ति ने तुमसे कहा है उसका तात्पर्य यही है कि भेंट तो अवश्य होगी पर तुम्हारे मन में अँधेरा छाया रहेगा और उन्होंने बताया है कि यह अँधेरा तुम्हारा अपना है, तुम्हारा अहम् अभी तक मिट नहीं पया हैं अतः पुत्र ! तुम भक्ति करो अथवा न करो किन्तु तुम्हारे कारण मेरी समझ में यह बात आ गई है कि तप से भक्ति कहीं अधिक श्रेष्ठ है । अतः अब मैं तो भक्ति करूँगा और यही वरदान माँगूँगा कि हे भगवान ! मिलो, जैसे चाहे मिलो, जब तुष्ट हो तब मिलो परन्तु यह वरदान दो कि मैं सदा तुम्हारे प्यार में निमग्न रहूँ और सदैव तुम्हारा ही इच्छुक बना रहूँ ।

तपस्वी—(निराश होकर) ओह, गुसाईं जी ! मैं यह समझ ही नहीं पाया कि मेरे इस माया के परदे का क्या अर्थ है । मैं तो यह समझता था कि चाहे ब्रह्मज्ञानी अथवा आत्मानुभवी न होऊँ मगर इतना तो समझ में आ आयगा कि अपने ईश्वर को मनुष्य शरीर में देख रहा हूँ और उसकी इस प्रकार पूजा करूँगा जैसी कि मूर्ति पूजक मूर्ति की करते हैं । वे पत्थर की पूजा करते हैं, मैं सजीव की करूँगा ।

शिक्षक—ठीक है, पर पुत्र, तुम्हें उनके वचनों के भाव को समझना था अन्यथा उनकी आज्ञा पर चलना चाहिए था । परन्तु कोई बात नहीं । वह समय तो बीत गया । अब भी होश सँभालो । अपनी आयु का शेष भाग इस प्रार्थना में व्यतीत करो कि हे दाता ! जब भी आपसे भेंट हो अथवा आपके किसी भक्त से भेंट हो तो आदि मध्य अथवा अन्त मेरा यह पर्दा अवश्य ही किसी-न-किसी ढंग से हटे और मैं तुम्हें पहचान सकूँ ।

तपस्वी—ठीक है स्वामी जी ! परन्तु यह वरदान मुझे प्राप्त कब होगा ।

शिक्षक—तुमने उस समय नहीं पूछा ? मेरे विचार में यह मृत्यु के पश्चात् ही होगा । तुम्हारा यह शरीर अतीत का है । जो वरदान तुमने माँगा है उसकी पूर्ति तो गृहस्थ के शरीर में जाकर हो सकती है ।

इतना कहकर शिक्षक हे स्वामी ! हे स्वामी ! कहते चल दिए और तपस्वी थकान के कारण लेट गए । लेटते समय उन्होंने जाना कि शरीर का त्याग हो रहा है । अतः वे शिक्षक की बताई हुई प्रार्थना में लीन हो गए । विनती होती रही और अपनी जान में तपस्वी जी की मृत्यु हो गई । मृत्यु के पश्चात् नवीग जगत में आकर जब नींद खुली तो पहले प्रकाश-सा दिखाई दिया, फिर अँधेरा आ गया । फिर सचमुच में उनकी आँख खुल गई और कालू जी ने देखा कि वे अपने ही चौके में अपने ही आसन पर बैठे-बैठे सो गए थे । वही घर, वही चूल्हा-चक्की, वही चौका और वही कालू मेहता, राय बुलार का पटवारी और कर्मचारी। न कहीं नदी है न कुटिया, न तपस्वी कालू न गुसाई न दिव्य मुर्ति । मगर देखा हुआ स्वप्न आँखों के आगे नाच रहा है । उसने सोचा कि क्या उसने कभी तप किया था । कहाँ गया वह तप ? फिर मैं इतना बड़ा गृहस्थ बन गया और क्या यह बालक नानक—आप आया है और मेरा वरदान फला है । क्या यह सचमुच वही है और मैं अँधेरे में हूँ, माया के मोह में हूँ । उठकर देखूँ ।

कालू बावलों की तरह उठा और जिस कोठरी में बालक नानक उलटा लेटा था वहाँ दौड़कर चला गया । उसने देखा कि बगैर रोशनी के ही कोठरी में हलका-सा प्रकाश हो रहा है और नूर का पुतला नानक वहाँ विराज रहा है । अदेश तथा पृथ्वी के नूरी देवता सेवा कर रहे हैं और वहाँ ठण्ड, सुहावना, रस तथा कीर्तन है । कालू एक बार तो मुर्च्छित-सा हो गया । उसी स्वाद की हिलोर उसे आ गई जिसकी पैंग वहाँ उसके पुत्र ने घुमा रखी थी । बेबश होकर उसने वहाँ दण्डवत की और बोला—मेरी रक्षा करो, मैं भूल में पड़ा हूँ । मेरे पर्दे दूर करो, मेरे पर्दे हटाओ । पर जब कालू दण्डवत कर हटा तो उस कोठरी में अँधेरा था । नानक, उसका पैदा किया हुआ पुत्र बालक नानक उस कोठरी में नहीं था । कालू ने कहा—क्या चक्कर है, यहाँ पर तो बालक है ही नहीं, मैं किस प्रकार देवताओं पार्षदों, राग-रंग तथा पुत्र को सिंहासन पर विराजित हुआ देख लूँ ? सब माया है,

सुनी हुई बातों का भुलावा है। मुझे ऐसे दारिद्री कालू के स्वप्न तो देखो स्वप्न भी एक आश्चर्यजनक माया है ।..... (सिर फेरकर) इसी प्रकार माया आ पड़ी है।

इस प्रकार सोचता हुआ कालू बाहर आया । पूछने लगा, 'नानक कहाँ है' तब किसी ने बताया कि बाहर खेतों में फिर रहा था । भुलावा दृढ़ हो गया । निद्रा खुली और फिर निद्रा आ गई । तपस्या का फल मिल गया पर अहम न कटा और उसका भय हिलकर फिर जम गया ।

२. प्रफुल्लता

सर्दी का मौसम चला गया । वसन्त ऋतु आई । तीन महीने में कोठरी से उलटे मुँह पड़ा नानक अब 'रंग हसहिं' की दशा में आ गया ।

अस बिधि सों जुग मास[1] बिताए ।
फिरन लगे पुन सहिज सुभाए ।।
रुचि सों खान पान को करिहीं ।
बात बिलोकि हरख उर धरिहीं ।।

[नानक प्रकाश]

दोनों समय रुचि के साथ चौके में बैठकर भोजन करते हैं । नये वस्त्र, जो माता-पिता ने चाव से बनवाकर दिये थे, पहनते हैं । बातचीत करते हैं । हँसते हैं। बाहरु-भीतर फिरते है । भाई बन्धुओं से जब मिलते हैं तो उनके साथ भली-भाँति बातचीत करते हैं । हँसते हैं, खिलखिलाते हैं, प्रसन्न होते हैं और बाहर फिरते हैं । माँ व बहन के साथ तथा आवश्यकता पड़ने पर पिता व चाचा के साथ भी बातचीत करते हैं । चेहरे का रंग एक आश्चर्यजनक आभा युक्त ललाई लिये हुए है । मुख पर चमक है । नेत्रों में एक ईश्वरीय आकर्षण तथा मीठी-मीठी दमक है । जब हँसते हैं । तो इस प्रकार की प्रसन्नता तथा आकर्षण का प्रभाव पड़ता है कि चित्त मोहित हो जाता है ।

सुन्दर सोभत बैस किशोरा ।
गिरा मृदुल सधुरी चित चोरा ।
ललित बिलोचन दल उतपल से ।[2]
तारे स्याम गंडकी सिल से ।।[3]

[नानक प्रकाश]

बहन नानकी को तो अत्यन्त प्रसन्न होना ही था, माता-पिता भी यह रंग देखकर प्रसन्न हो रहे हैं । राय बुलार को भी पता चला कि नानक अब प्रसन्नता की अवस्था में हैं । वे भी बहुत प्रसन्न हुए ।

सभी समझने लगे कि बालक नानक अब कुछ और हो गया है । कोई रोग था, जो दूर हो गया

१. पुरातन जन्म साखी में तीन मास लिखे हैं ।
२. कमल के पत्तों की भाँति ।
३. (आँखों के) तारे गण्डक (नामक नदी) के काले छोटे-छोटे पत्थरों की भाँति है ।

है, पर वे नानक अपने ही वचनों के अनुसार-

रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि ।
परवाह नाही किसै केरी बाझु सचे नाह ।।

[आसा दी वार महला १-२०]

के रंग वाले हैं अब जिस प्रसन्नता, प्रफुल्लता, आनन्द, विवोद के घर में हैं; वह भी वही ईश्वरीय रंग है; जो तीन मास उलटे मुँह पड़े रहकर प्राप्त किया था। वहाँ पर सदा एक ही बात, एक ही लगन है, पर माया में फँसा हुआ मन नहीं समझ सकता कि यह क्या रहस्य है ।

इन्हीं दिनों जिस प्रकार वसन्त प्रफुल्लित होती है, उसी प्रकार नानक निरंकारी अपनी किशोरावस्था में प्रफुल्लित होकर प्रकृति की शोभा बढ़ा रहे हैं । अब तो गाँव में अपनी बराबर की आयु वाले मित्रों के साथ भी किसी समय बोलते-चालते हैं । 'धन्य निरंकार' 'धन्य निरंकार' की मधुर ध्वनि किसी-किसी समय मुख से सुनाई देती हैं । तारों से जिस प्रकार प्रकाश निकलता है, ज़री के कपड़े पहनकर चलने-फिरने से जिस प्रकार तिल्ले के तार चमकते हैं उसी प्रकार जिधर जिस रंग में आप चलते-फिरते, बोलते-चालते हैं उधर प्रसन्नता की किरणें गिरती दीखती हैं । अन्य कोई व्यक्ति प्रसन्न हो तो केवल आप ही प्रसन्न होता है, पर उस बावला कहलाने वाले बालक के प्रसन्न चेहरे से प्रसन्नता मानो छूत-सी लगती है । जो काई भी निकट आकर दर्शन करता है, प्रसन्न होता है, प्रफुल्लित होता है, और सुखी होता है ।

३. माया

उनकी प्रफुल्लत के इस प्रभाव को एक बहन ही है जो पहचानती है । हाँ एक, नानकी ही है, जो यह पहचानती है कि भैया ऊँचे हैं और अदेश से आये हैं । हाँ, वह समझती है कि भैया जगत् के नहीं अपितु जगत् के परे के हैं । ईश्वर का प्यारा, ईश्वरीय ज्योति से भरपूर, ईश्वर-रूप है । पर माँ को तो पुत्र ही दिखाई देता है, जो रोग-ग्रस्त था, और अब स्वस्थ हो गया है । वह दान देती है– न्योछावर करती है और निर्धनों को बाँट देती है । पिता अब प्रसन्न है, कि अच्छा हुआ, पुत्र स्वस्थ हो गया है । अब कोई धन्धा व्यवसाय करेगा, गृहस्थ बनेगा, बिरादरी पंचायत में बैठेगा, कुल का नाम उज्जवल होगा, वृद्धावस्था में हमारी सेवा करेगा ! हाँ जी ! जिस समय नानक बालक अपने ईश्वरीय रंग की प्रफुल्लता में खिलखिलाकर सुगन्धि प्रसारित कर रहा था, उस समय मेहता कालू प्रसन्न हो रहा था कि अब पुत्र कहना मानकर कोई काम-धन्धा करेगा । मेहता ने मन में विचार किया कि पहले तो नानक, किसी व्यवसाय में नहीं पड़ा, इसका स्वभाव बाहर घूमने-फिरने का अधिक है, सो इसको किसी ऐसे कार्य में लगाया जाए कि घूमता-फिरता भी रहे और कार्य भी करता रहे । अतः उसके तीक्ष्ण व्यापारिक मन के नानक को बनजारा बनाने का विचार किया, कि बाहर विदेशों में जाकर माल, क्रय करे और अपने नगर में उसका विक्रय करे; नगर का माल बाहर अन्य देशों को ले जाए और उसका विक्रय करके घर लौटे। सौदागरी का विचार, अब कालू के मन में आ रहा था । वह स्वप्न, जो सत्य का रहस्य खोलने वाला था, कालू का माया के रूप में ही भासित हुआ और यह लोभ-लालच जो माया थी, उसको सत्य लग रहा था । अतः अब वह समय जो निरंकारी नानक पर ईश्वरीय यौवन का था, कालू को सुबुद्धि देने तथा पुत्र को अपने विचारानुसार

सुबुद्धि प्रदान करने का समय था, इसलिए उसने एक दिन पुत्र को पास बिठाकर और सिर पर हाथ फेरकर समझाना आरम्भ किया–

"हे नानक ! तु मेरा इकलौता पुत्र है । मेरी आँखों का प्रकाश, और जग का प्रकाश है । तेरी दशा अब तक वैरागियों की-सी रही है । अब प्रसन्नता की बात है कि तेरे मन में कुछ परिवर्तन आया है, और गृहस्थियों की भाँति हँसने-बोलने लगा है । मेरा ख्याल था कि तू बड़ा चतुर तथा कमाऊ पुत्र निकलेगा और संसार में मेरा तथा कुल का नाम निकलेगा । आज तक जितने यत्न मैंने तुझे इस ओर लगाने के लिए किये, वे सब निष्फल हो गए और मुझ-सहित सारा परिवार निराश हुआ, और संसार में हमारी चर्चा भी बहुत होती जा रही है । अब यदि तू कहना माने और पूर्वजों की रीति का पालन करे, तो मेरे जीते-जी कुछ काम-धन्धा सम्भाल ले ।"

इस प्रकार दो घड़ी महता कालू जी समझाते रहे और गुरू नानक जी चुप सुनते रहे कालू जी के मन का सारा रोष तथा गुस्सा-गिला निकाल लिया, और उनका हृदय शान्त हो गया तब श्री जगन्नाथ जी बोले–

'पिता जी ! आपके दुखी होने का मुझे दुःख है, पर मेरे वश की बात नहीं, जो कुछ होता है कहीं और से होता है । यदि आपको दुःख हुआ तो क्षमा कीजिये, और आगे के लिए आज्ञा कीजिये, जो हो सकेगा मैं करूँगा, पर मेरे अधीन कुछ नहीं, मैं स्वयं कुछ बगाडँगा नहीं ।" यह सुनकर कालू ने अनुभव किया कि पुत्र अब ठिकाने पर आ गया है, अब इसको किसी काम में फँसा देना चाहिए । उसने कहा –

'नानक ! मैं तुझको पाण्डेय, मुल्ला आदि के पास भेजकर और खेती आदि में लगाकर चाहता था कि तू सारे काम सीख जाए तो एक अलग गाँव बसा दूँ जिसको तू अपनी मेहनत से आबाद करे और शनैः-शनैः एक तगड़ा जमींदार बन जाए, पर वे सारी बातें तो रह गईं । अब बेटा ! ऐसा करो, कुछ रुपये ले जाओ और कोई सस्ता माल खरीद लो, तलवण्डी के भाव मैं तुझे बताये देता हूँ, और बाहर जो माल लाभदायक जान पड़े, क्रय करके यहाँ ले आओ, फिर उनको यहाँ पर लाकर बेच देना । इस प्रकार कुछ समय फिरते और हेराफेरी करते तुझे व्यापार का पता चल जाएगा और विदेशों मे जानकारी हो जाएगी, फिर तू शाह बनकर बड़ी दुकान बना लेना और आढ़त का कार्य चला लेना और शनैः-शनैः कोठीदार बन जाना । कुछ समय बाद तू सुःखी तथा सेठ बन जाएगा और हम सुखी तथा शान्त हृदय से संसार से विदा लेंगे ।

नानक जी—परन्तु पिता जी ! मुझे स्वयं तो व्यापार का कुछ पता नहीं ।

कालू जी—बेटा ! मैं तेरे साथ, घर का एक मोतबर व्यक्ति भेजूँगा, जो तुझे सब कुछ बता देगा । अभी तो मैं तुझे काम में नहीं डाल रहा, अभी तो केवल वाकफियत कराने का प्रयोजन है । इसीलिए रुपये भी कम दूँगा, यदि हानि भी हो, तो कम हो, और इधर निकट ही कहीं जाना, दूर न जाना । दो-चार बार इस प्रकार आने-जाने के पश्चात् धन भी अधिक लगाते चलेंगे और व्यापार की वृद्धि होती जाएगी । बेटा ! जैसे-जैसे कुछ कमाई होती जाए, अपनी कमाई को अलग रखते जाना और उसी के साथ अपनी पूँजी भी बढ़ाते जाना, मैं भी जो कुछ बन पड़ेगा, उस पूँजी में सम्मिलित करता जाऊँगा । तेरा सारा खर्च मैं उठाऊँगा, तू इस बात की चिन्ता मत करना । इस प्रकार के

उपदेश जगत-तारक जी ने सुनकर एक स्वास लेकर कहा, "अच्छा पिता जी ! जैसे आप कहें वैसे ही सही ।"

कालू ने अब अपने एक मोतबर व्यक्ति को साथ जाने के लिए तैयार किया । कहा जाता है कि इसका नाम बाल अथवा बाला था ।[१] बीस रुपये कालू ने प्रथम पूँजी के रूप में जगत् के स्वामी को दिये, अधिक न दिये कि कहीं व्यर्थ व्यय न कर डाले । फिर आज्ञा दी कि जाओ किसी विदेश से कोई खरा सौदा खरीद कर लाओ, जिससे यहाँ आकर कुछ धन उस पर अधिक प्राप्त हो सके ।

४. सौदागरी

श्री गुरू नानक देव जी तलवण्डी से अब व्यापार करने के लिये चल पड़े । बीस रुपये लेकर पिता की इच्छा तथा आज्ञा का पालन करने के हेतु चलते-चलते कोई बारह कोस रास्ता निकल गये । दूर से एक नगर दिखायी दिया । इसका नाम चूहड़काना था । बाले की इच्छा थी कि यहीं से कोई माल क्रय किया जाये, अतः इस नगर की ओर चल पड़े। अभी नगर के इस ओर ही थे कि वृक्षों के बीच एक शाला आ गई, जिसके बीच एक तलैया थी । गुरू नानक इस शाला की ओर चल पड़े, बाला भी साथ चला कि चलो शाला में से होकर ही निकल चलेंगे । जब उस शाला के भीतर गये तो क्या देखते हैं कि अनेकों तपस्वी साधु विभूति लगाये बैठे है । कोई धूनी तप रहा है, कोई जल में बैठा है; कोई वृक्ष के साथ लटक रहा है, कोई एक पाँव के सहारे खड़ा है, कोई बाँहें ऊँची करके बैठा है । इस कठिन तपों का कारण इनके मनों में परलोक के सुखों की इच्छा थी ।

इनका एक महन्त था जो तलैया के किनारे मृगछाला पर बैठा था । उसके सिर पर जटाएँ थी, वह विभूति भले और पद्मासन लगाये बैठा था । इसको देखकर बालक नानक कुछ देर तक खड़े रहे, फिर आगे बढ़कर महन्त जी के पास जा बैठे । महन्त ने उनकी ओर एक गम्भीर दृष्टि से देखा । अनके नेत्रों में कुछ प्रेम-सा भर आया ।

श्री गुरू जी उनसे बोले—है सन्त जी ! आप इस वन में बैठे हैं । सर्दी की ऋतु है, कपड़े नहीं पहने, अन्न भी कहीं दिखाई नहीं पड़ता, अपने-आपकी यह दशा आपने स्वयं ही की है या आपको पदार्थ मिलते नहीं इससे उदास होकर यहाँ आ बैठे हैं ?

महन्त ने उत्तर दिया—हे प्रतापी बालक ! मिलता सब कुछ है, तेरी भाँति हम भी किसी के लाल थे, घर-बार भी थे, हम सब कुछ छोड़ आये हैं, यह विचार कर कि हम, जगत के पदार्थ तथा यह शरीर नाशवान है और हम अगले परलोक के लिये सुख इकट्ठा करें सो इस भयानक माया से दूर रहकर वनों में बैठकर तपस्या करते हैं, उपवास करते हैं, किसी स्थान पर ठहरते नहीं, कि कहीं माया का मोह न पड़ जाय। मन माया से दूर रहे, शरीर तपस्या करता रहे, जिससे जीवन के दिन निर्मल व्यतीत हो जाएँ, और आगे चलकर परम सुख की प्राप्ति हो ।

गुरू नानक—सन्त जी ! आप कितने दिनों से उपवास कर रहे हैं ?

---

१. भाई गुरुदास ने श्री गुरू नानक देव के सिक्खों [शिष्यो] का जो व्योरा बताया है उसमें 'बाल' शब्द आया है परन्तु विचारवान इसको एक सिक्ख का नाम मानते हैं ।

महन्त—हे युवराज ! हमारे दिनों की मत पूछो, हम माँगने वाले साधू नहीं है । हमारी वृत्ति आकाशी है । हम अपने तपों में रहते हैं । जब कभी ईश्वर प्रेरणा देकर हमारे भोजन के लिए कुछ भेज दे या स्वयं प्रसन्नता से कोई हमें दे जाए तो खा लेते हैं, अन्यथा उपवास करके पत्ते आदि खाकर निर्वाह कर लेते हैं । आज हम सात दिनों से अन्न से वंचित हैं ।

यह सुनकर गुरू नानक जी का जगत प्रेम से भरा हुआ हृदय दया से भर आया । उन्होंने सोचा कि रुपये तो पास हैं ही और ये सब ईश्वर की आशा रखने वाले भूखे हैं, क्यों न इनको भोजन कराया जाये ?

गुरू जी—सन्त जी ! आपका शुभ नाम !

सन्त—मेरा नाम सन्त रेणु है और इस सन्तमंडली का मैं महन्त हूँ, परन्तु किसका सन्त और किसका महन्त, मुक्ति के मार्ग के सभी पथिक हैं ।

गुरू जी—सन्त जी ! यदि आपको भोजन ला दिया जाए तो क्या आप खा लेंगे ?

सन्त—आप अभी कुमार हैं और माता-पिता के अधीन होंगे, आप हमारी चिन्ता न करें।

गुरू जी का हृदय इस समय दया की लहरों से लहरा रहा था । यह विचार कि वे ईश्वर के जीव हैं और उसकी आशा रखकर सात दिनों से भूखे हैं, और मेरे पास रुपये हैं जिनसे इनकी भूख की पीड़ा दूर की जा सकती है, गुरू नानक देव जी इसको सहन नहीं कर सकते थे । कोमल हृदय वाले गुरू जी के लिये यह कठिन था कि भूखों को भूखा छोड़कर उनके निकट से कठोर हृदय करके चले जाएँ ।

भूख एक ऐसा दुःख है, जिसकी पीड़ा भरपेट, खाने वाले नहीं जान सकते । गुरू जी ने वाणी में स्वयं चार प्रकार के महान कष्टों का वर्णन किया है–

दुखु विछोड़ा इकु दुखु भूख ।।
इकु दुखु सकतवार जमदूत ।।
इकु दुखु रोगु लगै तनि धाइ ।।
वैद न भोले दारू लाइ ।।'

[मलार महला १ घर २-२-२७]

इस महा दुःख में एक जमात को देख कर और गुरू नानक जी के पास बीस रुपये हों; रुपये रह जायँ और दुःख हरने और संकट दूर करने में खर्च न हो जायँ यह बात उस दीनबन्धु के स्वभाव, उसकी आत्मा तथा मन की रचना के विपरीत थी । तुरन्त ही रुपये निकालकर आगे रख दिए और कहा, सन्त जी ! यह धन मेरे पास इस समय है, आप इसका उपयोग कीजिए और सब सन्तों को भोजन कराइये । महन्त ने बड़ी गम्भीरता से कहा, "श्रीमान जी !" आपकी अवस्था तो छोटी है, पर हृदय बड़ा विशाल है ।.... यह धन आपके पिता ने किसी काम के लिए दिया होगा । हमारी चिन्ता तो भगवान करेगा । आप इस धन को इस तरह व्यय करके किसी कष्ट में न पड़ जाना ।"

गुरू जी के नेत्रों में से सोच की एक लहर गुजरी पर फिर मुस्करा कर और करुण रस में

---

१. वास्तव में ये चार दुःख हैं—विरह, भुख, मृत्यु और रोग ।

देखकर वह और चौंका । फिर थोड़ी देर रुक कर बोला, "अच्छा जी ! यदि आपकी यही इच्छा है तो चांदी से हम को क्या करना है, भोजन ला दो । यह सुनकर श्री गुरू जी दास को साथ लेकर चूहड़काणें गाँव में गये और दूध, घी, आटा, दाल, भाजी आदि सारी रसद ले आये।" आपके चले जाने के पश्चात महन्त नेत्र मूँदकर समाधि में लीन हो गया । श्री गुरू जी की मनोहर मुर्ति उसके नेत्रों के आगे टिक गई थी । ध्यान के नेत्रों में उसको श्री गुरू जी महान दिव्य दृष्टिगत हुए । उनका तेज असह्य था, गुप्त प्रकट महापुरुष उनके चरण कमलों पर पड़े दिखाई दिये, 'धन्य निरंकार ! ध न्य निरंकार' की ध्वनियाँ उनके रोम-रोम में से सुनाई देने लगीं । जब गुरू जी रसद लेकर लौटे तब महन्त के नेत्र खुले, और उसकी दृष्टि गुरू जी की ओर और ही रंग की हो गई । उसकी दृष्टि उन पर टिकती ही नहीं थी, और तेज की झलक असह्य हो रही थी। फिर महन्त ने कहा– "आप अब प्रस्थान करो । साधू स्वयं रसोई तैयार करके भोजन कर लेंगे ।" श्री गुरू जी यह बात सुनकर चल पड़े । एक सन्त ने महन्त जी से पूछा कि यह बालक बड़ा श्रद्धावान, वैराग्यवान, तथा मीठा बोलने वाला था । आपसे उसने कितना प्रेम किया। आपने उसको इतनी जल्दी जाने की आज्ञा क्यों दी ? इस प्रकार के अधिकारी जन ही तो मुक्ति के अधिकारी होते हैं–

'सुन महन्त बोल्यो बर बानी :–
इह को परम पुरुख सुखदानी ।
कलावान ज्ञानी गुन खानी ।
दुरयो रहै गति परहि न जानी ।
भयो असहि मुझ तेज प्रभाऊ ।
यांते दीनी जान रजाऊ ।.....
इहि करतार पठयो हम जानै ।
किधों सरीर धार करतारा ।
आन लीन सुध, दीन अहारा ।

[नानक प्रकाश]

कहि महन्त— 'हम हित निरधारा ।
आयो आप ईहां करतारा ।।३।।
सीखाया लेण उचित थो ताहू ।
सेव करावन जोग न आहू ।
याते दीन बिदा बिन देरा ।
सह्यो न जात तेज तिन केरा ।'

[गुरू नानक सूरज प्रकाश]

उस विश्वम्भर वाहिगुरू के अंश, उस पालनहार करतार के स्वरूप[1], उस दाता की ज्योति श्री गुरू नानक देव जी अपने पालनहार विरद को सँभालते हुए सन्तों से विदा हुए तथा सन्त-महन्त इस श्रद्धा और भाव से भरे भोजन को तैयार करने तथा भोजन करने के उद्यम में लग गये ।

५. खेद

गुरू जी चूहड़काणे से वापस लौटे, दास भी उनके साथ लौटा, दोनों धीरे-धीरे जा रहे हैं । काफी समय तक तो श्री गुरू जी अपने किसी रंग में सात दिनों के भूखे साधुओं को खाना खिलाने से उत्पन्न चाव में चलते गये, पर जब आधा मार्ग पार कर लिया तब इस मानव-शरीर के धर्म के जागृति हुई और विचार आया, कि हम कहाँ जा रहे हैं ? घर जा रहे हैं और कौन-से घर जा रहे हैं । जिस घर ने व्यापार करने के लिये भेजा था और रुपये बढ़ाने के लिये दिये थे, और वे तो भूखों की भूख मिटाने में ही व्यय हो गये हैं, अब न पास में मूलधन ही है और न लाभ, घर वालों को क्या मुँह दिखाएँगे ? दास से कहने लगे, कि घर जाकर क्या कहेंगे ? पिता जी नाराज़ होंगे । क्या वे कभी मानेंगे कि हमने खरा सौदा किया है ? दास को जो पहले से ही मेहता कालू से डर रहा था यह सुनकर और अधिक भयभीत हुआ और कहने लगा-श्री जी? मेरा कुछ दोष नहीं, जब आप देने लगे थे तो मैंने संकेत से मना किया था; जब नगर में रसद लेने गये, तब भी मैंने मना किया था । फिर मैं आपकी आज्ञा में हूँ और आपकी आज्ञा का पालन करना था । अब आप चिन्ता क्यों करते हैं ? जो कुछ होगा, सहन कर लेना, पर मैं तो दास हूँ; मेरी रक्षा करना, मेरे सिर दोष न आवे कि मैंने रुपये नष्ट कराये हैं । यह सुनकर गुरू जी चुप हो गये । इस समय जगत्-रक्षक अपने अपने कौतुकी चोज़ में चिन्तातुर है । आय ! यह कठोर संसार बीस रुपये आगे रखकर जगत् के स्वामी की चिन्ता दूर नहीं कर सकता ? बीस रुपये जो कैसे शुभ स्थान पर व्यय हुए हैं ? हाँ, शुभ कार्य में धन व्यय करके माता-पिता का इकलौता पुत्र उनकी नाराजी के भय से डर रहा है । ऐसा है इस जगत का मन ।

शनैः-शनेः चलते चलते तलवण्डी आ गई । बाला तो विदा लेकर सीधा अपने घर चला गया और श्री गुरू जी का उस सृष्टि के सिरजनहार के भेजे हुए महापुरुष का साहस न हो कि घर जाय, अतः नगर के बाहर एक सूखे ताल पर बैठ गये । एक बड़े पुराने छायादार वृक्ष की ओट में छिप गये ।[2] वे थके हुए थे, चिन्ता थी, आराम, आदर तथा जलपान का समय था परन्तु पिता जी की नाराज़गी का खयाल आ रहा था । अतः वहाँ पर बैठे-बैठे ध्यानलीन हो गये । रात्रि व्यतीत हो गई; अगले दिन, बाले के घर पहुँचने की खबर कालू के कानों तक पहुँच गई । चिन्ता पड़ गई कि मेरा पुत्र नानक किधर गया ? दास क्यों मेरे पास नहीं आया ? नानक साथ क्यों नहीं आया ? क्या कोई चोर मिल गया ? नानक कहीं रूठ गया है या खो गया है ? हज़ारों चिन्ताएँ थीं जो कालू पर एक

१. गुरू नानक देव गोविन्द रूप ।

[बसंत महला ५]

२. गुरू जी के इस स्थान को, जो कि अब तक स्थित है, "तंबू साहिब" कहते हैं ।

दम आ पड़ीं । शीघ्रता से बाले को बुलवाया और सारा हाल पूछा । उसने सारी बात खोलकर सुना दी और अपने पर क्रोध से बचने के लिये यह भी कह दिया कि मैंने तो मना किया था पर आख़िर मैं था तो दास ही, मैं उनको ज़बरदस्ती तो नहीं रोक सकता था, अतः जो उनकी मर्जी हुई उन्होंने किया । करने के पश्चात् तो उनको भी आपके क्रोध की चिन्ता हो गई थी इसीलिए घर नहीं आये । बाहर सूखे ताल पर बैठ गये हैं यह सुनकर महता जी के क्रोध की ज्वाला भड़क उठी ! क्यों न भड़के ? हे जगत, तेरे बीच ऊँचे मन वालों को स्थान नहीं ? ऊँची भावनाओं वालों की कदर नहीं । हाय व्यवहार, हाय व्यापारिक दृष्टि ! इसके कारण ही यह जगत तुझे कभी ऊँचा नहीं देखने देता । सारा संसार वणिक-वृत्ति में हैं । माया तथा माया के सुख अपने लिये । सुख देने में सुख नहीं दिखता । किसी को ऊँचे जीवन की सूझ नहीं, ऊँचे रंग-रस की चेतना नहीं । जिनको होती है, उनका जगत शत्रु होता है ।

बाले को साथ लेकर श्री कालूजी गुरू नानक जी को खोजने के लिये निकले । जिस रंग अथवा जिस क्रोध में कालू चला, उनका ज्ञान सबसे अधिक उनकी पत्नी तृप्ता जी को था । हाँ, माता तृप्ता जी भी, पिता की भाँति पुत्र के इस नवीन कोष के कारण क्रोधित थीं, पर माँ का हृदय आखिर माँ का ही हृदय होता है । उसके कलेजे ने दिलगीरी के साथ-साथ यह कसक भी खाई कि आज मेरे बच्चे का कल्याण नहीं, वह माता-माता के हृदय वाली माता द्रवीभूत हो गई, शीघ्रता से भाग कर गई और बेटी से बोली, जाओ बेटी ! पिता जी के पीछे-पीछे जाओ और भाई की रक्षा करो । पिता के क्रोध से अपने प्यारे भाई को बचाओ । इस समय तू ही है, जो अपने पिता के भड़के हुए क्रोध को शान्त कर सकती है । माँ बलिहारी जाती है, भागकर जा ।

बावली-सी हुई माता बेटी को भेजकर पछताने लगी, कि बिटिया को घर से अकेली क्यों भेजा, फिर उसके पीछे दौलताँ दासी को भेजा, फिर घबराकर एक और दास उसके पीछे भेजा, कि शीघ्रता से बिटिया के साथ चले जाओ । उधर कालू जी, वही कालू जी, जो स्वप्न में देख चुके थे कि पुत्र उनकी तपस्या के फलस्वरूप मिले वरदान की पूर्ति का कारण है, वही कालू जी जो कि इकलौते पुत्र के पिता हैं, और उसको सुखी देखना चाहते हैं, आज क्रोध से भरकर चले जा रहे हैं । जाते-जाते तालाब पर बैठे पाया वृक्ष की छाया में वह जगत का नूर आँखें मूँद साईं के रंग में राँता बैठा था । चेहरा लाल गुलाब, मस्तक दमक रहा है, पर हे जगत् ! तू कालू होकर आया है । आह ! क्रोध से बाँह खींचकर खड़ा कर दिया :– 'अरे कपूत, अब तू समाधि लगाकर बैठा है, घर उजाड़ू ! बता रुपये कहाँ हैं ? बता कहाँ है व्यापार ? कहाँ हैं तेरे साधु के वचन ? जी, जैसे कहोगे करूँगा ? हैं, अब बोलता भी नहीं ! पिता बेरहमी से बाँह खींचता है, श्री गुरू जी शीश झुकाए बोलते तक नहीं । क्रोध की ज्वाला और भड़कती है; कालू की दाईं बाँह ऊपर उठती है और गुरू जी की ईश्वरीय जलालवाल बाईं गाल पर ज़ोर का थप्पड़ लगाता है। फिर कालू का, नहीं हे जगत ! हे कठोर बेरहम जगत, हाँ, तेरा बायाँ हाथ उठाता है और ज़ोर से दाईं गाल पर थप्पड़ आ लगता है । जैसे ही कालू एक थप्पड़ मारता है, दूसरा मारने के लिये उसका क्रोध और अधिक बढ़ता है । जगत का प्रकाश

चुप मार खा रहा है, नेत्रों में से छोटे-छोटे अश्रु गिरते हैं, पर अधरों पर मूकता है और शरीर अचल खड़ा है ।

इस मूर्ति की ओर देखो । किशोरावस्था कोमल लाड़ला शरीर, अन्तर में ईश्वरीय नर, आकाश-पृथ्वी की ज्योति, जगत की भूख का दुख दूर करने के अपराध में अपराधी बनकर खड़ा है । कैसे अचल खड़ा है, कैसा मूक है, कैसा सिर झुकाये है, कैसे नेत्रों से मोती निकल कर गिर रहे हैं, कैसे तमाचे-पर-तमाचे पड़ रहे हैं, कैसे एक हाथ दाईं और फिर बाईं और उठ-उठ कर पड़ता है ।

हा जगत ! हा कालू ! यदि आज तू कहे कि मेरे एक रुपये के बदले एक-एक लाख रुपया दो तो इस बालक इस दोषी और अपराधी बनाकर खड़े किये गये बालक नानक के सिक्ख और पन्थ तेरे आगे रखकर कहें, "हे कालू ! यह ले बीस की जगह बीस लाख, और हमारे अदेशी नूर की और कड़ी आँख से न देख, पर हाय बाबा कालू ! आज मुझे नहीं दीख रहा कि तू इस पर नाराज हो रहा और गुस्सा कर रहा है ? हाँ ! तुम्हें भी आज से दस-बीस वर्ष पश्चात— इसी के इस समय के तेरे माने हुए अपराधी के हाथों अपना कल्याण माँगना है । इसी को तेरी सद्‌गति तथा उद्धार करना है, पर हाय माया, हाय जगत की कठोरता, हाय जगत ! के अन्धकार ! इसको समय से पहले और समय पर नहीं दीख पड़ता, समय व्यतीत होने पर ही इसकी आँख खुलती है । उस समय कालू सच्चा है, अपने मन में महा दुखी है और नानक को महा दुखदायी और अयोग्य समझ रहा है । कालू ! कितने पुत्र हैं जो कुल की रीति के अनुसार चलते हैं, जो पिता की रीति अनुसार चलकर आजीविका कमाते हैं और घर-गृहस्थी चलाते हैं। मान पैदा करते हैं । धन-संचय करके पिता की भाँति इकट्ठा करके मर जाते हैं ? इसका उत्तर होगा, सारे । बता कितने पुत्र हैं जो इस प्रथा को तोड़कर तेरे पुत्र नानक की भाँति काम करते हैं ? बता नानक के समय अथवा उसके पश्चात् कुल की रीति को तोड़ने वाले कितने और हुए हैं ? पर उस समय न तो कालू को ही सूझा और न आज किसी को सूझ सकती है, और न आशा ही है कि यह सबक जगत कभी सीखेगा । परमेश्वर के प्यारों के लिये इस जगत के प्रबन्ध में कहीं कोई स्थान नहीं । न माता, न पिता, न भाई-बन्धु, न राजा कोई भी सत्संगी, सत्पुरुष की कदर नहीं करता। सभी लोग सत्संगी और सत्यपुरुष को कड़ी आँख तथा शक़ की दृष्टि से देखते हैं। निन्दा, ईर्ष्या तथा अत्याचार के साथ उसका आदर करते हैं मज़ाक के साथ उसकी सेवा करते हैं।

हे कठोर जगत ! बीस रुपये के बदले आज जो सारे संसार में सुलह का अवतार, प्यार का देवता अथवा ईश्वरीय नूर माना गया है, वह बीस रुपयों के बदले थप्पड़ों से पीटा जा रहा है। कवि सन्तोख सिंह लिखते हैं :-

सोहति पर गए नील कपोला ।
जिओं उत्पल पर अलिन अडोला ।।[1]

[नानक प्रकाश]

---

१. गालों पर नील पड़ गये जिस प्रकार कमल पर भंवरे निश्चल बैठ जाते हैं ।

गालों पर नीले निशान पड़ गये, ऐसे काले रंग के जैसे कमल पर भँवरा बैठा हो । अभी कालू रुका नहीं, अभी कालू के बीस रुपयों का बदला नहीं मिला ! हे जगत ! तेरे बीस रुपये कितने मँहगे हैं ?

इस दशा में भाई की प्यारी तकि उसको पहचानने वाली नानकी एकदम दौड़ती हुई आ पहुँची, उससे पहले भी कई तमाशा देखने वाले वहाँ पर पहुच चुके थे । इस कठोर जगत, इस तमाशबीन संसार का कोई व्यक्ति जगत-रक्षक नानक पर दया नहीं कर रहा था । इन कठोर व्यक्तियों की भीड़ को चीरकर नानकी आगे आई और आते ही बावली होकर पिता से चिपट गई और अङ्क में भरकर अलग हटा ले गई, 'ना पिता जी ! भैया निर्दोष हैं, इनको न पीटो । ना पिता जी इनको न पीटो ! ईश्वर के लिए भैया को मत पीटो ।'

कालू का क्रोध न जाने कहाँ तक बढ़ जाता, और यदि कोई दूसरा छुड़ाने के लिये आगे बढ़ता तो न जाने क्या होता, पर उस देवी की शान्त पकड़ ने उस क्रोध की ज्वाला को शान्त किया । अब लोग भी कालू को समझाने लगे । क्यों न समझायें ? उस देवी ने प्रवाह जो बदल दिया था । चार आदमी आगे बढ़े उन्होंने कालू को पकड़ लिया, कि और आगे न बढ़े । बहन ने अब पिता को छोड़कर भैया को अङ्ग से लगा लिया उस कष्ट के समय भी भैया के अङ्ग मिलन के साथ नानकी के रोम-रोम में से ईश्वरीय झन्नाहट शुरू हो गई और एक ईश्वरीय हिलोर आ गई ।

नानकी ने समझा कि वह उचित समय पर आई थी और भाई को अभी थप्पड़ नहीं लगा था और उसने पिता का हाथ पकड़ लिया है, पर अब जब भाई के नेत्रों में से जल गिरता देखा और कपोलों पर नीलिमा देखी तो गश खाकर गिर पड़ी । घर की दासी ने उसको सम्भाला । जब उसको होश आया तो फिर भाई से चिपट और साथ लेकर घर की ओर चल पड़ी । चलती जा रही है पर आँखों से अश्रु निकल रहे हैं, दासी तथा टहलनी साथ हैं, दस अन्य व्यक्ति भी पीछे-पीछे आ रहे हैं । दस व्यक्ति कालू को समझा रहे हैं और कुएँ की ओर ले जा रहे हैं । उधर बावली हुई माँ को घर में चैन नहीं । बेटी, दासी, दास भेजकर भी चैन नहीं, बेबस होकर के द्वार खुले छोड़कर चली आ रही है, गाँव के बाहर आई ही थी कि पुत्र मिला । मूकता की मूर्ति, शान्त, आँसू सूख चुके हैं, पर गालों पर नील देखकर माँ की चीख निकल गई । कसकर पुत्र को गले से लगा लिया, सिर पर हाथ फेरा, घर ले आई । माता न्योछावर होती है, नेत्र भरती है, बलैयाँ लेती है, प्यार करती है, पर हे माँ ! जो गालों पर नील पड़ गये हैं, जो पीड़ा उन कमल से कोमल गालों को हो रही है वह पीड़ा है, वह पीड़ा अभी भी है । माँ अब यह भी कह रही है, ''मेरे लाल ! तुम अब तनिक भी चिन्ता न करो, शान्त होकर घर पर ही बैठो, तुम्हें काम-काज के लिये आज से कोई कुछ नहीं कहेगा, तुम अब हसो, खुश हो के, सुखी हो के, जिस प्रकार चाहो रहो । इस प्रकार माँ न्यौछावर हो रही है । पर उस अदेशी ईश्वरीय नूर के गाल अभी नीले हैं, उनमें संसार के दुखों को दूर करने के पीड़ा है, हाँ नयन अभी जगत को सुखी करने के लिये सजल हैं ।

६. प्यार

उधर किसी ने राय बुलार को जाकर बताया कि आज नानक को पीटा गया है, जिससे गाल नीले स्याह हो रहे हैं, और पिटाई भी उनके पिता ने ही की है, क्योंकि नानक वाणिज्य के लिये जो बीस रुपये ले गया था, वे उसने चूहड़काणे में भूखे साधुओं को खिला दियो हैं। यह बात सुनकर राय का हृदय भर आया; उसी समय कालू के घर नानक को लिवा लाने के लिये कुछ व्यक्ति भेजे, जो वह स्वयं देख ले और सारा समाचार स्वयं सुन ले । तब आदमी श्री नानक जी को लेने गये । राय जी इस समय बैठक में बैठे थे और इस समय कोई भी व्यक्ति उन्हें आकर भेंट कर सकता था । लोग आते गये और मार को बढ़ा-बढ़ाकर कथा सुनाते गये । तब राय के मन में भी क्रोध भर आया, होंठ फड़क उठे और लम्बा स्वाँस लेकर बोला, "मेरे नगर में बड़ा उपद्रव होता है, जो कलावान पर अत्याचार होता है । वह राजा अभागा है जिसके नगर में कलावान पर जुल्म हो । वह राजा महा अभागा है जिसके राज में कलावान की कद्र नहीं होती । श्री गुरू जी इस खेद वाले चोज में से निकले, राय के बुलाए हुए राय के पास आ पहुँचे । देखते ही राय पलंग पर से उठ खड़ा हुआ और प्यार से बिह्वल होकर जगत के नाथ को अपने आलिंगन में ले लिया और गालों को देखकर वह राठौर शूरवीर भी रो पड़ा । प्यार के वचन कहना चाहता था, पर कण्ठ गद्-गद् होकर रुक गया । अपनी छाती से लगाता जाता था और रोता जाता था । राय गालों की ओर देखता है, प्यार करता है और फिर नेत्र भर आते हैं । काफी समय तक राय ने इस प्रकार प्यार में द्रवित होकर अपने आपको सम्भाला और पलंग पर सिरहाने बैठाकर कहा, "हे ईश्वर के भेजे हुए ! क्षमा करो, मेरे नगर में आप पर अत्याचार हुआ है, आप ईश्वर के प्यारे, क्षमा तथा प्यार के रूप हैं, मैं आपका दास हूँ, मेरे ऊपर कृपा करो ।" फिर सिर पर प्यार करता है, और चरणों की ओर हाथ बढ़ाता है । कभी तो पितृवत् प्यार करता है; कभी दास-भावना में भरकर भक्त की भाँति चरणों पर दृष्टि जमाता है । कभी गालों के नील देखता है, कभी उनके नेत्रों में शान्त रस की दमक देखता है । वे परमेश्वर के प्यारे अब तक एकदम चुप थे । वे तो एक शान्त मोहन मूर्ति थे, और राय देख-देखकर अनेक प्रकार की प्रेम-तरंगों के कई तरह के रंगों तथा भावों में आकर द्रवीभूत हो रहा था । इसी राय के भेजे हुए व्यक्ति कालू को भी लिवाकर ले आये । अब राय का ध्यान उस की ओर हो गया । फटकार तो कालू पर बहुत क्रोध-भरी पड़नी थी, पर राय का अंतस् नानक के प्रेम से द्रवित हो जाने के कारण कालू जी को फटकार भी नर्म-नर्म शब्दों में पड़ी :–

"कालू ! तुमने यह क्या नवीन प्रकार का कार्य किया है, ईश्वर के प्यारे को तुमने मेरे नगर में पीटा है, और इस अपराध का दोषी हमें भी बना दिया है कालू ! वह राजा भी दण्ड का अधिकारी होता है जिसकी नगरी में कलावान दुख पावे ! बीस रुपये मेरे घर से ले जाते, बीस रुपये क्या थे ? इस लाल को तुमने रजतपण के लिये पीटा ! कालू ! तुम बड़े कठोर हो । लोगों की ही चिन्ता करते । इकलौता पुत्र, चन्द्रमा से भी अधिक सुन्दर, उसको पीटना, बताओ तुम्हारा प्यार और मोह कहाँ गया ? न तुमने आगे की सोची और न यहाँ की । यह तो खुदा का अवतार है, पैगम्बर

है, कौन जानता है ? मुझ पर धिक्कार है, जो मैं मुसलमान हूँ, अन्यथा नानक को आज से अपने पास ही रखता और तुम्हें इसका रोम तक न देखने देता, पर तुम हिन्दु हो और मैं नानक को अपने पास रखूँ तो तुम्हारी निन्दा होगी इसलिए मैं अनुपयुक्त हूँ ।" यह कहते ही राय के नेत्र भर आये, और अश्रुओं की झड़ी लग गई, "देखो कालू, तुम होश में आओ ! सम्भलो ।"

कालू—राय जी ! आप बड़े हैं और में आपका कारिन्दा हूँ, मेरे लिये बोलना अनुचित है, आप देखो तो सही। जब से इसने होश सम्हाला है, इसने कितनी बार घर उजाड़ा है । अभी का समाचार सुनो । मैंने वाणिज्य करने के लिये भेजा था, इसने जाते ही पूँजी फकीरों को खिला दी । यदि कभी कुछ कमाई कर लाता तो चार पैसे उसमें से फकीरों को भी दे आता, तो मुझे किस लिये खेद होता । इसने तो जाते ही सब फकीरों को खिला दिया । मुझे लोग कहते है, "मैं लोभी हूँ, रुपयों के लिये रोता हूँ । मैंने इसको खरा सौदा करने के लिये भेजा था, फकीरों में बाँटने के लिये तो नहीं भेजा था ! मैं रोता भी हूँ, पर मैं तो वर्तमान के लिये नहीं भविष्य के लिये रोता हूँ ? सयाना होने का आया पर इसने कोई शिक्षा ग्रहण न की । जीवन किस प्रकार व्यतीत करेगा, परिवार का निर्वाह किस प्रकार करेगा, घर-गृहस्थी कैसे चलायेगा, अतः मैंने इसको सुबुद्धि देने के लिए थप्पड़ लगाये हैं, तो क्या हुआ ? माता-पिता की मार तो प्यार के समान हुआ करती है । फिर देखो यह हानि करके आया तो बाहर छिपकर बैठा रहा, हमें पता तक नहीं चला, अब आप ही बताइये कि क्रोध आयेगा कि नहीं ?

राय—कालू ! गुस्सा चाहे आये चाहे न आये, पर इस ईश्वरीय नूर पर क्रोध नहीं आना चाहिये । जब आए प्यार आए (फिर रो पड़ा) । हम तो करामातें देख-देखकर तृप्त हो गये हैं, जो नानक खुदा (ईश्वर) का भेजा हुआ हमारे यहाँ आया है । कालू, यह कोई महान वस्तु है । कालू जो तुम कहते हो कि इसके कोई खरा सौदा करने के लिये भेजा था, तो तुम ही सोचो कि इसने क्या बिगाड़ किया है ? जो सौदा नानक ने किया है उससे अधिक दूसरा खरा सौदा और क्या हो सकता है, ईश्वर के सात दिनों के भूखे जीवों को खाना खिलाया 'दह दुनीया संत्तर आखर' इसी सच्चे सौदे में होते जायें, यही खरा सौदा था, जो नानक ने किया ।[१]

अब राय बुलार ने दासी भेजकर अपनी रानी खोखरां से रुपये मँगवाए और कालू के आगे रखकर कहा—यह लो रुपये, जिनके लिये तुमने हमारी नगरी में उपद्रव किया है ।

इस समय कालू जी लज्जित हुए । आँखें मूँद लीं । क्रोध अब उतर चुका था । कुछ राय के गुरू नानक जी को अवतार कहने के सम्बन्ध में विचार कर रहा था । नेत्र मूँदने के पश्चात् चुप होता-होता समाधि स्थित-सा हो गया । इस समाधि में फिर उसने वही स्वप्न वाली झलक देखी, जो अपने तप करने के समय देखी थी, और कुछ इस प्रकार भासित हुआ कि मानो राय उस साधु का रूप धारण करके आया है, जो उस समय इसको शिक्षक बनकर शिक्षा देता था, कि भक्ति करनी

१. चूहड़कारण गाँव अब तक आबाद है, जिस स्थान पर गुरू जी ने साधुओं को भोजन कराया था, और आप बैठे थे, उनकी स्मृति में अब तक गुरुद्वारा है, और अनका नाम भी अब तक 'खरा सौदा' ही है ।

व्यावहारिक मोह में हूँ तभी मुझे पहचान नहीं और यह पहचानता है । यह झलक कालू को एक क्षण में दिखाई पड़ी । नेत्र खुल गए तो क्या देखता है कि यह तो राय बुलार का बैठक है और दस-पाँच व्यक्ति वहाँ बैठे हैं और सब उनको बुरा समझ रहे हैं । कालू के झलक देखी, पर हे भगवान ! तूम्हारी माया तो प्रबल है, फिर माया पड़ गई, यह नानक कहाँ से ईश्वरीय रूप हो सकता है, जो-कुछ कहता है, उसके अनुसार भी नहीं चलता । कह गया था कि बिगाड़ नहीं करूँगा, फिर कर आया है । उस विचार एवं सांसारिक विचार के कारण कालू जी के उस अनुमान में तुल रही नानक की नवीन अयोग्यता के विचार ने सत्य को आँखों से ओझल कर दिया, पर एक बात अवश्य दृष्टिगत होती थी, कि मैं राय के दरबार में अन्य लोगों के साथ चटाई पर बैठा हूँ, पर मेरे निकम्मे एवं अयोग्य पुत्र को, राय ने पलंग पर सिरहाने बिठाया है और आप पैरों की ओर बैठा है । इस बात के कारण इसको विचार हुआ कि पुत्र की बड़ाई है । पर फिर माया आ पड़ी कि नहीं, राय कोमल हृदय वाला व्यक्ति है, वैसे ही करामाती समझकर वहमी हो रहा है। इस प्रकार कालू जी मन पर पर्दा पड़ा ही रहा ।

मेहता कालू जी ने रुपये लेने से इन्कार कर दिया । राय ने कहा – "नानक तुम्हारा पुत्र है और हमको इसका ऋण चुकाना है, तुम ले लो !" तब कालू जी ते मुस्कराकर कहा, "इसने तो व्यर्थ नष्ट करना ही सीखा है कमाई का तो इसको पता तक ही नहीं, आपने इससे कब उधार दिला था ?" तब राय फिर प्यार अथवा सम्मान के साथ कहने लगा–

सुन कालू तुझको सुध नाहीं ।
माया जिती पिखहिं जग माहीं ।
सभ वरतहि नानक अनुसारी ।
पति रज़ाइ ज्यों पतिब्रत नारी ।
संपत सरब तुरंग मतंगा ।
स्यंदन औं सुखपाल सुरंगा ।
और जि मुझ घर सभ वडिआई ।
कमल नैन करुना ते पाई ।।

[नानक प्रकाश]

कालू यह सुनकर मुस्कराया, वही मुस्कराहट जो संसार को सदा से आती रही है । प्रतीति और भरोसे को संसार मज़ाक की मुस्कराहट के साथ देखता है। धन सत्य, पदार्थ सत्य, माल सत्य, सम्मान सत्य, पद सत्य, मनसब सत्य, लोकाचार सत्य पर श्रद्धा और भरोसा व्यंग्य भरी मुस्कराहट के भागी !!!

७. गीत

माता तृप्ता जी के पड़ोस की एक स्त्री बाहर से भागकर शीघ्रता से आई और कहने लगी :–

री माता तृप्ता
पुत्र को जाओ जगाओ
पाँव पर पाँव धर सो रहा है
वन की सघन छाँह में
भैंसें खेतों में जा पड़ीं !
खा रही हैं भर चाव ।

माता तृप्ता (गोली को)

जा न दोलते, दौड़ी जा तू
नानक को दे जगा
भरना न पड़ जाय कहीं उजाड़ा
जल्दी जाकर उसे उठा दे

नानकी (माँ को)

साँई के रंग रांता है वीरन
सोया नहीं जाऊँ बलिहारी
रक्षक माता उसका ईश्वर
विघ्न को स्थान नहीं है कोई

(दोलताँ को)

डर में भगो न इतनी दोलते
मत घबड़ाकर इतनी भागो
भाई के प्यारे से भाई को विछोड़ मत
अन्तर मत डालो जो मिलकर एक हो गये हैं
सरल है तोड़ना, जोड़ना कठिन है पर
मिले हुओं का मेल मिलाओ
छेड़ना न भैया को देखकर आना तुम
सही सही समाचार लाकर बताओ सब

दोलताँ (लौटकर)

राय बुलार के भीड़ है लगी

कचहरी के बीचोंबीच
नानक वहाँ पर है मालिक भी वहीं पर है
और न्याय माँगता है वहाँ खड़ा-खड़ा कृषक एक
राय के आदमी देखकर आये हैं
राय से कहते हैं बलि-बलि जाऊँ मैं
खेत लहराता है हरा-भरा भरपूर
तिनका तक उजड़ा नहीं है वहां कोई भी
झूठी है नालिश और झूठा है किसान बिलकुल
सुनो हे राय इस परगने के मालिक !
कृषक ने कहा तब खेत तो खाया है
भैंसों ने भर चाव !
पर मुझे लगता है राय जी
नानक है कोई औलिया !
राय ने देखा तब नानक की ओर
नानक ने कहा तब इस प्रकार
आप ही समान रज़क देता है सबको ही
हरि राव सबकी ही पैज को सम्हालता है
उसके यदि राव जो हो रहेंगे आप तो
वह भी फिर आपका ही हो करके रहेगा ही ।

□□

तलवंडी से सुलतानपुर

५ अदेशी नूर सुलतानपुर में

१. तलवंडी से विदाई

रबी की फसल काटी गई और अनाज लोगों के घरों में पहुँच चुका था । भूसे के कूप बाँधे जा चुके थे, सूर्य तेज़ी से तप रहा था, धरती से जल सूख रहा था कि अचानक पूरब की हवा चल पड़ी और दो-तीन दिन मिट्टी-गरदा उड़ने के पश्चात् काले बादलों के दर्शन हुए। बूँदाबाँदी होने लगी, बिजली चमकी, बादलों की गरज हुई, मूसलाधार वर्षा हुई । सभी ओर जल-ही-जल हो गया, वायुमण्डल शीतल हो गया और एक पहर के पश्चात् वर्षा रुक गई । ठण्डी वायु चलने लगी है । आँखों में सुख अथवा हृदय में ठण्डक पड़ रही है । इस समय एक पुराने तथा घने वृक्ष के नीचे एक पलंग बिछा है, उसके ऊपर एक चार खाने की चादर बिछी है और उस पर राय भोइ की तलवण्डी के परगने का स्वामी राय बुलार बैठा है । एक दास समीप बैठा है, जिसने दूर देखकर कहा—

राय जी ! जैरामदास जी आ रहे मालूम पड़ते हैं ।

राय बुलार—अच्छा हुआ, कोई चौकी बिछा दो ।

दास ने एक सुन्दर चौकी डाल दी। इतने में जैरामदास जी आ गये और परस्पर आदर नमस्कार करके बैठ गये । राय जी ने अब धीरे से कहा—

भाई जैरामदास ! हमने आपको कष्ट दिया है, पर यह नूर वाले नानक के कारण ही है; नानक के साथ अच्छा बर्ताव नहीं होता । वह मेरे लिए तो परमेश्वर हैं, पर हमारा कालू क्रोधित होता है कि वह संसारी क्यों नहीं है । तुम्हीं बताओ, अब तो तुम्हारा सम्बन्ध हुए भी काफी समय हो गया है और अब की बार तो तुम्हारे रबी की फसल के सारे दिन यहीं पर व्यतीत हुए हैं । तुम्हारा नानक के सम्बन्ध में क्या ख्याल है ।

जैरामदास—राय जी ! हम खत्री लोग तो धन के ही प्रेमी हो रहे हैं, हमारे नेत्र ऊपर की ओर नहीं देखते, पर आपकी कृपा है, नानक देव के लक्षण बड़े प्रकाश वाले हैं । यदि कोई तृष्णा छोड़कर देखे तो फिर नानक नूर-ही-नूर है । पिता जी (कालू) ने बड़ी छोटी उम्र में जबरदस्ती ब्याह भी कर दिया है ।[१] उनका मन तो दुनियादारी की ओर है । नानक देव तो निरा ईश्वरीय नूर है । मैंने तो इन्हीं दिनों में पूर्ण रूप से निश्चय कर लिया है कि नानक ईश्वर से रंग में रंगा है ।

राय बुलार—ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें । यदि आपने इस रहस्य को समझा है तो कोई योजना बनानी चाहिए, जिससे ईश्वर का प्यारा कष्ट न पावे ।

---

१. पुरातन जन्मसाखी से सिद्ध होता है कि विवाह घर पर ही बाल्यकाल में हो गया था, और भाई मनी सिंह का भी यही विचार है । 'बाले वाली जन्म साखी' और 'गुरू नानक प्रकाश' में विवाह सुलतानपुर जाकर हुआ बताया जाता है ।

जैराम दास—जैसी आपकी आज्ञा हो ।

राय बुलार-हमने अपनी ओर से बहुत ज़ोर लगाया है । कालू को समझाया भी है । जान-बूझकर यदि कोई नुकसान करे तो हम भरने को तैयार हैं । पर घर में आठों पहर की कलह को किस तरह मेटा जाय । यह अब हमारे लिए असह्य है कि ईश्वर के प्यारे को हमारे परगने में कष्ट मिलें । बहुत सोच-विचार के पश्चात् हमने तो यही परिणाम निकाला है कि नानक घर से बाहर कहीं दूर चला जाय । यदि आपकी इच्छा हो तो कोई कार्य करे अन्यथा अपने रंग में रहे, उसके लायक इस खजाने में बहुत धन है ।

जैरामदास—आपने सच कहा है; अब यदि आपकी आज्ञा है, तो मैं नानक को अपने साथ सुलतानपुर ले जाऊँ । यदि आप प्रसन्न होकर स्वीकृति दें तो मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

राय बुलार—भाई जैराम ! मुझे तो प्रसन्ता है कि नानक अपने रंग में मगन रहे, उसको कोई कष्ट न हो । तुम उसको ले जाओ तो अच्छा है, क्योंकि तुमने ही उसके रहस्य को जाना है । हमने सुना है कि बिटिया नानकी ने तो जन्म से ही भाई को पहचाना है और सौन्दर्य करके जाना है । (सिर फेरकर और हाथ-पर-हाथ रखकर) वास्तव में ईश्वर के भेजे हुए को कोई नहीं पहचान पाता और वह स्वयं भोलेपन में रहता है । सुन्दर नानक तो अपने असली रूप को पहचानता है, पर माता-पिता नहीं पहचानते । माया के मोह का भारी परदा है, सचमुच फकीर को पहचानना कठिन ही है । नानक को बेदी-कुल के सारे व्यक्ति बावला कहते हैं, पर हमने तो ठीक पहचाना है कि वह अवतार है । अब तुमने भी समझा है कि नानक पूर्ण पुरुष है ।

जैरामदास (बात काटकर)—जी ! मैंने तो नानक को विशुद्ध 'नूर' ही पहचाना है ।

राय बुलार—अच्छा हुआ, अब तो घर वालों अथवा निकटवर्तियों के ईश्वर ने नेत्र खोले हैं, पर आपको पता है कि अपरिचित लोगों का क्या हाल है ? यहाँ पर एक डोम है । माँ उसको 'मर जाना' कहा करती थी । उसके कई पुत्रों की मृत्यु हो गई थी, अतः उसको भी 'मर जाना' अर्थात् मर जाने वाला कहा करती थी । स्त्रियों का बहम है कि यदि मैं उसको स्वयं मर जाने वाला कहती रहूँगी तो, मृत्यु का देवता इसको नहीं मार सकेगा । वह नानक की संगत में बैठकर 'ईश्वरीय इलहान' (संगीत) कीर्तन करता है, नानक उसको 'मरदाना' कहता है और कहता है कि मैंने तुझे मर्दों का मर्द बना दिया है । हम भी उसका राग सुनकर प्रसन्न होते हैं । फिर उस 'मरजाने' की स्मृति इतनी तीव्र है जो नानक के मुख से निकलता है उसको शीघ्र ही कण्ठस्थ कर लेता है । प्यार इतना करता है कि आसपास ही घूमता रहता है । नानक रात को कभी ही घर पर व्यतीत करता है । यदि घर पर रहे तो तीसरे पहर से पहले ही जंगल में जा बैठता है । मरदाना उस समय ऐसी ध्वनि निकालता है कि सारा वन भगवान-भगवान ही पुकारने लगता है । कोई क्या जाने पुराना है या नया, पर हमने तो नानक से ही सुना है—'आसा' उसका कहते हैं । वह राग बड़ा आकर्षक है । फिर दिन को नानक खेतों में जा बैठता है । अपरिचित लोग, कई हिन्दु, कई मुसलमान लाकर नानक के आगे सिर झुकाते हैं । नानक की वाणी सुनकर बहुत से लोग ईश्वर-ईश्वर, कहने लगे हैं । हमने सुना है कि कई साधु-फकीर भी आकर सम्मान करते हैं और सुखी होते हैं । ज्योतिषी, पाण्डेय, काज़ी, मुल्ला, वैद्य जो भी नानक को शिक्षा देने के लिए अथवा राजी करने के लिए आये,

वे अब नानक के निकलने पर उसे सीस झुकाते हैं । अतः मेरे राज्य में एक अमृत फल का वृक्ष लगा है, पर घर वाले छोटी-छोटी बातों पर उसको कष्ट देते हैं, हर बड़ी दुनियादारी की आशा रखते हैं, जंजाल में फँसाने के यत्न करते हैं और सुन्दर नानक दिलगीर होता है । अतः अब, जब आपने और हमने उसको ठीक पहचाना है तो उसके हृदय को अपने रंग में रंगा रहने देना चाहिए । यह बात यहाँ पर नहीं हो सकती, आप इसको सुलतानपुर ले जाओ, तब तो यह सब-कुछ हो पायेगा । धन यहाँ उनके लायक बहुत है, पर निरे धन से कष्ट दूर नहीं होता ।

जैरामदास—राजा ! जो आपकी इच्छा ! मैं यत्न करूँगा । यदि नानक मेरे पास रहे तो मेरे धन्य भाग ! और उसकी बहन की प्रसन्नता तो असीम होगी, पर कुछ समय लगेगा । यद्यपि पिता (कालू) आपके धन से पलते हैं, पर खत्रियों को कोई व्यवसाय-धन्धा किये बिना लज्जा आती है । अतः पिता जी से यही कहूँगा कि नानक के लिए सुलतानपुर में मैं अब धन्धे का यत्न करूँगा । जब मैं प्रबन्ध कर लूँगा, तब मैं आपको पत्र लिखूँगा और मेरे पास उनको भेज देना । फिर, मुझे आशा है कि वह भेज भी देंगे । अतः मैं अब पहले जाकर नवाब दौलत खाँ से खोज करूँगा और यदि कोई बात बन पड़ी, तो बुला लूँगा ।

राय बुलार—जैराम बेटा ! तुम बुद्धिमान हो, तुम्हें भली बात सूझी है, यदि आवश्यकता पड़े तो नवाब को हमारी ओर से निःशंक कह देना ।

जैराम—बहुत अच्छा जी ।

इस प्रकार परस्पर बातें करने के पश्चात् जैराम प्यार-सत्कार सहित विदा होकर घर आया । खरे सौदे वाली घटना अभी नई-नई थी । जैराम ने अपने ससुर को समझाया । कालू पहले से ही निराश हो रहा था, कि पुत्र बावलों की-सी बातें करता है, बेकारों की भाँति फिरता रहता है डोमों अथवा साधुओं की संगत लगाता है, स्वयं गाता है, और गाने वालों को सुनता है, आकाश की ओर देखता है, अथवा वनों की ओर देखता है, पवन, पानी, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, बिजली, वर्षा आदि को देख-देखकर बावला हो जाता है । घर का काम नहीं करता, परिवार नहीं सँभालता, कोई व्यवसाय नहीं करता, पिता का हाथ नहीं बँटाता, देखो, यदि विदेश में जाकर किसी कार्य में लग जाय तो भी अच्छा है । अतः कालू ने आज्ञा दे दी और जैराम ने सुलतानपुर पहुँचकर नवाब से बातचीत की । नवाब के पास उस समय मोदीखाने में स्थान रिक्त था, और एक सज्जन अथवा विद्वान पुरुष की आवश्यकता थी । अतः उसने कहा दिया कि नानक को बुला लिया जाये हम उसको देख लें । यदि वह हमारी रुचि का कारिन्दा हुआ तो उसको मेदीखाने का मोदी रख लेंगे ।

घर लौटकर जैराम ने पत्र लिखा कि नानक सुलतानपुर पहुँच जाये ।

पत्र पढ़कर जगत के स्वामी गुरू जी अपने सारे सम्बन्धियों से विदा होकर सुलतानपुर को चल पड़े । घर वालों ने प्रसन्नता प्रकट की, कि नानक सहर्ष नौकरी करने के लिये जा रहा है न जाने वहाँ जाकर किस कार्य में मन लग जाये । इन्हीं दिनों में एक नई बात यह हुई कि गुरू नानक देव जी ने अपने हाथ की सोने की अंगूठी और पीतल का लोटा किसी जरूरतमन्द को दे दिये थे, जिस पर घर के सारे व्यक्ति रुष्ट हो रहे थे, इसलिए वह गुरू जी को शीघ्र सुलतानपुर भेजने के लिए मान गये । राय बुलार इसलिये प्रसन्न था कि उच्च हृदय वाला ईश्वरीय रंग में रंगा खुले वायुमण्डल

में गया है जहाँ उसके सुन्दर हृदय को उदासियों तथा चोटों से बहुत आराम मिलेगा । पर गुरू जी के अपने सत्संगी उदास थे, कि प्यारा पृथक् हो रहा है । पत्नी ने तो बहुत वैराग किया परन्तु आपने समझाया, "कि मैं यहाँ पर भी उदास रहता था, घर में क्या करता था, तुम्हारे लिये मेरे घर पर रहने अथवा बाहर रहने में कोई अन्तर नहीं ।" पर उस सतवन्ती ने कहा, "यदि आप घर पर बैठे होते थे, तो मेरे लिए सारे संसार का राज्य होता था । यह संसार तो मेरे किसी काम का नहीं । तब मेहरबान होकर आपने आशीर्वाद दिया । 'कुछ चिन्ता न करो, दिन-दिन तुम्हारी पातशाही होगी ।'[1] इस पर भी उसने साथ चलने के लिए प्रार्थना की तो आपने कहा, 'परमेश्वर की प्यारी, अब तो मैं जाता हूँ, यदि मेरे रोज़गार की कोई बात बन पड़ी तो मैं तुम्हें लिवा लूँगा ।' फिर वह चुप हो गई । इस प्रकार अब ईश्वर के रंग में रंगी गुरू ज्योति, दरिद्रता के शरीर में फिर रहे, जत के अंधेरे भरे हृदयों वाले मनुष्यों की प्रवीणताएँ, चिन्ता में मानो झूलती दिखाई दे रही ईश्वरीय ज्योति, घर छोड़कर चल पड़ी । उन्होंने समझा कि उनकी मनोरथ की पूर्ति होगी, पर इसका ज्ञान तो ईश्वर को ही कि वह अपने मीठे मनुष्य को किस ओर ले जा रहा है ।

जब गुरू जी तलवण्डी से विदा होने लगे तो राय बुलार ने उनकी विदाई पर एक भोज दिया, जिसमें उनके सारे प्यारे सम्मिलित हुए । कीर्तन हुआ, और जाते समय राय बुलार ने कहा, 'हे ईश्वरीय ज्योति, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?'

श्री गुरू जी ने मुस्कराकर कुछ कहा, जिसका भाव था—

"यदि तुम मानो तो मेरी एक आज्ञा है, जब तुम्हारे निजी बल का अभाव हो जाये, अथवा उससे कार्य चल न पाये, तो हाथ बाँधकर ईश्वर की शरण ले लेना ।"

२. मोदीखाना

घर से चलकर गुरू जी सुलतानपुर पहुँचे । बहन नानकी अत्यन्त प्रसन्न हुई, जैराम ने आदर-सत्कार किया ।

दो-चार दिन के पश्चात् जैराम नवाब की आज्ञानुसार संसार के स्वामी को नवाब की नौकरी हेतु ले गया । नवाब ने बहुत वार्तालाप किया और कहा यह बहुत ईमानदार पुरुष दृष्टिगत होता है, भला है, विद्वान है, मेरा कार्य ठीक ढंग से सम्भालेगा, इसको मोदीखाने में नियुक्त करो ।[2] अतः मोदीखाने का कार्य गुरू जी के अर्पण किया गया, खान की ओर सिरोपाव मिला, कुछ रसद अथवा कुछ वेतन निश्चित किया गया ।

मोदी कार्य बहुत सुन्दर ढंग से चलने लगा । सच्चे और साफ़ हाथों से जो कार्य किया जाता है, वह सुन्दर होता है । नवाब की एक कौड़ी की भी हानि न हो और प्रत्येक व्यक्ति को पूरी अथवा अच्छी वस्तु प्राप्त हो । सारे नौकर, चाकर, उच्च अधिकारी जिनको सरकार की ओर से सामान

---

१. पुरातन जन्म साखी ।

२. पुरातन जन्म साखी में लिखा है कि नवाब ने गुरू जी को वजीर भी कहा था ।

मिलता था, बड़े प्रसन्न होने लगे और इस प्रसन्नता के समाचार नवाब के पास भी पहुँच गए, कि नया मोदी तो कोई सत्यपुत्र है, पूरा तोलता है, किसी को कोई हानि पहुँचती, सबके साथ एक-सा व्यवहार होता है और सरकारी माल में कोई हेराफेरी नहीं करता, न सरकार के साथ, न प्रजा के साथ और न अधिकारियों-कर्मचारियों के साथ। नवाब बहुत प्रसन्न हुआ, और प्यार करने लग पड़ा, और जो बात भी श्री गुरू जी उससे कहें, मानने लगा।

इस कार्य में आपको अधिक यश प्राप्त हुआ और अपना कार्य पूर्ण ढंग से चलाया। दूसरी ओर अपने ईश्वरीय रंग को तनिक-सा भी नहीं भूले। वही स्वभाव, वही शौक, वही व्यवहार। पहर रात्रि शेष रहने पर उठ बैठते और वनों की ओर चल देते; वेईं नामक एक छोटी-सी नदी यहाँ पर बहती थी, उसमें स्नान करने के पश्चात् सूर्योदय तक अपने वाहिगुरू के ध्यान में निमग्न रहना, कभी नदी के तट पर, कभी किसी सुन्दर रेती में समाधि स्थित होना। सूर्योदय होते ही वस्त्र पहनकर तिलक[1] लगाकर कार्यालय में चले जाना और लिखने-पढ़ने अथवा मोदीखाने के कार्य को चलाना। दोपहर से पूर्व कार्य को निपटाकर घर आते, पर इस कार्य को करते समय अनेकों समय ऐसे आ जाते कि आपके नेत्र अन्य प्रकार के रंग के हो जाते ओर 'तेरा, तेरा' की ध्वनि बँध जाती। इस प्रकार की ध्वनि बँध जाती कि कितना-कितना समय, अपने प्रियतम के प्रेम तार में बँधकर यश गायन करते, व्यतीत हो जाता, पर अपना कार्य फिर भी पूरा हो जाता। जो रसद सरकार की ओर से मिलती, उसी से घर पर खाना तैयार होता। गुरू जी की पत्नी, माता सुलक्षणी जी अब यहाँ पर आ गईं थीं और भोजन वे तैयार करतीं। पर जब गुरू जी घर लौटते तो कई अन्य व्यक्ति आपके साथ होते, और तैयार हुआ भोजन उनको जिवा देते।

तलवण्डी भी यह समाचार पहुँचते, और माता-पिता जी एक-दो बार आकर भेंट कर गये। पर सबसे पहले अपने प्रीतम के यश गाने वाला सखा 'मरदाना' आया, फिर शनैः-शनैः कई सत्संगी मित्र आ गये। कई और तलवण्डी निवासी जो वहाँ पर आपके सत्संग द्वारा ईश्वर-प्रेमी बन गये थे, और आपके साथ पूर्ण प्रेम करते थे, वह भी आने लगे। गुरू जी ने कई पुरुषों के भोजन तथा वस्त्रों का प्रबन्ध अपनी आय में से कर दिया और कइयों के लिये नवाब की ओर से रसद लगवा दी, कइओं को वहाँ पर नौकर करा दिया। इस प्रकार सुलतान में सत्संग मण्डल पूरे यौवन से प्रफुल्लित हो उठा। कई ईश्वरीय व्यक्ति सुलतानपुर के चन्दन की सुवास के कारण महक उठे। दूर निकट के लोग भी आने लगे और कृतार्थ होने लगे।[2] बड़ा अनुपम ठाठ बंध गया।

सूचना—सिक्ख इतिहास में सुलतानपुर के अनेकों सिक्खों में से दो नाम आज तक प्रसिद्ध हैं: भाई भगीरथ और भाई मनसुख। इन दोनों के सम्बन्ध में कुछ हाल निम्नलिखित प्रसंगों से विदित हो जाता है।

---

१. पुरातन जन्म साखी के प्रस्तुत लेख से, पुरातन चित्रकारों ने गुरू जी के मस्तक पर तिलक दिखाया है। डेढ़ सौ वर्ष की मूर्तियों में यह चिन्ह दृष्टिगत होता है।

२. इस प्रसंग का शेष आगामी प्रसंग 'भाई भगीरथ' के पश्चात् आएगा।

६ भाई भगीरथ

: १ :

मीठी-मीठी, ठण्डी-ठण्डी ओस पड़ रही है । रात्रि भीनी-भीनी और सुहावनी लग रही है । तीसरा पहर अभी नहीं हुआ है । तारिकाओं के प्रकाश को साथ मिलकर चन्द्रमा पूरब के गगन में धनुष की भाँति बारीक होकर मीठा मन्द प्रकाश धरती पर भेज रहा है । चारों ओर शान्ति का प्रभाव छा रहा है । नगर सो रहा है । वन भी मौनधारी की भाँति समाधिस्थित है । वईं का प्रवाह चल रहा है, पर चुपचाप एकाएक जल के हिलने की आवाज़ आई । इधर तीसरे पहर का घंटा बजाने वाले ने टंकार लगाई, उधन वेईं में स्नान करने की, एक डुबकी लगने की, और एक सुन्दर तारी लगाने की आवाज़ आई और उसके साथ यह आवाज़ सुनाई दी—

"जिसु मनि वसिआ तरिआ सोइ ।।
नानक जो भावै सो होइ ।।"

[बिलावल वार महला १]

इस समय कौन इस सौभाग्यशालिनी वेईं नदी में स्नान कर रहा हैं ?

इस समय को 'अमृत वेला' (अमृत समय) का नाम देने वाला तथा इस समय जागकर ईश्वर में लौ लगाकर बैठने का ढंग बताने वाला दाता स्वयं स्नान कर रहा है। इसी प्रकार जैसे किसी सौभाग्यपूर्ण दर्शन पर द्वितीय गुरू जी ने गुण गाया था :—

"चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ ।।
तिना दरीआवाँ सिउ दोसती मनि, मुखि सचा नाउ ।।"

[माझवार महला २]

निरंजनी ज्योति वेईं में स्नान करके बाहर आई, वस्त्र पहने, थोड़ी दूर पर एक चबूतरे पर चौकड़ी लगाकर बैठ गये । पहले आकाश की ओर देखा, फिर चारों ओर देखा, नेत्र मुँदे और खुले, फिर पवित्र और रसीले गले से प्यार-भरी वाणी निकली :—

"पेवकड़ै धन खरी इआणी ।।
तिसु सह की मै सार न जाणी ।।१।।
सहु मेरा इकु दूजा नहीं कोई ।।
नदरि करे मेलावा होई ।।१।। रहाऊ ।।
साहुरड़ै धन साचु पछाणिआ ।।
सहजि सुभाइ अपणा पिरु जाणिआ ।।२।।
गुर परसादी ऐसी मति आवै ।।
तां कामणि कंतै मनि भावै ।।३।।
कहतु नानक भै भाव का करे सीगारु ।।
सद ही सेजै रवै भतारु ।।४।।२७।।

[आसा महला १]

आसा की यह यह हृदय को आकर्षित करने वाली ध्वनि इस सुहाव अथवा टिकाव के समय अपना सुरीला सरूर देकर बन्द हो गई । गायन करने वाले अदेशी दाताजी मग्न हो गये । अन्तःकरण

में परमात्मा के देश की अगम गति में रसलीन हो गये । बाहर से देखो तो मूक हैं मानो एकान्त शान्त के प्राकृतिक प्रभाव में टिकाव का रूपधारी होकर टिके बैठे हैं । मन्द प्रकाश में रूहानी चेहरा इस प्रकार आभासित हो रहा है कि आनन्द रस की फुव्वार चेहरे से आभा देती हुई चारों ओर अपनी मीठी किरणें डाल रही है । अदेश के वासियों के नेत्र, तारे बनकर इस दृश्य को देख रहे हैं, और अपने आप में तृप्त हो रहे हैं । वायु स्पर्श लेकर अचल हो रही है । मधुर प्रकाश पारे के सरोवर की भाँति, स्थित हो रहा है। इस प्रकार का टिकाव वाला रसभरा सुहाव है कि सुन्दरता स्वयं इस सुन्दरता में लीन हो रही है । इस प्रकार अपने प्यारे के रस रंग में, सुन्दर गुरू नानक विराजमान हैं ।

समय धीरे-धीरे व्यतीत हो रहा है । समय का प्रतिक्षण और प्रतिक्षण का पल-पल का 'रस रूप दाता' जी की छोह से सुगन्धित होकर निज को सफल करता धीरे-धीरे जा रहा है । मानो अकाल पुरुष की गोद में टिके प्यारे की छोह से समय भी अपने अचल स्वरूप को सफल बना रहा है । समय जा रहा है, पर इस तरह जैसे नहीं जा रहा, मानो टिक रहा है । इस टिकाव में और लिपट रहा है चरण-कमलों से । सुलतानपुर में मोदी का चोज़ करने वाले गुरू जी इस दर्शन पर न्योछावर हैं । इस प्यारे की आनन्ददायक फुवार छवि लगा रही है । उस समय से अब तक वहाँ यहाँ और हर जगह जहाँ याद करो प्यार करो हृदय की चसक के साथ चित्र लगाओ वहीं पर ही दाता दे रहा है अपनी यह रस रूपी छोह-आनन्द रूप छोह ।

: २ :

देखो, यहाँ से—सुलतानपुर से कोई दो-तीन कोस की दूरी पर एक मैलसीहा नामक ग्राम है—यहाँ के चौधरी का नाम भगीरथ है और वह एक भयदायक अथवा वीरता की काली मूर्ति के आगे ध्यान लगाकर बैठा है । क्या आज ही बैठा है ? कई मुद्दतों से बैठा है ।[1] कोई शाक्त—तन्त्र विद्या का जानने वाला आया था और अपनी विद्या को विज्ञान कहता था । काली माता का ध्यान भगीरथ मैलसीहा के चौधरी को बता गया था । चौधरी तब से अब तक उसी में लगा हुआ था, पर अब कभी-कभी उदास होता है । क्यों ? मन टिक जाता है, पर मन हलका नहीं होता, शीतलता नहीं पड़ती । कुछ कमी-सी, कुछ भारीपन-सा, कभी भीतर कुछ रिक्तता-सी अनुभव करता है ।

एकाग्रता—यह तो कई प्रकार से आ जाती है । किसी वस्तु पर नेत्र टिकाओ, मन को टिकाओ, उसी पर मन कुछ टिकने लग जायगा, पर इस प्रकार का टिका मन 'श्रद्धा' के बिना, क्या कर पाएगा ? एकाग्रता से कुछ शक्ति भले ही बढ़ जाए, पर जीवन का प्रायोजन तो है 'जीवनदाता के साथ मेल ।' जीवनदाता है, चैतन्य जीवित-जागृत अस्तित्व, सर्वगुणों की खान, सबके प्राणों का प्राण हम भी हुए रूह, प्राण । प्राणों को प्राणों से मिलना है । इस छोटे-से जीव को विशाल तथा असीम प्राण से मिलना है । दु:खों से घिरे हुए जीवन को सदा सुखी प्राण से संयोग प्राप्त करता है । दो प्राणों को जोड़ने वाली वस्तु 'प्यार' है । प्राण को प्राण से प्यार ही मिलाता है ।

---

१. "मैलसीहां विच आखीऐ, भगीरथ काली गुण गावै ।" [भाई गुरुदास]

'विभूतियों की प्राप्ति के लिए एकाग्रता के साधन जुटाना' अपनी शक्तियों को बढ़ाने और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामर्थ्यवान होने के बहुत से मार्ग तो मिल सकते हैं, पर यह अपने सारे दुखों को दूर करके, सदा का मिलाप—उसके साथ मिलाप, जो सदैव है, नहीं प्रदान कर सकते । क्यों ? इसलिए कि मन का झुकाव एकाग्रता के साधन जुटाने में ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में ही रह जाता है। यह नाशवान दृष्टमान के घेरे में ही अवरुद्ध होकर रह जाता है ।

भगीरथ को कोई शाक्त, शक्ति का ध्यान करना बता गया जिससे विभूतियों के प्राप्त करने की शक्ति आ जाये और शरीर को बल प्राप्त हो जाये । मन को सुखी होने के लिए भगीरथ को आवश्यकता थी आत्म-मेल की इसलिए भगीरथ साधना करके भी सुखी नहीं हुआ और मन को तृप्ति नहीं मिली । अब भगीरथ कई बार घबराता है । अपनी पूजा तो उसी तरह करता है, ध्यान भी उसी मूर्ति का करता है, परन्तु हृदय में शीतलता नहीं पड़ती । जिज्ञासु के लिए यह अवस्था दुःखदायक होती है । किसी ध्यान में तो लग पड़े, पर उससे शान्ति न मिले । यह तो स्वाभाविक बात है कि 'पीड़ा का दुख, औषधि के खोज की जननी है । भगीरथ आने जाने वाले साधुओं से अपने हृदय की पीड़ा कहता और उसकी औषधि पूछता है । हर कोई अपने विचारानुसार उत्तर देता है । यद्यपि उसको इस प्रकार के अनेक उत्तरों से यह तो निश्चय हो गया कि जिस उपासना में वह लगा है वह मुक्ति की दाता नहीं तथापि वह बार-बार उसी मूर्ति से अपनी कल्याण की याचना करता । पर कोई उत्तर न मिलता । भक्त नाम देव जी का भी यही अनुभव था—

"तू कहीअत ही आदि भवानी ।।
मुकति की बरीआ कहा छपानी ।। [गोड़ नामदेव]

यहां बात बेचारे चौधरी के साथ घट रही थी । उसके अन्तःकरण में शान्ति, सुख तथा मुक्ति की वासना थी पर जो उपासना वह कह रहा था, वह मुक्तिदाता नहीं थी । कवि संतोख सिंह ने लिखा है कि उसी मूर्ति की स्तुति का गायन करते-करते एक समय सारा दिन उसने मन्दिर में व्यतीत कर दिया और रात्रि को भी वहीं पर रहा तो, आधी रात्रि को उसी काली देवी का रूप प्रकट होकर उसको बता दिया कि कल्याण करने वाला गुरू नानक है और सुलतानपुर में मोदी के रूप में छिपा बैठा है । पर भाई मनी सिंह जी ने लिखा है कि एक बार श्री गुरू जी मैलसीहां आये, तो भगीरथ भी आपके चरण-कमलों में सो गया । त्रिपहरे से पूर्व श्री गुरू जी उठे, भगीरथ जल लेकर आया, स्नान करके भी गुरू जी अपने आनन्द में निमग्न हो गये, और ईश्वर के ध्यान में स्थित हो गये । उस समय भगीरथ क्या देखता है कि एक अष्टभुजी स्त्री झाड़ू दे रही है । भगीरथ ने पूछा, 'तुम कौन हो ?' उसने उत्तर दिया, "मैं देवी हूँ ।" भगीरथ ने आश्चर्यचकित होकर पूछा कि, "तुम्हें तो जगतमाता कहते हैं, तुम यहाँ पर झाड़ू क्यों लगा रही हो ?" उसने उत्तर दिया कि, "यह परमेश्वर का निर्गुण रूप है, मैं इनकी सेवा करके शक्तिशालिनी होती हूँ ।" इस प्रकार की वार्तालाप के पश्चात् भगीरथ का वह भँवर-जाल, जिसमें वह चक्कर लगा रहा था, पर जिसमें से बाहर नहीं जा सकता था, खुल गया, और उसको यह निश्चय हो गया कि कल्याण की देन श्री गुरू जी के पास है ।

: ३ :

भगीरथ अब सुलतानपुर में निवास करने लगा और गुरू जी का सत्संग करने लगा। दाताजी ने भक्ति का दान दे दिया। अब वह अमृत-बेला में उठता है, वस्त्र लेकर श्री गुरू जी के साथ वेईं नदी पर स्नान करने के लिए जाता है। स्वयं स्नान करके दूर जाकर बैठता है और ईश्वर के नाम अभ्यास (भक्ति) करता है। आनन्द स्वरूप का ध्यान करता है; और दिन संत-सेवा में व्यतीत करता है।[१]

भगीरथ को इससे सुख और शान्ति मिली। अब हृदय से पहले विकारों का अधिकार हटा। विकार हमें संसार के साथ बाँध देते हैं। विकार मन की एक गति है जो मन को पदार्थों की ओर आकर्षित करके उन्हें प्राप्त करने की अथवा करके भोगने की ओर आकर्षित करते हैं। भोग से भोग के समय रस प्राप्त होता है, पर शरीर का बल व्यय होकर और मन की शक्ति खर्च होकर दुर्बलता आती है। इस प्रकार अधिक लोगों को भोगने के पश्चात् रोगों की उत्पत्ति होती है।[२] भोगों का रस है ही आपे के व्यय होने का क्रिया का फल जिस प्रकार आतिशबाजी का चमत्कार अपना लुभावनापन अथवा चमत्कार दिखाने में अपने-आपको व्यय करता है। कुछ उसी प्रकार का भोग रस में आपा खर्च होता है और मन जो अपने बाहर का प्रतिबिम्ब लेता है भोग के गहरा प्रतिबिम्ब लेता है।

वे प्रतिबिम्ब उसके भीतर बैठकर और छाया डालकर मैल भर देते हैं। इस प्रकार मन मलीन हो जाता है और उसमें भोगों के प्रतिबिम्बों की खुरचनों की धुन्ध छाई रहती है। उस धुन्ध में नित्य के 'भोगाभ्यास' के कारण भोगों की रुचि इतनी अधिक बढ़ जाती है कि फिर वृत्ति बहिर्मुखी हो जाती है। इस अवस्था को मन पर विकारों के नियन्त्रण की दशा कहा जाता है। मन से यह नियन्त्रण तब हटता है जब इसके लिए कोई यत्न किया जाए। इसके लिए सबसे पहले है सेवा। फिर गुरूवाणी का अभ्यास, पाठ, विचार तथा कीर्तन। फिर ईश्वर के नाम का स्मरण तथा अध्ययन स्वरूप परमेश्वर के नाम का स्मरण। फिर उस ईश्वर से मिलाप होता है।

सेवा—शरीर की लहर, अपनत्व की सेवा से उठकर गुरुमुखों (भक्तों) की सेवा करने से मन की स्वेच्छा' का बाँध टूटता है। गुरूवाणी मन को विचार प्रदान करती है, मन विचार की तुला पर तोलकर लाभदायक अथवा हानिकारक पदार्थों की पहचान प्राप्त करता है। दूसरी बात यह है कि गुरूवाणी का प्रभाव मन को एक ओर मिलाने का होता है। विचलित मन एक ओर को लग जाता

---

१. रहित भईयो दरशन नित करहीं ।।
चरन पखार हरख उर धरही ।।
जिउं करुणाविधि देंहि रजाई ।।
तैसे करै सदा मन भाई ।।
बीतियो अस प्रकार कुछ काला ।।
शरधा धारत हृदय बिसाला ।। [नानक प्रकाश]

२. भोगी कऊ दुखु रोग विआपै। [बसंत महला १]

है । तीसरी बात यह है कि गुरुवाणी, सतगुरू के हृदय से आई है और वहाँ आदेश से आई है । अतः अज्ञात पाठक के मन का झुकाव उस ओर हो जाता है । गुरू जी के कथनानुसार—

इह बाणी महा पुरख की निज घरि वासा होइ ॥

[रामकली ओअंकार दखणी महला १]

फिर वाणी नाम का "रामी" मूल्य निश्चित करती हैं नाम की ओर प्रेरित करती है । "नाम" को लगाती है । "नाम" से नामी की ओर रुख होता है । जिसका 'नाम' जपते हैं उसके नाम के साथ प्यार उत्पन्न होता है । 'नाम' प्यारे का 'नामी' है । नाम अपने से प्यारा स्मृति में आ वसता है । स्मृति में बस जाने को "स्मरण" कहते हैं, स्मरण अर्थात् 'स्मृति' प्यारे का प्रेम है । प्रेम मिलाने वाला है—जीव को ईश्वर के साथ, प्रेमी को प्यारे के साथ, आनन्द-स्वरूप वाहिगुरू के साथ ।

सो यह प्रेम-मार्ग जो गुरू बाबा ने चलाया था भगीरथ को मिला । उसने सतगुरू जी के शब्द पढ़े और गाये, तब मन ने वाहिगुरू के प्रेम की ओर रुख किया । शक्तियों से अथवा शक्तियों की साकार मूर्तियों से मन ऊँचा उठकर शक्ति की ओर, अर्थात् ईश्वर की ओर गया, और उसके भीतर आई हुई 'स्मृति' ने प्यार का रुख ग्रहण लिया । अब अन्तःकरण निर्मल होकर ईश्वर स्वामी में जुड़ने लगा । मैल कम हो गया, अर्थात् मन विकारों की ओर जाने की अपेक्षा अपने में केन्द्रित होने लगा और वह जिसकी स्मृति कर रहा है, उसके ख्याल में, उसके अस्तित्व के ख्याल में ही खड़ा होता है । ऐसे दिखाई देता है बाहर की ओर से टूटकर भीतर में ऊपर की ओर चलकर मन टिकता है । एक स्वरूप व्यवस्था अन्दर बन जाती है, जिसमें उच्चता की प्रतीति और टिकाव अथवा निर्मलता का प्रकाश होता है । वास्तव में यह आपा निर्मल होने और उसमे सर्वव्यापक ईश्वर के मिलाप की कोई रहस्य वाली दशा होती है । इस प्रकार भगीरथ जी सेवा कर रहे हैं, कल्याणस्वरूप गुरू जी की, और गुरू जी की वाणी का पाठ कर रहे हैं, वाहिगुरू जी का नाम स्मरण कर रहे हैं, और अन्दर स्वस्थ व्यवस्था की झलकियों का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं उस विशुद्ध निर्मल अरोग दशा को, जो अपने में टिकने से परमेश्वर के मेल के साथ मिलती है ।

: ४ :

सच्चे पातशाह श्री गुरू जी अपनी शारीरिक अवस्था की दृष्टि से पूर्ण यौवन पर है । सुन्दर यौवन हिलोरे ले रहा है, पर हिलोरे ऐसी नहीं कि मन के बाहर जाएँ । वे आपे में रहकर आपे के स्वरूप में हैं ।

जिस प्रकार फूल की सुगन्धि उसमें से स्वयं निकल पड़ती है उसी प्रकार आत्म-प्रभाव इनसे स्वयं बाहर उछल-उछल पड़ता है, मोदीखाने का काम है, सैनिकों को रसद दी जाती है और नवाब के घर में भी अन्न भेजा जाता है । इसी में व्यग्रता है और यही प्रवृत्ति है । फिर प्रवृत्ति में दूसरी प्रवृत्ति ओर है, जो अन्तर्मुखता की सहायता करती है। साधु, सन्त, जरूरतमन्द आते हैं, उनको भी रसद देनी पड़ती है पर यह अदेशी मोदी के अपने नाम में चढ़ती है ।

हाँ आते हैं जिज्ञासु और सतसंग साथ माँगते हैं, माँगते हैं दुःख की निवृत्ति, माँगते हैं सुख और गुरू जी सहर्ष देते हैं । पर यह सब कुछ आपे में से ही देता है और अपने पास से देता है । सो दिन को व्यस्त है, पर व्यस्तता में से एक सुन्दर व्यस्तता दान देने की जारी रहती है ।

कार्य से मुक्त होते ही सत्संग लग जाता है और कीर्तन होता है । प्रेमी लोग दूर-दूर से आ जाते हैं । फिर रात्रि को विश्राम करते हैं । तीसरे पहर आप उठते हैं, और ईश्वर में लीन हो जाते हैं । इस प्रकार प्रवृत्ति भी चल रही है 'निवृत्ति रूप प्रवृत्ति' (सत्संग) भी जारी है और शुद्ध निवृत्ति का अन्तर्मुखी प्रवाह भी जारी है । यह सब-कुछ हम लोगों के लिए आदर्श हैं । दिन में काम तो किया जाए पर अन्दर से बेखबर न हुआ जाए । काम भी करें और उपकार भी करें, हाँ उपकार निष्काम सेवा वाला । रात में अचेत न सोयें । साईं की याद में ही लीन होकर सोयें और अमृत-वेला केवल उस स्वामी ईश्वर के प्रेम में लग पड़ें । गुरू जी हमारे लिए एक आदर्श उपस्थित कर रहे हैं और आप हैं अपने स्वरूप स्वामी रूप सदा अचल, अटल तथा अडोल फिर सारे संसार का गुरू तारनहार । महान उपमेंकारी काम में लग रहे हैं अवधूत-रूप फिर रसाल । सत्संग का प्रवाह जारी है और अन्य प्रेमियों के साथ भगीरथ के पास रहकर एक आदर्श सिक्ख तैयार हो गया है ।

इन्हीं दिनों एक खत्री बड़ा निर्धन और अत्यन्त विनम्र था ।[1] उसके घर एक पुत्री ब्याहने योग्य थी और उसके पास कुछ नहीं था । था खत्रिय मान-सम्मान वाला और उसकी पुत्री की सगाई हो चुकी थी । विवाह का समय निकट था और एक कठिन समस्या थी । न तो विवाह के लिए धन था और न सगाई छूटने पर बेटी को फिर किसी अच्छे घर में सगाई की आशा थी । वह गुरू बाबा का कद्रदान तथा प्यार करने वाला था । अतः बड़ी कठिनाई में आकर उसने श्री गुरू जी से अपनी कठिनाई कही और सविनय कहा—हे पातशाह, बेटी की सगाई तो बन्धुओं ने कर दी है परन्तु विवाह पर रुपये व्यय होंगे और मेरे पास रुपयों का अभाव है, अतः आपके चरणों में ही प्रार्थना है कि भाई आपकी कृपा दृष्टि हो जाय तो बिटिया का विवाह सम्पूर्ण हो जाए । मोदीखाने वाले उपकारी सदगुरू ने देखा । आँख के निशाने में भगीरथ आ गया । उन्होंने भगीरथ से कहा— ''भगीरथ, जो-जो ये कहें उन वस्तुओं का ब्योरा बना लो, ब्योरा जेब में डाल लो और रुपये बासनी में रख लो ? लाहौर जाओ और सबकुछ खरीद कर लौट आओ, पर लाहौर में एक रात्रि से अधिक मत रहना ।

गुरू जी की आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य कर कागज़ जेब में ओर रुपये बासनी में डालकर तथा सुमिरन में लीन भगीरथ लाहौर की ओर चल पड़ा । दो रात मार्ग में ठहरकर लाहौर पहुँच गया ओर ईश्वर की अगवानी में एक धनी व्यापारी के पास जा पहुँचा । विवाह की वस्तुओं का कागज उसके आगे रखकर बोला, भाई यह सामान खरीद दो, माल अच्छा खरीद दो, धन कम-से-कम व्यय हो

१. पुरातन जन्म साखी में एक अति दरिद्री क्षत्रिय की कन्या के विवाह का उल्लेख है, परन्तु अन्य लेखकों ने मरदाना जी की बेटी का विवाह लिखा है ।

और दाम एक ही हों । सच्चा-सच्चा व्यवहार करो जिससे तुम्हें भी सुख प्राप्त हो और मैं भी सुखी रहूँ । व्यापारी, जिसका नाम मनसुख था, कहने लगा, 'आप की इच्छानुसार ही सब कुछ हो जाएगा । अब सायंकाल का समय है, आप रात्रि-भर यहीं विश्राम करो, सारी वस्तुएँ एक-दो दिनों में अच्छी-से-अच्छी मिल जाएँगी जो वस्तु तैयार नहीं मिल पाएगी उसको मैं तैयार करवा दूँगा ।

भगीरथ—श्रीमान जी ! मैं यहाँ पर एक रात्रि से अधिक नहीं ठहर सकता ।

मनसुख—(कुछ सोचकर) क्यों ! तुम उदास क्यों होते हो यह आप ही का घर है । दो-तीन दिन अथवा जितने भी लगेंगे, आपको कोई कष्ट नहीं होगा अपने घर की भाँति ही आप यहाँ पर सुख से रहेंगे ।

भगीरथ—इस बात का तो कोई ख्याल नहीं, पर मैं यहाँ पर एक ही रात ठहर सकता हूँ ।

मनसुख—आप ऐसा करिए कि यहाँ पर एक-आध रात्रि अधिक ठहर जाइये, मैं काम शीघ्रता से करवा लूँगा और मार्ग में से समय निकाल लेना । आप पैदन न चलना, इक्के जाते हैं तेज मुलतानी घोड़ियों वाले उन पर चले जाना, सारा सामान भी उन्हीं पर ले जाना और आप भी साथ चले जाना । मार्ग में उनके स्थान बने हुए हैं, घोड़ी भी दूसरी ले लेते हैं । इस प्रकार एक दिन में चालीस-पचास कोस की यात्रा की जा सकती है ।

भगीरथ—परन्तु श्रीमान जी ! मुझे लाहौर नगर में एक ही रात्रि ठहरने की आज्ञा है ।

मनसुख—हैं, क्यों ? क्या आप लोदी के कर्मचारी हैं और उनकी आज्ञा है, पर क्यों··· ? मैं तो इसलिए कहता हूँ कि जैसा चूड़ा आपने कहा है उसमें कम-से-कम दो-तीन दिन तो लग ही जाएँगे, और भी कई वस्तु तैयार नहीं मिलेगी तो उसे तैयार करवाना पड़ेगा ।

भगीरथ—यदि लोदी की आज्ञा होती तो उसके कर्मचारी को अनेकों बहाने मिल सकते थे । परन्तु मेरा स्वामी तो बहुत बड़ा है, और उसकी आज्ञा का पालन न करने से मेरा जन्म व्यर्थ हो जाएगा ।

मनसुख—(हैरान होकर) दौलत खाँ लोदी से बड़ा शासक तो दिल्लीपति है, आप सुलतानपुर से आए हैं, फिर उसकी आज्ञा का पालन न करने से कष्ट तो हो सकता है, पर जन्म किस प्रकार व्यर्थ हो जाएगा ?

भगीरथ—मेरा हाकिम दिल्लीपति से भी बड़ा है और जन्म व्यर्थ इसलिए होगा कि मेरा जन्म उसकी आज्ञा मानकर सँभला है । जो सुख मैंने आज्ञा मानकर पाया है, वह जन्म के तप अथवा हठ से प्राप्त नहीं किया । मैंने अहं का त्याग कर दिया है और गुरूमत प्राप्त करके सुखी हुआ हूँ । मेरे लिए मेरे गुरू की आज्ञा केवल एक रात्रि रहने की है, उसकी आज्ञा का पालन न करना, जन्म नष्ट करना है ।

मनसुख—गुरूमत·····? कलियुग में कौन गुरूमत देने वाला उत्पन्न हुआ हैं ? धर्म स्थान सभी भ्रष्ट हो रहे हैं, पाखण्डी जाल बिछा रहे हैं, स्थान-स्थान पर जाल बिछे पड़े हैं। मित्रवर । आप

लगते तो समझदार हैं पर बातें अटपटी-सी कर रहे हैं ।

भगीरथ—आपने सत्य कहा है, जगत में इसी प्रकार का व्यवहार चल रहा है, किन्तु मनसुख भैया ! मेरा गुरू तो पूर्ण है । कलियुग में आप ही पूर्ण अवतार है, 'गुरू अवतार......पूरा' ।

मनसुख—मैं भी इसी लगन का व्यक्ति हूँ। मैंने खोज की है, पर खोज कर करके प्रत्येक स्थान पर बनावट ही देखी है । अन्त में हारकर बैठ गया हूँ......अब यह भरोसा है कि यदि वह स्वयं दयालु दया करेंगे तो भेंट हो ही जाएगी। (सिर फेर कर) कौन है कलियुग में पूर्ण अवतार ।

भगीरथ—भैया ! जिसकी बात मैंने कही है वह तो स्वयं ईश्वर-रूप इस युग में अवतरित हुआ है और आजकल साधारण जीवन व्यतीत कर रहा है, पर वह है निरंजन की ज्योति । यदि उसमें तुम्हारी श्रद्धा हो जाए तो तुम्हारा भी कल्याण हो जाए ।[1]

मनसुख—यदि श्रद्धा न रखूँ और केवल उनकी परीक्षा लूँ और यदि मैं सन्तुष्ट हो जाऊँ तो मान लूँ । क्या ऐसा भी वहाँ पर हो सकता है ? क्या वह पूर्ण कला वाला है ?

भगीरथ—निःसन्देह जिस प्रकार मन में सोचो उसी प्रकार के ही दर्शन होंगे ।

मनसुख—माना कि आपकी बात सत्य होगी या आप सत्य ही कह रहे होंगे, पर दूध का जला तो छाछ भी फूँक-फूँककर पीता है। हाँ यदि मुझे कोई करामात दिखा दी जाए तो मैं उनका श्रद्धालु भक्त बन जाऊँगा ।[2]

भगीरथ—करामात ! करामात यह वस्तु तो वहाँ पर तुच्छ है । मन का सुख जो वहाँ पर मिला है, वह हज़ारों करामातों के बराबर है। पर यदि तुम्हारी श्रद्धा इसी बात से तुमसे उत्पन्न हो तो चलो देखो ।

मनसुख—बहुत अच्छा । अब ऐसा कीजिए कि आप भोजन कर विश्राम कर लें । कल सवेरे तक सब सामग्री तैयार हो जाएगी । चूड़ा, मेरे पास एक पहले से ही तैयार पड़ा है, सो मैं वह ही भेंट स्वरूप ले चलूँगा । इस प्रकार हम कल ही चल पड़ेंगे, आपकी प्रतिज्ञा भी भंग नहीं होगी और मैं भी यदि मेरे भाग्य में है तो जीवन का लाभ प्राप्त कर लूँगा ।

भगीरथ—जो आपकी इच्छा ।

---

१. भो सुमते ! नहिं कीज संसा । जिसकी मैं भाखति सु प्रसंसा । तिसु महिं धरहु जि शरधा पूरी । जगत कुबन्धन हर हहि दूरी । कलिकाल तारन करतारा । निज सरूप कीनों अवतारा । जिहके जागे भाग महाना । सो महिमा जानहि मतिवाना । लोकिक रीति करहि निरबाहू । हरदै ज्ञान धन अगम अथाहू। सरब घटन को अन्तरजामी । नियंता चौदह लोकन स्वामी । [नानक प्रकाश]

२. जे मुझ दें कुछ कला दिखाई । तब होवौं में सिख हित लाई। दंभी साध मिले बहुतेरे । शान्ति न प्राप्त भी किह हेरे । याते मुझे न उपजति प्रीता । बिनु अजमत नहिं होत प्रतीता ।

: ५ :

तीसरा पहर होने पर, भगीरथ उठकर बैठ गया। उसके मुख से ईश्वर का नाम निकला और फिर उठकर स्नान करके अपने नित्य नियम के अनुसार वाहिगुरू नाम में ध्यान लगाकर लौ में लग गया।

मनसुख ने यह सबकुछ देखा उसे रात्रि की बातचीत याद आई। बात चीत के रंग-ढंग से भी उस पर भगीरथ की सचाई और खरेपन का प्रभाव पड़ा था, उसके हृदय में अब भीतर से यह तीव्र इच्छा हुई कि शीघ्र सुलतानपुर पहुँचा जाए। दिन चढ़ते ही उसने विवाह का सारा सामान खरीद लिया। चूड़ा अपने पास से ले लिया और दुकान का कामकाज मुनीमों के हवाले कर भगीरथ के साथ सायंकाल को चल पड़ा। रात्रि होते ही दोनों नेष्टा[1] नामक ग्राम में आ पहुँचे। तेज़ चाल चलने वाले घोड़ों के इक्के की सवारी थी अतः यात्रा शीघ्रता से समाप्त हो गयी। भोजन करने के पश्चात् जब रात्रि को विश्राम करने लगे, तब आपस में वार्तालाप चल पड़ी। मनसुख की उत्कण्ठा अधिक होती जा रही थी और वह भगीरथ से उसके अनुभव का सार समस्त ब्यौरे-सहित जानना और समझना चाहता था।

मनसुख—मैंने सारी व्यथा समझी है। मुझे भी किसी ने शक्ति की पूजा बताई थी। मैंने उसकी बात नहीं मानी क्योंकि मुझे मूर्ति पूजा बिलकुल अच्छी नहीं लगती थी और एकेश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य की आराधना में मेरी रुचि नहीं है। हठयोग के कई रूप मैंने देखे हैं, वे तब करने चाहिए जब गृहस्थ न रहना हो। हठयोग में लग जाने से क्या प्राप्त हो सकता है? वही जो कनफटे योगियों को प्राप्त होता है? मदिरा आदि का सेवन करते हैं, मस्त होते हैं, उनमें क्रोध अधिक होता है और ऋद्धियों-सिद्धियों की प्राप्ति बताते हैं। एक बड़े योगी ने, जो भला पुरुष था बताया कि जो आत्मनिग्रह के लिए योग-साधना करते हैं, वे इन्द्रियों को शिथिल करते हैं, और अभ्यास भी इसी बात का होता है कि इच्छानुसार इन्द्रियाँ शिथिल हो जाएँ, पर राजयोग अन्य वस्तु है। फिर राजयोग के दावेदार भेष छोड़कर भी अन्य-अन्य बातों में निमग्न हैं। वास्तव में बात यह है कि योगदर्शन में जैसा योगी कहा है वैसा योगी कोई मिलता नहीं। बाकी थोड़ी-थोड़ी प्रक्रिया ध्यान लगाने की और इसके साथ कुछ अन्य साधन बताये जाते हैं। मैंने वे भी देखे हैं। मेरी इच्छा तो यही थी कि कोई ऐसा व्यक्ति मिले, जिसका 'वासना' पर नियन्त्रण हो, अथवा जिसका जीवन पवित्र हो, जिसने माया के मोह को पराजित किया हो और फिर जिसका मन ईश्वर में लगा हो। पर इस प्रकार का कोई व्यक्ति अभी तक मुझे मिला नहीं।

भगीरथ—मनसुख भैया! तुम्हारी खोज अथवा माँग उचित हैं, गुरू नानक जी स्वयं सांसारिक कार्य करते हैं, मोदीखाना चला रहे हैं। सारा दिन काम करते हैं, पर सारा दिन सुरत ईश्वर में लगी रहती है। वैसे तो तोलने तथा निरीक्षण के लिए उनके पास दो अन्य व्यक्ति हैं, पर कभी-कभी अपनी इच्छानुसार अपने स्थान से उठकर वे स्वयं तोलने भी लगते हैं। मैंने अपनी आँखों से देखा

---

१. यह ग्राम पुराने मार्ग में लाहौर और अमृतसर के बीच में स्थित है।

है कि कई बार जब तोलते-तोलते 'तेरां' (तेरह) पर आते हैं तो 'तेरां' की अपेक्षा 'तेरा-तेरा' (तुम्हारा) कहने लग पड़ते हैं और कहते-कहते एक ऐसी तार-सी बँध जाती है, जिससे आँखे मुँद जाती हैं, तराजू हाथ से छूट जाती है और न जाने कितना समय उसी रंग में व्यतीत हो जाता है । इसी प्रकार जब कभी 'पा' (पाव) के बाट को हाथ लग जाता है तो कहते हैं 'धन पा', हाँ ईश्वर 'पाओ, कृपा की दृष्टि पाओ' ।

फिर काम से मुक्त होते ही कीर्तन आरम्भ हो जाता है । आधी रात्रि के पश्चात् तीसरे पहर घर, नगर छोड़कर, नदी के तट पर जा बैठते हैं । क्या बताऊँ आश्चर्यजनक जीवन है उनका । गृहस्थ होते हुए भी संसार से कोई मोह, लगाव नहीं । धन की कमाई तो करते हैं, पर सारा धन-धान्य भिखारियों को बाँट देते हैं अथवा सत्संग के कार्यों में व्यय कर देते हैं । कई बार शिकायतें हो चुकी हैं कि मोदीखाना उजड़ा जा रहा है परन्तु जब सभासद लेखा देखते हैं तो माल अथवा धना पूरा उतरता है और खाते में गुरू जी का कुछ धन अधिक ही निकलता है । कोई ईश्वरीय कृपा है। उनके मस्तक पर सौन्दर्य की अपूर्व झलक है, हाथों में ईश्वरीय बरकत है, जिसके सिर पर हाथ रख देते हैं वही निहाल हो जाता है । साधन देखो, तो हठयोग तक भी कर चुके हैं, और सभी साधन कमा चुके हैं । आत्मा के कल्याण के लिए बताते हैं कि उनकी आवश्यकता नहीं । एक दिन मैंने उनको एक बड़े तार्तिक के साथ बातें करते सुना । आप कह रहे थे कि सारे जगत के लोग योगी नहीं बन सकते, सारे ध्यानी नहीं हो सकते, सारे त्यागी और संन्यासी नहीं हो सकते । फिर इस प्रकार की साधना करने वाले घर-गृहस्थी को छोड़कर वनों में जा बैठते हैं । इससे समाज में सज्जन पुरुषों का अभाव हो जाता है । साधना तो वह होनी चाहिए जो सब-कोई, जो करना चाहे कर सके और गृहस्थ में रहकर कर सके । फिर शारीरिक इन्द्रियों को शिथिल करके शक्ति उत्पन्न करना कल्याण का हेतु नहीं । कल्याण आत्मपद की ओर उठने से हैं । होना तो यह चाहिए कि आत्मा स्वच्छ हो और उसमें ईश्वर से मिलने का भाव उत्पन्न हो । वही भाव परमात्मा से मिलायेगा । वह ईश्वर भी रूह है, आत्मा है, जीवन है अर्थात् चेतन है । जितने शुभ गुण जीव में हैं, वे सब परमात्मा के ही हैं । अतः प्रेम करने अथवा प्रेम करवाने का गुण भी उसी ईश्वर का ही है । प्रेम करने वालों की भावना के अनुसार ईश्वर के प्रेम का स्पर्श होगा । दोनों ओर से प्रेम ही मिलाप का साधन होता है । माता के साथ, पत्नी के साथ, सन्तान के साथ प्यार करने का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को है ही । सब जानते हैं कि प्यार क्या वस्तु है ? केवल जानते ही नहीं, बल्कि हर व्यक्ति तो इसका अनुभव अथवा निजज्ञान है, अपने अनुभव में आया ज्ञान निजज्ञान कहलाता है सो इस प्यार को ईश्वर की ओर भी लगाया जा सकता है ।

मनसुख—क्षमा करें, मैं आपकी बात काट रहा हूँ । आपकी कही हुई बातें बहुत प्यारी लगीं । परन्तु प्यार तो दृष्टमान वस्तु से हो सकता है, अदृष्ट के साथ किस प्रकार हो सकता है ।

भगीरथ—'अदृष्ट' अथवा 'दृष्ट' पद तो दृश्यमान संसार की वस्तुओं के साथ लगाये जाते हैं और निरंकार दृश्यमान तो नहीं है, वह तो देखनहार है । वह हमें देखता है और हम उसको नहीं देख सकते । हमारे देखने का विषय वह बन नहीं सकता, क्योंकि दृश्यमान तो नाशवान होता हैं वह अविनाशी है । सो अब विचार की बात यह है कि वह देखनहार हमारे से दूर नहीं, वह तो हमारे

अंग संग में है, हमारी भीतर-बारह सर्वत्र हैं। हम उसके ही अंश हैं, और वह अपने अपने अंश से दूर नहीं रहता। गुरू जी कहा करते हैं कि वह 'प्रकृति में बसता है, प्रकृति से भिन्न नहीं, अपनी कृति से दूर नहीं है। अर्थात् वह हमारे साथ है, अंगसंग है, वह हमारे मन में हैं, हमारे अन्तःकरण में है और बाहर प्रकृति में भी है।

मनसुख—फिर हम वियोग और दूरी में क्यों हैं? दुःख तथा उदासी में क्यों हैं?

भगीरथ—जिस प्रकार जल सारी धरती में है, परन्तु जीव प्यास से मरते हैं। प्यास के दुख की निवृत्ति तो कुएँ से होती है। मैंने यह मोटी-सी बात उदाहरणस्वरूप कही है। इसी प्रकार भीतर ईश्वर का निवास होने पर भी ईश्वर के जीव दुःखी हैं, कारण यह है कि वह हमारे पास है और हमने यह बात भुला दी है। ईश्वर का सब जीवों में निवास है परन्तु हम उसकी स्मृति नहीं करते। यदि हमारी स्मृति में वह बस जाए तो कुआँ खोदने वाली बात चरितार्थ हो जायेगी, अर्थात् उसकी प्राप्ति की हमें आशा हो जायेगी और हमारा हृदय शान्त हो जायगा। हमारा मन तो सदैव बहिर्मुखी रहता है और हमारी इन्द्रियाँ भी बाहर की ओर भागती हैं। अतः इन्द्रियों के भोगों की वृत्ति और मन की इन इन्द्रियों को प्रेरक अथवा सहायता की वृत्ति ने मन की बाहर की ओर जाने का अवसर दिया है और इस प्रकार ईश्वर की ओर अज्ञान अथवा भूल पड़ी रहती है। यह 'भूल' एक प्रकार की दूरी है जो हमारे अथवा ईश्वर के मध्य में पड़ी हुई है। भूल को दूर करने वाली है उसकी स्मृति स्मृति यदि अन्दर बस जाए तो मन का रुख जो सदा बाहर की ओर रहता है उसमें अन्तर्मुखी होने का गुण आ जाएगा। मन जो शरीर की रक्षा के लिए, शरीर के पालन-पोषण के लिए और शारीरिक भोगों के लिए बाहर की ओर भागता रहता है, ईश्वर के स्मरण के समय अपने हृदय में भी किसी कार्य में लग जाएगा। वह उद्यम कौन-सा होगा? निरंकार को याद करने का। सो यह सोचो कि इस उद्यम का क्या स्वभाव होगा?

मनसुख—मेरी समझ से तो इस कार्य में उसके बाहर की ओर भागने की क्रिया रुककर हृदय में अपने छोटे-से क्षेत्र में ही टिकने का स्वभाव सीखेगी और हमारी स्मृति में बस जाएगा निरंकार।

भगीरथ—ठीक है, अन्तर्मुखी मन को अपने केन्द्र की परिधि में रहने का ढंग आ जाएगा। फिर इस दशा के प्राप्त हो जाने पर वह किसी बाहरी विषय की स्मृति में नहीं पड़ेगा। वह अपने देखनहार निरंकार की स्मृति में सदा लीन रहेगा। अतः मन स्मरण करके बाहर दौड़ने से रुक गया और स्मरण कर रहा है देखनहार का। इस प्रकार शनैः-शनैः मन उसमें विलीन होता जाएगा और उसका रुख होता जाएगा देखनहार। मन जिसमें संसार था और जो था संसार में उसमें ईश्वर का निवास हो गया क्योंकि मन को अपनी अन्तर्मुखी दशा में स्थिरता प्राप्त हुई है और उसमें आया है निरंकार का भाव, जो उसका मूल है और वह अपने मूल से जुड़कर सदैव मेल में चला जायगा। सतगुरू जी हमें बताया करते हैं कि हमारे अन्तस का जीव-तत्व निर्मल हो होकर और आपे में टिकटिककर परमतत्व जो निरंकार है उसमें टिक जाय, इसका नाम कल्याण है।[1] अब सोचो कि किस

---

१. तंतै कऊ परम तंत मिलाइया नानक सरणि तुमारी। [सोरठ महला १]

प्रकार सरल और प्रत्येक की समझ में आने वाला और हर एक के करने वाला कर्म है । है कि नहीं ?

मनसुख—बात तो मन को अच्छी लगी है । सरल है समझने अथवा करने के लिए, परन्तु करके देखें कि किस प्रकार प्राप्ति तक पहुँचाता है ।

भगीरथ—हाँ, सतगुरू जी में एक ओर विशेष बात है । वे कहते हैं कि यही कार्य करो, इस लोक में सुख की प्राप्ति करो और फिर आगे चलकर भी सुख की आशा करो । आप उन साधनों को पसन्द करते जो यहाँ पर तो कर्मपात्र करते चलो और आशा रखो कि आगे चलकर फल मिलेगा । गुरू जी उन बातों को भी पसन्द नहीं करते जिनके द्वारा यहाँ पर कुछ नाटक चेटक विभूति मिल जाये और आत्मा अथवा हमारी रूह परम पद पर न पहुँचे और आगे के सुख का कोई भरोसा न हो । आप दोनों लोकों में सुख का उद्यम बताते हैं । फिर नूतन अथवा अनोखी बात यह है कि किसी की निन्दा नहीं करते, किसी को बुरा नहीं कहते । हर बात के अथवा हर साधन के तजुरबे से परिचित हैं और जो राय वे देते हैं वह अपने अनुभव की अथवा निज के तजुरबे की देते हैं । यह भी कई बार कहते हैं कि समाज पीड़ित है । सज्जन पुरुष साधु बनकर त्याग धारण करके घरों से चले जाते हैं, पर सारे कहाँ चले जाएँ ? यदि सारे त्यागी बन जाएँ तो त्यागिय के लिए मधुकरी और वस्त्र कहाँ से आएँ ? इससे यही अच्छा है कि त्याग के प्रेमी मन का त्याग करें, समाज में निवास करें, दरिद्रों के कल्याण के लिए धन से, मन से सहायता करके स्वयं त्यागी बनें । इस प्रकार के व्यक्तियों की निर्मल बुद्धि से समाज उन्नत हो जायेगा । वे कष्ट जो समाज में हैं और जिनको एकाध व्यक्ति दूर नहीं कर सकता, उनको तो समाज ही उन्नत होकर दूर कर सकता है । अतः वह उन साधनों को अच्छा नहीं समझते, जिनके कारण मनुष्य समाज से हटकर पृथक् हो जाए । उनकी इच्छा है कि प्रत्येक जीव का उद्धार हुए व्यक्तियों की संगति से समाज का भी कल्याण हो । फिर साधना भी इस प्रकार की हो कि आजीविका की ओर से निश्चिन्त व्यक्ति भी जुटा सके और सारा दिन बैलों को चलाने वाला कृषक भी जुटा सके।

मनसुख—किस प्रकार ?

भगीरथ—ईश्वर की स्मृति से ।......हाँ, वे कहते हैं कि प्रातःकाल उठकर ईश्वर का स्मरण करो । एक पहर करो, एक घड़ी मात्र करो, आधी घड़ी करो, आधी-से-आधी करो, जितना सामर्थ्य हो, करो । आप ही बताओ कि प्रत्येक व्यक्ति इतना समय निकाल सकता है, अथवा नहीं ? फिर गुरू जी की यह आज्ञा है कि उठते समय, बैठते समय, चलते-फिरते ईश्वर का नाम जिह्वा पर ईश्वर का नाम यदि बस जाये तो शनैः-शनैः अपने-आप हृदय में उतर जायेगा । एक दृष्टान्त से इसको स्पष्ट किया जा सकता है। यह दृष्टान्त है तो हँसी-मज़ाक का परन्तु बात को स्पष्ट करने के लिए अच्छा है । जिस प्रकार जिह्वा पर रखा रोटी का एक कौर चबाते-चबाते नीचे उतर जाता है, उसको अन्दर भेजने के लिए किसी लकड़ी अथवा अँगुली की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार ईश्वर का नाम जिह्वा पर से अपने-आप मन में चला जाता है । जिस प्रकार अन्दर चले गये अन्न से हमारा अनिच्छा वाला शक्तिशाली मन (भीतरी अचेतन चेतना वाला मन) अंग-प्रत्यंग शरीर का सारा

सामान बनाता है उसी प्रकार जिह्वा पर आया हुआ ईश्वर का नाम मन में उतर जायेगा । मन में जाकर मन का स्मरण (याद) बन जायेगा । स्मरण प्यार भाव, बन जायेगा, यही 'भाव' मेल में रखेगा । अब देखो, हल चलाने वाला कृषक और दुकान पर बैठा हुआ व्यापारी और नौकरी करने वाले सारे ही यदि अन्तर का झुकाव स्मरण की ओर रखें तो किसी के व्यवसाय में कोई अन्तर नहीं पड़ता ।

मनसुख—कृषक को तो कम पड़ेगा, पर सोच-विचार वाले कार्यों में कुछ अन्तर अवश्य ही पड़ेगा । क्यों ?

भगीरथ—आपने ठीक कहा । पर प्रत्येक व्यवसाय वालों को कार्य करने में, सोच-विचार में सारे दिन में से कुछ-न-कुछ अवश्य तो मिलता ही रहता है । जिस प्रकार व्यापारी को एक ग्राहक के चले जाने के पश्चात् दूसरे के आने में समय मिलता है । यदि वह इस अवकाश का सदुपयोग करे तो समय का तो कोई अभाव ही नहीं । इस प्रकार अवकाश के समय ईश्वर को याद करने से वह हृदय मे उतरकर किसी सुरत की गहरी परत में बैठ जाती है जहाँ पर हमारे मन के नीचे की परत में, 'संस्कारों' का निवास है वहाँ पर नाम जा निवास करता है और वहाँ पर जाकर फिर अपने-आप जारी रहता है । फिर तो प्राणों का, शरीर का रुख भी नाम से परिपूर्ण हो जाता है । गुरू जी कई बार कहा करते हैं कि नाम के प्राणों में बस जाने से जन्म मुक्त हो जाता है ।[1]

मनसुख—समझ तो सका हूँ, पर एक बात फिर समझाओ कि मन के बेखबरी चेतना वाले, और 'संस्कारों वाले' स्थान से आपका क्या अभिप्राय है?

भगीरथ—आप देखिये कि, खाना खाते समय हमें पता चलता है कि हम खा रहे हैं । जब खाना पेट में चला गया तो पता नहीं चलता कि क्या हो रहा है । खाना अपने-आप हज़म होता है और रक्त, चरबी, मांस, हड्डी, मगज़, नेत्र, हाथ पाँव बनते रहते हैं । कोई अचेतन चेतना का परत है जो यह कार्य कर रहा है । बुद्धिमान पुरुषों के अनुसार मन की शक्ति अचेत निश्चय वाली शक्ति यह कार्य कर रही है । अतः सोच लो कि हमारे मन के पीछे मन का कोई और परत है जो अपने-आप अनजाने में कार्य कर रहा है । अतः बन्धुजी ! ईश्वर के नाम का जाप करते-करते जब स्मरण बन जाता है तो यह स्मरण ही मन के इन गहरे परतों में चला जाता है, फिर प्राणों में बस जाता है । फिर इस प्रकार आभासित होता है कि हमारा मन प्राण और शरीर किसी रंग में हैं । हाँ जी ! फिर कोई 'अस्ति' का भाव हमारे भीतर भर जाता है और भीतर बैठा स्मरण अपने-आप मन, बुद्धि को स्वच्छ करता है और 'अस्ति' के भाव में रंग देता है । 'अस्ति' जिसका विद्वान् पुरुष 'सत्य' कहते हैं । इस प्रकार 'सत्य' की प्रतीति हो जाती ! ठीक हैं ?

मनसुख—आपकी बातें तो आकर्षित करने वाली हैं, पर स्वाद तो करने से ही प्राप्त होगा । आप एक बात मुझे बताइए कि आप तो यह साधना वर्षों से करते आए हैं, आपको किस प्रकार का आनन्द आभासित हुआ हैं ?

---

१. एक सबद, मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा ।

[बिलावल महला १]

भगीरथ—प्रत्येक जीव के अपने 'अहं' के केन्द्र अथवा 'अहं' के निजी क्षेत्र में जो-कुछ हो रहा है, उसका ज्ञान उसी को है, अन्य किसी का उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं । पर प्रत्येक व्यक्ति अपनी वहाँ पर घटने वाली और घट चुकी का कुछ-न-कुछ वर्णन कर ही सकता है, और दूसरा सुनने वाला उससे कोई-न-कोई अपना विचार बना सकता है । अतः यदि आप इस तरह चाहें तो बता सकता हूँ । आप उससे अपने ख्याल बना लेना । वे इस प्रकार हैं—कि मेरा मन अथवा इन्द्रियाँ अब पूर्ववत् दौड़ते नहीं । गुरू मुझे क्षमा करें, कहीं अहं न कहा जाए, गुरू की कृपा द्वारा कुछ इस प्रकार का-सा हो रहा है कि इन्द्रियाँ अब भोगों की ओर भागती कम हैं । मन कल्पना की ओर अथवा काल्पनिक महलों के निर्माण की ओर बहुत कम भागता है । स्मरण में लगता है । जो अक्षर ईश्वर के नाम के हैं, जो उपदेश है— नाम है—अर्थात् शब्द जो गुरू जी ने प्रदान किया है—उसमें सुरत लिपटती है, जिस प्रकार गायक की आवाज़ वीणा के स्वरों से लिपटती है । भीतर एक 'अस्ति' का भाव प्रत्येक समय रहता है और इससे भीतर एक स्वस्थता-सी उत्पन्न होती है जो निर्मलता और हलकापन का स्वाद लिए होती है । फिर क्या कहा जाए कहा भी नहीं जा सकता, आपा, सुन्दर, स्वच्छ, हलका अथवा स्वस्थ लगता है आपको।[1] कई बार तो ऐसा आभासित होता है कि आपा निर्मल हुआ है और किसी प्रकाश के साथ मिलकर मानो चमक ला रहा है और क्या कहूँ, कुछ आगे कहा भी नही जाता । इसको केवल प्रकाश-मात्र ही न समझ लेना । सतगुरू जी जानें, मुझे तो कुछ पता नहीं, पर मैं सुखी हूँ, रस में हूँ और मेरी इच्छा है कि मेरे अन्तस् में उस सुख का प्रवाह बना रहे । मुझे उस भीतरी निर्मलता के समय विकार अथवा भोग अशुद्ध आभासित होते हैं और वह स्वच्छ दशा बड़ी वांछनीय और अति आवश्यक लगती है और किस प्रकार कहूँ, मैं तो गुरू दाता जी की कृपा द्वारा सुखी हूँ ।

मनसुख—आपके वचन सुनकर मन सुखी होता है । आपका गुरूदाता तो कोई अदेशी कौतुक वाला आभासित होता है, पर मैं भेष धारण करने वालों से संग आ गया हूँ । हाँ जिनके पीछे लाख-लाख व्यक्ति लगे हुए हैं, और जो नाटक-चेटक करके हाथों पर सरसों पैदा कर देते हैं, उन पर लोग बलिहार हो रहे हैं, और लाखों रुपये उनके चरणों में रख देते हैं, पर मैं उनके निकट जा-जाकर, पोल देख-देखकर लौटा हूँ । इसलिए मेरी यह धारणा है कि यदि उन्होंने जाते ही करामात दिखा दी तो मैं मान जाऊँगा । जो पतिआर मुझे लेना है, मैंने उसे हृदय में विचार लिया है । उसका राज मैं बताऊँगा नहीं । जाते ही, सन्मुख होते ही, यदि उन्होंने मेरे मन की मनौत कर दिखाई तो मैं मान लूँगा ।

भगीरथ—यह सोचना कोई गुणकारी नहीं । करामात उनके आगे कोई बड़ी बात नहीं, वे तो 'गुरू अवतार' हैं । करामात तो साधारण-सी बात है परन्तु महान पुरुष लज्जा के कारण करामात दिखाना उचित नहीं समझते । तुमने सागर से बूँद माँगी है, वहाँ पर तो रत्नों के भण्डार भरे हैं, एक बूँद की तो कोई बात ही क्या ? पतिआर लेना तो कोई अच्छी बात नहीं, पर यदि तुम्हारा मन इस तरह मानता है तो कर लो ।

१. नानक भगता सदा विगासु । [जपुजी]

मनसुख—अच्छा, मैंने तो यही निश्चय कर लिया है जो हो, सो हो ।

: ६ :

सत्य के अवतार, सुलह के पैगम्बर, प्यार के देवता, उपकार के ऋषि गुरू नानक देव अपने व्यापारिक व्यवहार में, सुलतानपुर में बैठे हैं । दोपहर का समय है, काम समाप्त हो चुका है, आप पृथक् बैठे हैं, सत्संगी व्यक्ति पास आ बैठे हैं और दो-चार की प्रतीक्षा की जा रही है। गुरू जी द्वारा उच्चरित शब्द का गायन हो रहा है, मरदाना रबाब बजा रहा है, इसी क्षण भगीरथ और मनसुख आ पहुँचे । दोनों ने नमस्कार किया । शब्द समाप्त हुआ ही था। सिर उठाकर अभी दोनों खड़े हुए ही थे कि गुरू जी पातशाह ने उन पर कृपा दृष्टि डाली और मुस्कराकर बोलेः "आओ भाई भगीरथ परोपकारी ! मलयागिरि के चन्दन, अमुल्य पौधों को सुगन्धित देकर सुगन्धित करने वाले । आओ ! लाये हो विवाह के लिए सामग्री और एक जिज्ञासु भी ले आए । (मनसुख की ओर देखकर) मनसुख ! आओ ! मनसुख, आओ, स्वागत । तारन वाले भगीरथ ने तुम्हारे कच्चे को पक्का की छोह लगा दी है । हाँ, तुम्हारे नाम को भगीरथ ने सफलता के मार्ग पर चलाया है ।[1]

भगीरथ--पातशाह, विवाह की सामग्री, जो हमने क्रय की है, हाज़िर है । यह चूड़ा मनसुख लाया है, इसकी ओर से उपहार स्वीकार करें । मुझ दास पर आपने असीम अनुकम्पा की है जो मुझे परोपकारी की उपाधि प्रदान की है । पर मैं तो द्वार का कूकर हूँ, जिसकी आयु व्यर्थ व्यतीत हो रही थी और जो इस द्वार पर आकर जीवनदान प्राप्त करके जिया है। दास ने जानबूझकर कोई भला काम नहीं किया । आपकी आज्ञा कि, लाहौर नगर में एक रात्रि ठहरना है, सुनकर यह सज्जन कारण पूछने लगे । इस प्रकार आपका प्रसंग चल पड़ा । आपके नाम ने, आपकी पवित्र कथा ने मृग-तृष्णा के पीछे भाग-भागकर थके-टूटे मृगमन को शान्ति प्रदान की । यह पूर्ण-रूप से तृप्त होने के लिये चरण-शरण में आया है । मन में पतिआर लेने के लिये प्रतिज्ञा धारण की थी । अब तारणहार आपका विरद है और उद्धार का इच्छुक मुसाफ़िर चरणों की रज में आ खड़ा हुआ है ।

सत्गुरू जी मुस्कराये और मनसुख की ओर देखा । "मनसुख ! सच की ओर से अमावस की रात्रि है । चन्द्रमा डुब चुका है । झूठ के अन्धकार की प्रधानता है ।[2] अतः जिज्ञासु ठोकरें खाते हैं । सत्य धारण करो, सत्य का व्यापार करो, चन्द्रमा के चढ़ने पर ठोकरें क्यों खाएँ ।"

फिर आप विवाह-सामग्री की आवश्यकता वाले की ओर देखकर बोले : लो भैया । ले जाओ और अपने सिर से ऋण उतारो । बिटिया को इतना देना कि जिससे बाद में परिवार की आजीविका चलती रहे । तुम सत्य के प्रकाश में आये हो, लोक-लज्जा के पीछे और मन के झूठे फैलाव में अपनी सामर्थ्य से अधिक व्यय करके दुःखी न होना ।

---

१. पोराणिक भगीरथ ने अपने पितरों को गंगा लाकर तारा था । मनसुख—सुखी मन वाला ।

२. कूड़ अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चड़िआ । [वार साझ महला १]

: ७ :

प्रेमी तो नमस्कार करके, विवाह-सामग्री लेकर और आशीष देकर विदा हो गया परन्तु मनसुख का पतिआना पहुँचते ही पूर्ण हो चुका था। उसके मन में था कि यदि सतगुरू सच्चा है तो जाते ही मुझे मेरा नाम लेकर पुकारे, अतः गुरू जी ने उसको देखते ही उसका नाम लेकर पुकारा था, अतः पतिआना के पूरा होने ने इतना प्रभाव डाला, कि मनसुख ने भगीरथ के साथ वहाँ पर ही निवास कर लिया और 'सतगुरू के दर्शन, करनी जल में कमल की भाँति निर्लिप्त जीवन, मुरग़ाबी की भाँति नै में अभिज्ञ सम्मुख तैरना', देख-देखकर हृदय में अधिक श्रद्धा भर आई। एक दिन आप अकेले बैठे थे। मनसुख ने आकर चरण पकड़ लिये और कहने लगा, "मैं मूर्ख हूँ, मेरा भी उद्धार करो, माया का प्यार तो अन्धकार में फँसाने वाला है, विकारों की ओर खींचने वाला है, तृष्णा के कारण भाग-दौड़, मेरा भी उद्धार करो।"

सतगुरू जी कहने लगे : मनसुख तीन बातें गाँठ में बाँधने वाली हैं :

ईश्वर के नाम में लौ लगानी।

अहं पर विजय प्राप्त करना।

ईश्वर की आज्ञा में चलना।

ईश्वरीय नाम की बातें तो तुम सुन ही चुके हो। नाम के बिना गति नहीं हो सकती। यही सूक्ष्म अथवा निर्विघ्न मार्ग है। ईश्वर के नाम का जाप जपो, जाप करने से स्मरण हो जायेगा। स्मरण मन में, प्राणों में अथवा शरीर में निवास कर जायेगा।'

इसमें निवास करने से और इस प्रवाह में चलने से माया का मोह कटेगा, और ईश्वर का प्यार उत्पन्न होगा। सुरत ईश्वर की ओर झुकाव वाली हो जायेगी। बाहर की ओर से मन की दौड़ मर्यादा में होने लगेगी। इन्द्रियाँ मन के अधीन हो जायेंगी, और खींचातानी का त्याग कर देंगी। 'मन' भीतर जागृत उच्च बुद्धि के अधीन चलने लग पड़ेगा। बुद्धि निर्मल होकर निरंकार की अगवानी में आयेगी। अपने पर काबू बढ़ेगा --

पर साथ वाणी का अभ्यास भी रखो। पढ़ो, गायन करो, अथवा उसका विचार करो। बुद्धि उसके साथ विवेचना में जायगी, मन स्थिर होगा, शीतलता अनुभव होगी। वाणी के अभ्यास से नाम के मुल्य का ज्ञान होता है और नाम में रुचि बढ़ती है। किसी समय नाम से उखड़ने तथा टूट पड़ने पर वाणी रक्षा करती है। यह वाणी गुरू अकाल पुरुष की है, यह धुर से आई है, और धुर को ही ले जाएगी और धुर तक पहुँचा देगी।[१] वाणी मानो एक परिधि है, और नाम मानो एक केन्द्र है बीच का। यह तो है नाम का ढंग।

दूसरी बात यह समझ लो कि हमें हमारे मूल से पृथक् करने वाला हमारे अन्दर बढ़ रहा अहं है। इसको अपने-आपे से निकालकर अलग करके देखना है। एक ओर तो वाणी

१. इह वाणी महा पुरुख की निज घरि वासा होइ ।। [रामकली दखणी ओअंकार महला १]

और नाम हमें अन्तर्मुख करेंगे, दूसरी ओर हमारा यर विचार कि 'अहं' सारे बन्धनों का मूल है, और यह यत्न कि इसको देखना और इससे पृथकता का रुख लेना है, हमें सत्य पर ले जायेंगे ।

जीव के भीतर 'अहं' 'मैं हूँ' का रूप धारण करके अभिमान में आता है तथा ईश्वर और जीव के बीच भूल का पर्दा डाल देता है । 'अहं' मन को बाहर की ओर ले जाता है और 'मैं मेरी' में अपने-आप को फँसा देता है । देखो, जब जीव अकड़ता है और अहंकार करता है तो अहं अपने-आपको 'मैं' में 'अहंकार' में दिखा रहा है । जब लेता है, दौड़ता है, लेकर प्रसन्न होता है, मानता है, भोगता है अर्थात् जब इसको इसकी 'मेरी की' पूर्णता का सामान आवश्यक होता है, अथवा प्राप्त होता है, तो वही 'अहं' कामना बन जाता है । कभी भोग का रूप धारण करता है, कभी लोभ का और कभी मोह का । फिर जब अहंकार को चोट लगती है तो यह क्रोध बनकर प्रकट होता है । यदि यह क्रोध कुछ नहीं कर सकता तो यही क्रोध जलन अथवा ईर्ष्या बन जाता है । अतः यह 'अहं' की सब-कुछ बनता है, इसी कारण 'अहं' ही बन्धन रूप है; जन्म-मरण सारे खेल माया के, इसी में हो रहे हैं । इसी 'अहं की सूझ' ईश्वर के द्वार की सूझ' के ऊपर पड़ा हुआ पर्दा उतार देती है । यह ही मानो रोग-रूप है । नाम की कमाई से यह रोग दूर होगा, पर इसकी यह सूझ नाम के अभ्यास के साथ-साथ ही रखी जाती है । क्योंकि यह सत्संग के कार्यों में भी आकर विघ्नकारी बनती है और नाम जपने के मार्ग में बाधा डालती है । नाम ही से प्राप्त मन की निर्मलता में भी 'मैं ज्ञानी' 'मैं तपस्वी', 'मैं अभ्यासी' के भाव खड़े कर देती है, इसलिए, अहं के रूप ये-ये हैं और इनसे भुलावे में न पड़े यह सावधानता रखनी चाहिये । अर्थात् 'अहं' को पहचानना अथवा जीतना है ।[1]

तीसरी बात है--ईश्वर की आज्ञा में चलना । जगत् में रहने पर दुख-दुख आते हैं, हर्ष-शोक आते हैं, इनकी चोट भीतर में बड़ी गहरी जाती है । वास्तव में यह चोट तो अहं को जाकर लगती है, जिसमें 'मैं मेरी' का निवास है । 'मैं' को जब 'मेरी' की प्राप्ति में बाधा पड़ती अथवा प्राप्त वस्तु छीन ली जाती है, तब यह दुखी होता है । अतः जब भावी के कारण 'मेरी' के पदार्थ क्षीण होते हैं अथवा बिछुड़ते हैं, उस समय जो इसको 'आज्ञा' करके मानता है वह चोट नहीं खाता और अहं से पृथकता प्राप्त करता है । जिन 'पदार्थों' और 'मोह वाले अपनों' को नहीं रहना जो कभी भी हमारे पास नहीं थे, जो मिले थे, और जो बिछुड़ेंगे, वे कभी भी हमारे नहीं थे । उनमें कैसी तृष्णा और कैसा जकड़ने वाला मोह, आये आज्ञा से और गए भी आज्ञा से । हम निरंकार के और निरंकार हमारा । अन्दर जिसके साथ लौ के द्वारा मिल रहे हैं इस बाहर के 'आने' 'प्राप्त होने' फिर 'बिछुड़ने अथवा क्षीण होने' का दुख हमें क्यों ? जो-कुछ हो रहा है, आज्ञानुसार हो रहा है । हाँ, अहं में किए कर्मों के अनुसार ईश्वरीय आज्ञानुसार हो रहा है, हमारा प्यारा ईश्वर है, वो जो कुछ हमारे

---

१. हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ । हउ मैं करि करि जन्तु उपाइआ ।।
हउमै बूझै ता दरु सूझै । गिआन विहूणा कथि कथि लूझै ।।

[वार आसा महला १]

लिये करता है, ठीक है। हमारा प्यार तो दाता के साथ है, दी हुई वस्तु के साथ नहीं। दान देने तथा लेने वाला वह आप है। हम सदैव उस निरंकार के साथ लगे रहें। दुःख-सुख होने के समय जब अहं जोर पकड़ता है, चाहे वह अहंकार का हो, चाहे क्रोध का, चाहे दुख और चिन्ता में डूबने का, सब इस प्रकार का विचार स्मरण के प्रवाह और लौ की धारा को टूटने नहीं देता। मनसुखी, ये तीनों बातें, सुखी मन वाला बना देती हैं।

: ८ :

मनसुख घर वापस नहीं गया। गुरू के प्रेम की डोरी में ऐसा बँधा कि बहुत समय सुनतानपुर में टिक गया। प्रतिदिन सत्संग में उपस्थित होता और कीर्तन करता। गुरू जी की बहुत-सी वाणी कण्ठस्थ की ली और बहुत-सी लिख ही। 'अमृत वेला' में जागने से नाम में लौ परिपक्व हो गई। संसाराग्नि की दाह से बचने के लिये शीतलता प्राप्त करके मनसुख लाहौर चला गया। कभी-कभी दर्शनों के लिये आता, मास-दो-मास गुरू की चरण-शरण में रहता, सत्संग करता, सुखी होता, फिर अपने कार्य-व्यवसाय की देखरेख करने के लिए चला जाता। यह सज्जन 'प्रवान गृहस्थ उदास' का एक चुना हुआ हीरा तैयार हो गया और लाहौर में सिक्खी का एक केन्द्र बन गया।

भगीरथ, जिसके सत्संग की लोग से मनसुख सुखी हआ था गुरू जी के चरणों में ही निवास करने लगा। तब तक गुरू जी के पास रहा जब तक आपने एक नया चोज़ करने का संकल्प किया। भगीरथ गुरू-प्रेम में बहुत ही अनुरक्त रहता था और बिछुड़ नहीं सकता था। जिसने पहले परिश्रम किया था, जिसको कोई फल नहीं लगा था, उसको जब उचित मार्ग प्राप्त हुआ तो इतने में प्रेम में मग्न हो गया कि फिर घर लौटना ही भूल गया।

इस प्रकार समय व्यतीत होता रहा। एक दिल भगीरथ को गुरू जी की आज्ञा हुई कि तुम अपने गाँव मैलसीहां में जाकर रहने लगो। कभी-कभी आकर दर्शन कर जाना और अचल रहना।[1]

भागीरथ सुखी हो चुका था, पूर्ण पद् की प्राप्ति हो चुकी थी, पर प्रेमी इतना था कि इस विरह को भी केवल गुरू जी की आज्ञा जानकर स्वीकार करके घर को लौट गया, पर फिर भी मास-दो-मास के पश्चात् दर्शनों के लिये आता था।

□□

---

१. तथा भगीरथ सो भनयो 'कबि-कबि दरसहु आइ।
पूरब को बिउहार जो तिनहु न अब मन लयाइ।

७ सुलतानपुर से तैयारी

१. वाहिगुरू प्रेम

जिस प्रकार भगीरथ का हाल सविस्तृत आया है उसी प्रकार सुलतानपुर में किए अनेकों उपकार अथवा ईश्वर नामदान के कार्य हुए और होते रहे ।

श्री गुरू जी का सुबह के काम-काज से मुक्त होकर प्रतिदिन का कार्यक्रम इस प्रकार का था:

दोपहर के भेजन के उपरान्त थोड़ा-सा आराम करके आप मोदीखाने का शेष कार्य समाप्त करके फिर सायंकाल में किसी सुन्दर स्थान पर बैठकर आनन्द-मंगलचार करने लग पड़ते । कभी आप जंगलों में किसी एकान्त स्थल पर जाकर बैठ जाते, कभी सत्संग में, परन्तु रात्रि में एक पहर रात्रि व्यतीत होने तक कीर्तन होता रहता । आप भी ईश्वर-प्रदत्त ईश्वरीय नाद-कण्ठ रखते थे, उठते-बैठते, चलते-फिरते सत्संग अथवा एकान्त, कीर्तन में बैठे अथवा वैसे ही बैठे अपने प्रियतम वाहिगरू के प्यार में कभी-कभी इस प्रकार का गायन करते कि ऐसा लगता मानो चलती हुई नदियाँ और उड़ते हुए पक्षी सुनने के लिए खड़े हो गए हों ।

आप अन्य गृहस्थों की तरह अपना काम-काज करते, गृहस्थ कहलाते पर, 'उदासीन गृहस्थ' का नया मार्ग यहाँ पर रहते हुए आप ही ने दिखाया । जगत के साथ सुन्दर व्यवहार पर हृदय में इस ओर से साधारण ढंग की उदासीनता थी । चाव, उत्साह, रंग रस, आकर्षण, इच्छा, बिरह, उत्साह, प्यार, प्रीति सारी वाहिगुरू के चरणों में अर्पित था । रात्रि का पहला और पिछला पहर तो हरि यश के कीर्तन में और ध्यानमग्नता में व्यतीत होते थे । कई बार ऊपर छत पर ध्यानमग्न बैठे रहते, कई बार रात्रि-भर जंगलों में घूमते-फिरते रहते और कई बार एक ही स्थान पर सत्संग में मूक-मग्न बैठे रहते और रात्रि व्यतीत हो जाती । कहने की बात तो यह कि 'एक ईश्वरय रंग' एक 'भीतरी प्यार' पूरे यौवल में ठाठें मारता रहता था ।

यदि कहीं आपको थोड़े से लोगों का उद्धार करना होता तो यह रंग-रूप, व्यवहार और दैवी प्यार इसी प्रकार सहज रंग में चलता रहता पर जगत तो जल रहा था दुःख और कातर पुकार उठकर आकाश तक पहुँच रही थी, अतः कई बार आप चौंक उठते और जगत के कल्याण के लिए प्रार्थना करते थे । वह जगत के उद्धार का ईश्वरीय रहस्य जो उनके शारीरिक जीवन के कण-कण में व्याप्त था, उनको उदासीन बनाया करता था । उन पर एक शान्तिमय दिलगीरी छा जाया करती थी और वे प्रार्थना में मग्न होकर बहुत समय तक स्वामी के चरणों में पड़े रहा करते थे ।

'वाहिगुरू का प्रेम' हमारे लिए एक वाक्य है, एक बात है । 'वाहिगुरू है, की ध्वनि हमारे कानों में पड़ी है, हम प्यार करें तो परमपद की प्राप्ति करें ।' यह बात भी हमने जान ली है । कभी-कभी

हम प्रार्थना तथा पाठ भी करते हैं, पर जो ईश्वर-प्रेम आपका था उसको हम नहीं समझ सकते । चाहे कितना ही जोर क्यों न लगाएँ, तब भी हम उसका पूरा अनुभव नहीं कर सकते । जिस प्रकार हम सूर्य को देखते हैं उसी प्रकार आपको ईश्वर प्रत्यक्ष था । जिस प्रकार माता को बच्चे के साथ प्यार होता है, जिस प्रकार बच्चे को माता की लौ होती है, जिस प्रकार लोभी का धन का प्यार होता है, जिस प्रकार स्त्री को पति का आकर्षण होता है, अथवा चुम्बक को लोहे का आकर्ष होता है उसी प्रकार का नहीं परन्तु इससे कहीं अधिक आपको अपने प्रियतम वाहिगुरू का प्यार था । दर्शन-शास्त्रों के वेत्ता दार्शनिक युक्तियों और तर्कों द्वारा यह सिद्ध करते हैं कि ईश्वर है । प्रकृति के प्रेमी करतार के लक्षणों से उसकी पहचान करते हैं, योगीजन ध्यान टिकाकर एकागृता में उसका प्रभाव अनुभव करने का यत्न करते हैं, भक्त लोग अपने-आपमें भक्ति-भाव उत्पन्न करके यश गाते हैं, जिससे यश गाने से रस उपजे और दाता से भेंट हो । पर गुरू नानक देव जी ईश्वर को अपने समक्ष प्रत्यक्ष देखते थे । उनके लिए ईश्वर एक छिपी हुई पर जानने योग्य बात, नहीं थी, 'ईश्वर है' केवल मान लेने वाली बात नहीं थी, उनके लिए ।

''वाहिगुरू है'' एक अचल, स्थिर, एक सच्चा, प्रत्यक्ष सत्य एक प्रत्यक्ष दर्शन था और उसके साथ असीम प्यार (जो अद्वितीय है) इस प्रकार का था कि उसके बिना रहना हो नहीं सकता था । उनका वास्तविक रंग अतंस का वास्तविक लगाव वाहिगुरू प्रेम था और जो कुछ वे करते थे, वह ऊपरी था, ऊपरी काम, ऊपरी दिल से दिखावट के साथ भी निभ जाता था क्योंकि अंदरली दिव्य-शक्ति वाले की दिखावट से भी किया कार्य हमारी सारी लगन के साथ किए गए कामों से अधिक अच्छा निभता है । जिस प्रकार हमें जो दीखता है, मीठा लगता है और 'अद्दष्ट' अपरिचित लगता है यद्यिप हम 'अद्दष्ट' के जिज्ञासु भी हों, तथापि उसमें वह लग्न नहीं बैठती जो दृष्टमान पदार्थों अथवा पुरुषों में बैठती है। इसी प्रकार आपको ईश्वर तो हमारे 'दृष्टमान' की भाँति दीखता था । हमारा 'दृष्टमान जगत और 'इसकी मनोहर मूर्तियाँ अपरिचित दीखती थीं । रहते इसी में थे, चलते-फिरते थे, व्यवहार इसी में करते थे, इसी का उद्धार करना चाहते थे, पर इसमें, वृत्ति को लिप्त नहीं रखते थे । उनका 'वाहिगुरू विश्वास' एक अद्वितीय बात है 'उनका वाहिगुरू प्रेम' एक अद्वितीय कथा है, जिसका उदाहरण जगत के इतिहास में नहीं मिलता । उनका 'वाहिगुरू विश्वास, वाहिगुरू प्रेम' उनकी वाणी से इस प्रकार अद्‌भुत अथवा दृढ़ सिद्ध होता है कि किसी संशय की बात शेष नहीं रह जाती । वे एक शाश्वत प्रत्यक्ष ईश्वरीय लगाव में रहते थे, इस एक-रसीय रस में आप निमग्न रहते थे, यह प्रत्यक्ष दृश्य उनके जीवन के साथ एक रूप होकर पिरो चुका था, वे इस (ईश्वर) में थे और यह (ईश्वर) उनमें था 'ओति पोति रविआ रूप रंग' जो लिखा है सो ईश्वर और गुरू नानक की भेंट थी । उनके हृदय में ईश्वरीय प्रेम अथवा ईश्वर में लग्न ईश्वर के साथ एकता थी, उनमें ईश्वर का निवास था, वे ईश्वर में निवास रखते थे । अब संसार से उनकी वह पहली उदासी नहीं थी, काम-काज करते थे, पर कामकाज करते हुए भी वे फँसे हुए दिखाई नहीं देते थे । ईश्वरीय लगन वैसी-की-वैसी ही थी । जगत से उदासी की हिलोरें इस प्रकार थीं कि यह कोई मनोहर प्रभाव उन पर नहीं पड़ने देती थी, पर अब धाय और 'दया' की हिलोरें उठती थीं, अनेक बार सारे जगत को

अपनी तरह ईश्वरीय प्रेम में रंगकर सुखी कर देने की तरंगें उठती थीं। कई व्यक्ति तो इस रंग में रंगे जा चुके थे, पर अब जदाधार की ओर से, जगत-रक्षा तरंगें आती थीं, इसलिए अनेक बार सारी-सारी रात चुपचाप बैठे रहते थे ।

२. गुरू-रूप होकर अकाल पुरुष मिले और वरदान मिला

एक दिन पहरी रात रहते उठकर आप वेईं नदी को गए । किनारे पहुँचकर कपड़े उतारे और सेवक को दिये । आप नदी में घुसे । दास को कुछ समय तक नदी में स्नान करते अथवा तैरते दिखाई दिये, पर फिर दृष्टि से ओझल हो गए । दास सूर्योदय तक वहाँ पर बैठा रहा, अन्त में निराश होकर लौट आया और आकर खान को सूचित किया । उधर घर वालों को भी सूचना दी गई । सभी मिलकर वेईं नदी पर आए । इतने में नवाब भी घोड़े पर सवार होकर आया, केवट बुलाए गए, नदी में बड़ी खोज़ की गई, दो-चार मील नीचे तक गए, पर कुछ पता न चला । अन्त में यह समझ कि नदी में डूबकर बह गए हैं, सारे दिलगीर होकर घर आ गए ।

जैरामजी इस घटना की सूचना तलवण्डी भेजने लगे, पर बहिन नानकी ने रोका और कहा, मेरा भाई ईश्वरीय सौन्दर्य है, उसको कौन-सी नदी डुबा सकती है ?" जिसके प्रकाश से सब को प्रकाश प्राप्त होता है उसको कौन अँधेरे में ढकेल सकता है ? यह तो कोई कौतुक है और पिछले कौतुकों से बड़ा कौतुक है, प्रतीक्षा करो और देखो कि क्या खिलाव खिलता ।' बात क्या थी कि सारे ही डूब जाने वाले विचार में पड़ गये थे, पर एक दीदी का विश्वास अचल था । उसको कोई यह निश्चय नहीं करा सकता था कि तारनहार गुरू जी डूब गए हैं ।[१]

मरदाना अपने प्यारे स्वामी के प्रेम में वेईं नदी के किनारे-किनारे चक्कर लगाता, कीर्तन करता और विरह के शब्द गाता फिरता था । सत्संगी प्रेमी वनों में उदास होकर वाणी गाते फिरते थे । तीन दिन इस तरह व्यतीत हो गये, पर जगत-रक्षक जी का कोई पता न था । उधर उनके साथ जो घटना घटी वह अकथनीय है, क्योंकि उनके ये तीन दिन वहाँ पर व्यतीत हुए, जिसको हम दिन नहीं कह सकते, क्योंकि वहाँ पर न देश है न काल । हमारे तीन दिन उनके अकाल तथा अदेश के ठिकाने पर व्यतीत हुए जहाँ न बोलना है और न सुनना, जहाँ न 'मैं' है न 'तू' पर जहाँ अदेश अकाल रंग में, किसी और सम्पूर्ण रंग में सब-कुछ है । वह दिव्य सौन्दर्य के साथ और दिव्य प्रकाश से युक्त है ।

यहाँ 'अनेकता' है, 'रूप' है और नाम है । वहाँ पर एकता है और जो कुछ है सो मूल है, उसका नाम रूप-रंग कुछ कहा नहीं जा सकता, वह 'है' बस । सर्व-चेतना वहाँ पर है, सर्व-प्रेम वहाँ पर है, सर्व-आनन्द वहाँ पर है । पर है 'अस्ति' का रूप । जिस रूप में वह वाणी द्वारा कहा नहीं जा सकता; कानों द्वारा सुना नहीं जाता, मन द्वारा समझा नहीं जा सकता । वहाँ का जो कुछ है, वह अगम है, अगोचर है । पर "है" अवश्य, और वह जिस प्रकार अदेश-अबल है वहाँ जो कुछ होता है वह भी अदेश-अकाल है, वह है और वहाँ का 'अस्तित्व' दोनों अकथनीय हैं । वे आप

१. गुरू नानक प्रकाश ।

से सम्पूर्ण है और जो कुछ करता है वह सम्पूर्ण है। आप पारब्रह्म हैं जो कुछ करता है हमारी समझ से परे है।

फिर जगत-रक्षक के साथ वहाँ पर जो व्यवहार हुआ, उसका या तो व्यवहार करने वाला जाने या वह जाने जिसके साथ व्यवहार किया गया है, पर हमारी समझ के लिए— हमारी बोली और हमारे ढँग में, हमारे सामान की भाँति जो कहा जा सकता है, श्रीगुरू जी ने अपने मुखारबिन्द से इस प्रकार कहा है–

हउ ढाढी वेकारु कारै लाइआ ।।
राति दिहै कै वार धुरहु फुरमाइआ ।।
ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ ।।
सची सिफति सालाहि कपड़ा पाइआ ।।
सचा अम्रित नामु भोजन आइआ ।।
गुरमती खाधा रजि तिनि सुखु पाइआ ।।
ढाढी करे पसाउ सबदु बजाइआ ।।
नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ ।।२७।। सुधु ।।[1]

जन्म साखी में हमारी समझ के लिए इस प्रकार बताया है कि अदेशों से कोई सौन्दर्य आया और गुरू जी की आत्मा को वाहिगुरू के देश ले गया। जिसके द्वार पर देवी-देवता, अवतार-परी-पैगम्बर खड़े सीस झुकाते हैं। उस स्थान पर गुरू जी को ईश्वर के पास ले गये।

तब अमृत का कटोरा भर कर आज्ञा के साथ मिला।

आज्ञा हुई, "नानक यह असृत मेरे नाम का प्याला है, तुम पीओ" तब।

गुरू जी ने आज्ञा मानी, प्याला पी लिया। साहब मेहरबान हुआ --[2]

"नानक मैं तेरे साथ हूँ, मैंने तुझको निहाल किया है और जो तेरा नाम लेंगे उन सबको मैंने निहाल किया है।" "तुम जाकर मेरा नाम जपो और लोगों से भी जपाओ और संसार से निर्लेप रहो; नाम, दान, स्नान, सेगा-स्मरण में रहो। मैंने तुम्हे अपना नाम दिया है, तू यही काम कर" तब गुरू जी ने सीस झुकाया और खड़े होकर ईश्वर की यह स्तुति की--

कोटि कोटि मेरी आरजा पवणु पीअणु अपिआउ ।।
चन्दु सूरजु दुइि गुफै न देखा सुपनै सउण न थाउ ।।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ।।१।।
साचा निरंकार निज थाइ ।।
सुणि सुणि आखणु आखणा जे भावै करे तमाइ ।।१।। रहाऊ ।।
कुसा कटीआ वार वार पीसणि पीसा पाइ ।।
अगी सेती जालीआ भसम सेती रलि जाउ ।।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ।।२।।

---

१. "माझ की वार महता १" में है।
२. पुरातन जन्म साखी।

पंखी होइकै जे भवा सै असमानी जाउ ।।
नदरी किसै न आवऊ ना किछु पीआ न खाउ ।।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ।।३।।
नानक कागद लख मणा पड़ि पड़ि कीचै भाउ ।।
मसू तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ ।।
भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ।।४।।२।।

[सिरी रागु महला १]

इस पर एक ध्वनि आई—
"नानक मेरी आज्ञा तेरी दृष्टि में आई तूँ मेरी आज्ञा की स्तुति कर ।"[१]
तब गुरू जी बोले —
हे पिता जी ! जीव क्या कह सकता है, जो मैंने देखा है वह अकथनीय है !
तू है —
"तब श्री गुरू जी ने राग आसा में वाणी कही —[२]
एक ओअंकार सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।। जपु ।।
आदि सचु जुगादि सचु ।।
है भी सचु नानक होसी भी सचु[३] ।।१।।
तब फिर सच्चे पुरुष से आज्ञा हुई --

"नानक ! जिस उपरि तेरी नदरि
तिस उपरि मेरी नदरि ।
जिस उपर तेरा करम ।
तिस उपर मेरा करम ।
मेरा नाउं पारब्रह्म परमेसरु ।
तेरा नाउं गुरु परमेसरु ।"

तब गुरू नानक चरणों पर झुक गये, सिरोपाउ (सिरोपाल) ईश्वर की ओर से गरू जी को प्राप्त हुआ ।[४]

तब गुरू जी ने सनम्र यह गाया—

तू दरीआउ दाना बीना मैं मछुली कैसे अंतु लहा ।।
जह जह देखा तह तह तू है तुझ ते निकसी फूटि मरा ।।१।।
न जाणा मेउ न जाणा जाली ।।
जा दुख लागै सा तुझै समाली ।।१।। रहाऊ ।।

---

१. पुरातन जन्मसाखी ।
२. हाफजाबादी जन्मसाखी ।
३. 'ओअंकार' से 'हऊमै कहै न कोइ' तक वाणी इस समय उच्चारण की होगी, क्योंकि 'हुक्म की स्तुति कर ईश्वर ने कहा है ।' वैसे सारी जपुजी नामा वाणी, हुकमी (ईश्वर) अथवा हुकम (आज्ञा) की ही व्याख्या है ।
४. पुरातन जन्मसाखी ।

तु भरपूरि जानिआ मै दूरि ।।
जो कछु करी सु तेरै हदूरि ।।
तू देखहि हउ मुकरि पाउ ।।
तेरै कंमि न तेरै नाइ ।।२।।
जेता देहि तेता हउ खाउ ।।
बिआ दरु नाही कैदरि जाउ ।।
नानक एक कहै अरदासि ।।
जीउ पिंडु सभु तेरै पासि ।।३।।
आपे नेड़ै दूरि आपे ही आपे मंझि मिआनो ।।
आपे वेखै सुणे आपे ही कुदरति करे जहानो ।।
तो तिसु भावै नानका हुकमु सोई परवानो ।।४।।३१।।

[सिरी राग महला १]

पुरातन जन्म साखी में लिखा है कि आरती वाला शब्द 'गगन मै थाल'' सतगुरू जी ने इस समय उच्चारण किया ।

उस समाचार को जो अनन्त अथवा अनाद, देशकाल-रहित अपने सचखण्ड में घटा था, जिसका अनुभव जिसने देखा है, इस प्रकार समझने समझाने का यत्न हुआ है । अर्थात् ईश्वर की ओर से सतगुरू जी की परमपूर्ण अथवा शुद्ध आत्मा में ईश्वरीय शक्ति दैवी, शक्ति किसी इस प्रकार के रंग में भर गई कि जसको भर गई कहना भी ठीक नहीं । उसका प्रयोजन यह था कि गुरू जी धुर से जगत की रक्षा के लिए आये थे और अब तक संसार के सभी तजुरबे करते इस दुखों से भरे मनुष्य-मण्डल के दुःख आप भी सहकर पूरे जानकार हो गये थे, अपने काम को आरम्भ कर दें । उनका गुरूत्व आरम्भ से ही पूर्ण था, उनका झुकाव अथवा लग्नपूर्ण वाहिगुरू के चरणों में अभेद था । अब वाहिगुरू जी ने इस मनुष्य-शरीर में दर्शन देकर अपनी (अर्थात् वाहिगुरू जी की) टेक तथा संसार के उद्धार के लिए आज्ञा की । उन पर पहली अनुकम्पा थी ।

भाई गुरुदास जी के कथनानुसार--''पहला बाबे पाया बख्श दर'' और जन्म साखी के अनुसार ईश्वर ने कहा कि तेरा नाम ''गुरू परमेश्वर'' सो उनमें ईश्वरीय शक्ति का निवास पहले से ही पूर्ण था और अब पारब्रह्म की आज्ञा सारे जगत में सत्यनाम को बिखेरने की थी । इसी भेंट अथवा वरदान प्राप्त करने को श्री गुरू जी ने आप बताया है—

''अपरंपर पारब्रहमु परमेश्वर नानक गुर मिलिआ सोई जीउ ।।''

[सोरठ महला]

सो इस मनुष्य-शरीर में गुरू अकाल आप थे पुरुष और कोई देहधारी गुरू, श्री गुरू जी का गुरू नहीं था, यह बात उन्होंने आप बताई है ।[1]

बीजउ सूझै को नहीं बहै दुलीचा पाइ ।।
नरक निवारणु नरह नरु साचउ साचै नाइ ।।४६।।

[रामकली महला १ दखणी ओंअंकार]

१. टीका जपुजी रचयिता शंकरदयाल ।

गुरू नानक देव जी को "मनुष्य योनि से आया हुआ अकाल पुरुष कहना" उनकी अपनी शिक्षा में वर्जित है । उनके केवल मनुष्य कहना भर उनका भारी अपमान करना तथा झूठ बोलना है । वे जो कुछ थे, कहा नहीं जा सकता । उदाहरण एक सोने के टुकड़े का है, जिसको अग्नि में अग्नि का प्रवेश उसको अग्नि-रूप कर जाता है । जब वह स्वर्ण भी है और अग्नि भी । उसमें अग्नि के सारे गुण भी हैं और वह स्वर्ण भी है । यह दृष्टान्त भी पूरा नहीं बैठता क्योंकि दृष्टान्त देशकाल का है और उनकी ईश्वरीयता का सम्बन्ध अदेशी, अकाली तथा आदि का सम्बन्ध है, पर यह दृष्टान्त कुछ ख्याल दे जाता है । अतः "गुरू नानक देव गोबिन्द रूप" पंचम सतगुरू, श्री गुरू अर्जुन देव जी ने लिखा है । इसीलिए जन्म साखी में गुरू नानक देव जी को ईश्वर की ज़बानी "गुरु परमेश्वर" लिखा है । वहाँ पर ईश्वर अपने-आपको "पारब्रह्म परमेश्वर" कहता है और गुरू जी को 'गुरू परमेश्वर' कहता है । इसी रहस्य को भट्टों ने 'परतखहरि (प्रत्यक्षहरि) और 'आपनारायण कलाधारि जग महि परवरिअऊ" कहकर प्रकट किया है और भाई गुरूदास जी ने कहा है-

"निरंकार नानक देउ निरंकार आकार बणाया"

[वार २४-२५]

गुरू जी ने अपने पूर्ण अहं के अभाव में अपने-आपको वाहिगुरू का ढाड़ी (स्तुति गाने वाला) लिखा है और अपनी ईश्वरीय दैंन की प्राप्ति का स्वयं पता दिया है—

हउ ढाढी वेकारु कारै लाइआ ।।
राति दिहै कै वार धुरहु फुरमाइआ ।।
ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ ।।
सची सिफति सालाहि कपड़ा पाइआ ।।
सचा अंम्रित नामु भोजनु आइआ ।।
गुरमती खाधा रजि तिनि सुखु पाइआ ।।
ढाढी करे पसाउ सबदु बजाइआ ।।[1]
नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ ।।२७।।

[माझ की वार महला १]

यहाँ पर गुरू जी ने पहले अपने अहं का "पूर्ण रूप से अभाव" दिखाया है, जिसके सम्बन्ध में अन्य अवतारों अथवा पैगम्बरों ने अपना आत्मिक ईश्वरीय सन्देश बताते समय "मैं" में बताया है । उनके उपासक उसको उनकी रूहानी-वसीकारता वर्णन करते हैं, परन्तु इएमें अहं का लेश आ जाता है । सतगुरू ने यहाँ पर दाव नहीं खाया, आपने-आपको वाहिगुरू का ढ़ाड कहकर और बेकार कहकर अहं का अभाव बताया है । पर यह बात उनके नम्र होने की अथवा आकाशी, आत्मिक, ईश्वरीय वास से रिक्त होने का तर्क नहीं । आपने ईश्वरीय कृपा की बड़ाई करते हुए अपने रुहानीवास अथवा ओज का इस प्रकार वर्णन किया है —

१. इस पंक्ति का अर्थ है कि मैंने ईश्वर की अमृत-रूप भक्ति का प्रचार किया ।

ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ ।।

वहाँ के सच्ची प्रशंसा, अमृत नाम दैन के प्राप्त होने का पता दिया, उसी नामदैन का जगत में 'प्रसार' अथवा प्रचार करना अपना ईश्वरीय कर्तव्य समझा और अन्त में पूरे ईश्वर को पूर्णरूप से प्राप्त कर लेने ईश्वरीय रंग में रंगे रहने का पता दिया । "जैसी मैं आवै खसम की बाणी" अथवा "बीजऊ सूझे कौ नहीं बहै दुलीचा पाइि" आदि स्थानों पर उनके ईश्वरीयवास का पता उनकी अपनी बाणी से चलता है । अतः वाहिगुरू को गर्भयोनि में आकर 'नानक रूप' में प्रकट हुआ कहना भी नहीं बनता, पर आपको निरा मनुष्य कहना भी असत्य कहना है । वे ईश्वरीय सौन्दर्य के स्रोत, वे पूर्ण ब्रह्मज्ञान के दाता, ईश्वरीय रंग में रंगे, वे ईश्वरीय गुण, दैवी-शक्ति तथा बल के भरपूर भरे वे ईश्वरीय गुणों के दीप्त सुर्य, उदैव ईश्वर के रंग में लीन, अन्दर-बाहर मछली का भाँति वाहिगुरू-रूपी नीर में निवास करने वाले, तीनों कालों में और अकाल अवस्था में कभी भी अपने स्वामी से न बिछुड़ने वाले थोड़ी दूरी में आने वाले अन्तरआत्मा में उदा मिल रहे, प्रकाश-ही-प्रकाश 'गुरू नानक देव गोविन्द रूप' थे, हैं और होंगे । इस प्रकार के उनके अस्तित्व के सम्बन्ध में भाव वाली सतगुरूओं की वाणी, भट्टों के सवैये और भाई गुरूदास अथवा भाई गुरूदास सिंह (दूसरे भाई गुरुदास की वाणी) में स्पष्ट है । देश में पाताशाह जी (गुरू गोबिन्द सिंह जी) ने भी अपने दरगाह में जाने, और पुत्र की बड़ाई प्राप्त करने का हाल इसी प्रकार बताया है ।[२]

पर यह कहते हुए वे अहं में नहीं जाते, लेश विद्या में भी नहीं जाते, निज को ढाढी अथवा दास कहते हैं, नम्रता करते हैं पर अपने ईश्वर के आगे पर साथ ही अपने ईश्वरीय दास की ओर से ईश्वर के रंग में भरपूर होने, ईश्वरीयता, दैवी-शक्ति के साथ लबालब होने से कभी इन्कार नहीं करते और आप इसके पते भी देते हैं और अपना ऊँचा ईश्वरीय दास साफ बताते हैं ।

यह अहं का अभावपूर्ण है और यह सत्य का प्रकाश पूर्ण है ।

अहं का अभाव करते इस प्रकार की नम्रता नहीं करते कि सच अन्तध्यान हो जाये और उनके वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में गलत बातें उत्पन्न हो जायें । न सत्य का वर्णन करते हुए इस प्रकार के ढंग में चले जाते हैं कि जिससे अहं चमकने लगे । केवल उच्चारण में ही नहीं कई एक कथाओं में उनके शुभ कर्मों से उनके ईश्वरीय दास का भी पता मिल जाता है । काश्मीर में पण्डित ब्रह्मदास जब गुरू जी से मिलकर समझ-बूझकर फिर डोलता है, तब गुरू जी उसको कहते हैं; जाओ गुरू करो । उसने पूछा, "कहाँ मिलेगा" तब आपने पता दिया "वहाँ ।" एक मन्दिर में एक लाल रंग के वस्त्रों वाली मूर्ति ने उसको पीटा, ब्रह्मदास ने पूछा, मैं तो गुरू की खोज करता चला आया हूँ, उत्तर मिला "यह अब तक तेरा गुरू रहा है, यह माया है।" उसने पूछा, "मुझे तो सच्चा गुरू करना है," उत्तर मिला, "सच्चा गुरू तो वही था, जिसके पास से तुम आये हो । तब ब्रह्मदास गुरू जी

---

१. बसंत महला ५ ।

२. पंचम गुरू जी के कथनानुसार—'जिन्हा न बिसरै नामु से किनेहिआ ।। भेदु न जानऊ भूलि सांई जेहिआ ।।" और दशम गुरू के अनुसार "हरि हरिजन दोऊ एक है" आदि वाणी इस प्रकार की है जो हरिजन अथवा हरि में भेद नहीं बताते और गुरू जी तो थे ही वाहिगुरू के 'रूप का अवतार ।'

के चरणों पर आ पड़ा, तब गुरू जी के नाम-दान देने से परमेश्वर प्यार में रंगा गया, पुस्तकों का बोझा डाल दिया और सुखी हो गया। इससे स्पष्ट है गुरू जी का ईश्वरीय वास।

इस ईश्वरी दास के दर्जे का नाम जो मनुष्य से बहुत ऊँचा है--देखिये, देवी-देवता, पैगम्बर, अवतार सारे मनुष्य के दर्जों से भी ऊँचा है—गुरू है। गुरू वाणी में इसको गुरू अथवा सतगुरू कह के बताया गया है। गुरूपद का अर्थ केवल शिक्षा अथवा अध्यापक हो चुका था, इसलिए जन्म साखी में ईश्वर जी गुरू नानक जी को 'गुरू परमेश्वर' का नाम दिया है, अर्थात् वही गुरू हैं, पर जिनमें परमेश्वर इस प्रकार निवास करता है कि वह परमेश्वर से भिन्नता, अन्तर, दूरी, बिछोह में तीनों काल नहीं आ सकते। परमेश्वर उनसे कभी भी जुदा नहीं हो सकता। वह 'परमेश्वर गुरू' या 'गुरू परमेश्वर' हैं। यही ईश्वरीय रहस्य पंचम सतूगुरू जी ने 'कोटि ब्रह्मण्ड को ठाकुरु सुआमी' नामक शब्द में निरूपण किया है। भाई गुरूदास सिंह (द्वितीय) ने कहा है "वहु प्रगटिआ पुरख भगवंत रूप' अथवा भट्टों ने कहा है 'भनि मथुरा कुछ भेद, नहीं गुरू अरजनु प्रत्यक्ष हरि, यह सारे शब्द— गोबिन्द रूप, भगवंत रूप, प्रत्यक्ष हरि उसी तात्पर्य के हैं, जो जन्मसाखी का पद 'गुरू परमेश्वर' है। यह वह दर्जा है, जो वाहिगुरू योनि— में आने का बताने वाला नहीं है। जो 'परम ब्रह्म परमेश्वर' के अपने प्यारे का है, जो उसके साथ निरन्तर अभेद मेल में है, पर जो मनुष्यों, दार्शनिकों, गुरूओं, पैगम्बरों, अवतारों से ऊँचा है। इसमें ईश्वरीय दर्पण का सादृश्य है, जो ईश्वरीय रूप को सांगोपांग प्रत्यक्ष करके दिखाता है और जिसमें गुप्त प्रकट संसार की सभी जीवन-शक्तियाँ, और दामनिक शक्तियाँ और वास होता है, जो केवल उपदेशदाता नहीं होता, पर इससे अधिक 'जीवनदान' का दाता होता है।

"जीअ दान दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए ॥"

यह गुरू की शक्ति है। अपने-आपमें से अपने खजाने में से जीवनदान देकर दाताजी मृतकों को जीवित करते हैं और जगत में कर्मबद्ध होकर, बन्दियों के बन्दीखाने में जाने की भाँति नहीं आता, बल्कि परम स्वतन्त्र होकर, परोपकार के लिए जगत के उद्धार के लिए जगत में आता है। जिस प्रकार उपदेशक अथवा डॉक्टर बन्दीखाने में परोपकार करने के लिए जाते हैं। वे कर्मबद्ध होकर बन्दीखाने में नहीं जाते। इसलिए गुरू जी को जन्म-मरण-रहित कहा जाता है।[1]

हाँ जी! उस उपकारी के लिये आये परमेश्वर रूप 'गुरू' गुरू नानक देव जी ने अब सचखण्ड से मृत्युलोक की ओर रुख किया, सुलतानपुर आए और अपने निवास डेरे पर आए। डेरे का अपना समान लुटा दिया। लोग आ जुड़े, खान भी सुनकर आया, क्योंकि, सभी लोग गुरू जी के जीवन के बारे में निराश हो चुके थे। तीसरे दिन फिर जल में से तैर आया समझकर सभी अचंभित हो रहे थे। इस समय गुरू जी का चेहरा एक बड़े आश्चर्ययुक्त रंग में दमक रहा था। खान ने पूछा, 'नानक! तुम्हें क्या हुआ' पर गुरू जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। लोग कहने

---

१. जनम-मरन दुहहू मै नाही जन परउपकारी आये ॥
जीअदानु दे भगती लाइनि हरि सिंऊ लैनि मिलाए ॥ [सूही महला ५]

लगे 'देखो चेहरा किस प्रकार दमकता है, बोलता नहीं, पर माल लुटा रहा है, उसने नदी में कोई चोट खाई है। जब गुरू जी बोले नहीं, तब नवाब दिलगीर होकर चला गया। इधर गुरू जी ने तनके एक साफ़े को छोड़कर सब कुछ लुटा दिया और निर्जन में जा डेरा जमाया, पर मरदाना रबाब लेकर पास जा बैठा।'[1] अन्य प्रेमी भी जा बैठे, दूसरे मतों के साधू भी जा बैठे, पर आठ पहर न बोले न चाले। घर वाले भी आए, सभी देखकर लौट गये, बोले नहीं। चेहरा एक सौन्दर्य की एक लपट-सा लगता था और नेत्रों से मानो कुछ बरसता था।

३. मसजिद

गुरू जी का इस प्रकार जीते-जागते प्रकट हो जाना, माता सुलखणी के लिये अति प्रसन्नता का कारण था, पर जब सुना कि अपना मरदाना डेरा जहाँ आये-गयों से मिलते थे लुटा दिया है और बोलते नहीं और निर्जन में बैठे हैं तो बहुत दुःख हुआ। ननद से कहा कि कोई उपाय करो, न जाने वन में किसी बला ने कोई चोट कर दी हो। अड़ोस-पड़ोस से भी लोग नानकी दीदी को कहने लगे कि भाई को कोई उपाय करो, कोई मुल्ला-पण्डित ले जाकर झाड़ा-औषिध कराओ। पर दीदी कहती थी 'वह भी एक कौतुक है, यह भी एक कौतुक है, भैया ईश्वरीय ज्योति हैं, उसमें जो होता है, सो ठीक हैं सोई भला है।' पर लोगों ने कहा न माना, रिश्तेदार और घर वाले एक मुल्ला को ले गये, वह कुछ झाड़-फूँककर के तावीज़ तैयार करने लगा पर आगे से आवाज़ आई :—

ध्रिगु तिना का जीविआ जि लिखि लिखि वेचहि नाउ ॥
खेती जिनकी, ऊजड़ै खलवाड़े किआ थाउ ॥

[सारंग की वार महला १]

कोई आखै भूतना को कहै बेताला ।
कोई आखै आदमी नानकु वेचारा ॥ [मारु महला १]

यह देखकर मुल्ला चला गया कहने लगा कि यह फ़कीर है, इसको कोई चोट नहीं लगी।

अगले दिन गुरू जी बोले और घेर कर बैठे हुए सज्जनों को यह वाक्य सुनाई दिया--

'ना कोई हिन्दू है ना मुसलमान।'[2]

बात फैल गई, हिन्दुओं में तो कोई शक्ति थी ही नहीं, पर काज़ी जल उठा, कि इसकी दृष्टि में कोई मुसलमान ही नहीं रहा, यह तो हमारे दीन (धर्म) पर आघात करता है। उसने नवाब के पास शिकायत की। नवाब ने कहा, नानक के पीछे मत पड़ो, यह तो कोई अवतार दिखाई देता है, फकीरों के पीछे नहीं पड़ना चाहिए, यदि नानक फकीर न होता तो इतनी अच्छी नौकरी क्यों छोड़ता ? डेरा क्यों लुटाता ? क्यों वनों में जाकर बैठता ? पर काज़ी अथवा मुफ्ती ने बल दिया कि जो कुछ नानक कह रहा है इसमें हमारे धर्म का अनादर है। अन्त में नवाब ने गुरू जी को

१. अनुमान है कि 'मोती त मन्दर' नामक वाणी सर्व पूर्व इसी स्थान पर गायन की गई थी।
२. पुरातन जन्मसाखी में लिखा है — तब अगले दिन बोल पड़ा 'जो ना कोई हिन्दू है ना मुसलमान है।'

बुला भेजा, पर गुरू जी ने उनके पास जाने से इनकार कर दिया। फिर खान ने आदमी भेजा। उसने आकर गुरू जी से कहा कि खान कहता है कि आप ईश्वर के प्यार वाले हैं, ईश्वर के नाम पर आकर दर्शन दो।'

ईश्वर का नाम सुनकर गुरू जी उठ खड़े हुए और खान के पास आये। खान ने उठकर सम्मान-सहित बैठाया और कहा 'यह मुतका (गाती) उतार दो और चोगा पहनकर कमरबन्द बाँध लो।' गुरू जी ने मुतका उतारकर कमरबन्ध बाँध लिया। फिर नवाब ने अपना शोक प्रकट किया। गुरू जी मुस्कराये और कहने लगे 'ना कोइ हिन्दू है न मुसलमान।' अब नवाब ने विनय की कि 'आपसे काज़ी जी कुछ पूछना चाहते हैं।' फिर नवाब काज़ी की ओर देखकर बोला 'काज़ी जी पूछो, यदि अब कुछ न पूछा तो ईश्वर के प्रेमी (गुरू नानक) मौन धारण कर लेंगे।' तब काज़ी ने पूछा "आप जो कहते हैं कि न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान, आपको क्या प्राप्त हुआ है ? हिन्दू हिन्दू न होंगे, पर मुसलमानों का तो दीन (धर्म) कायम है, मुसलमान किस प्रकार मुसलमान नहीं हैं ?"

तब गुरू जी बोले —

मुसलमाणु कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै ॥
अवलि अऊलि दीनु कर मिठा मसकल माना मालु मुसावै ॥
होइ मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवण का भरमु चुकावै ॥
रब की रजाइ मंने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै ॥
तऊ नानक सरब जीआ मिहरंमति होइ त मुसलमाणु कहावै ॥२॥

[माझ की वार महला १]

फिर काज़ी ने प्रश्न किया, तब गुरू जी ने मरदाने के रबाब की ओर संकेत किया, रबाब बजने लगा और आपने गाया —

मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु ॥
सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु ॥
करणी काबा सचु पीरु कलमा करम निवाज ॥
तसबी सा तिसु भावसी नानक रखै लाज ॥१॥ महला १ ॥
हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ ॥
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ ॥
गली भिसति न जाईऐ छुटै सचु कमाइ ॥
मारण पाहि हराम महि होइ हलालु न जाइ ॥
नानक गली कूड़ीई कूड़ो पलै पाइ ॥२॥ महला १॥
पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ ॥

---

१. 'अक्ष बराह खुदा एक बार दीदार देहुँ'।

[जन्मसाखी हाफज़ाबाद वाली]

**पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ ।।
चउथी नीअति रासि मनु पंजवी सिफति सनाइ ।।
करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ ।।
नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाइ ।।३।।**

[माझ की वार महला १]

इस सत्य को सुनकर काजी आश्चर्यित रह गया । खान ने कहा, "काज़ी जी, लज्जा की बात नहीं, नानकशाह ते सच तोलकर रख दिया है, अब हम तोल लें कि हम कितने पक्के मुसलमान हैं । काज़ी ने फिर बात को फेरने के लिए कहा, "पेशी[1] का समय है, नमाज़ तो मौत होती है, चलो मसजिद में नमाज़ पढ़ें ।" तब सब लोग मसजिद गए । गुरू जी को भी साथ ले गए । सारी जमात खड़ी हो गई और काज़ी सबसे आगे खड़ा होकर नमाज़ पढ़ने लगा। गुरू जी एक ओर खड़े रहे और काज़ी की ओर देख-देखकर मुस्कराते रहे ।

जब नमाज़ हो चुकी और सब लोग फिर आकर बैठे तब काज़ी ने गुरू जी के नमाज़ की हँसी करने की नवाब से शिकायत की । गुरू जी ने उत्तर दिया, "नबाब जी ! काज़ी जब नमाज़ पढ़ रहा था, तो खुदा (ईश्वर) की नमाज़ नहीं पढ़ रहा था । इसका दिल नमाज़ में नहीं था इसके घर में घोड़ी की बछेड़ी आँगन में खुली थी । बछेड़ी अभी-अभी पैदा हुई थी । इसको चिन्ता थी कि कहीं बछेड़ी आँगन वाले कुएँ में न गिर पड़े । अतः इसकी नमाज़ ईश्वर ने स्वीकार नहीं की, और यही सबसे आगे खड़ा था, मैं इसीलिए मुस्कराया था ।"

यह सच्ची अथवा दिव्य दृष्टि से हृदय की जानी बात जब गुरू जी ने निर्भय होकर कह दी तो काज़ी काँप उठा । उसने माना कि बात सच है और गुरू जी के चरणों का स्पर्श किया और कहा कि आप पर जरूर खुदा (ईश्वर) की कृपा हुई है । तब कहा जाता है कि गुरू बाबा ने नवाब को भी बताया कि नमाज़ के समय उसका दिल काबुल में घोड़े खरीद रहा था । नवाब ने भी यह बात सच्ची पाई और मानी ! उसके मन पर गुरू जी के अवतार होने की चोट हथौड़े की चोट की भाँति पड़ी । उस समय गुरू जी ने ईश्वरीय रंग में एक श्लोक गाया, जिस पर सैय्द शेख, काज़ी मुफ्ती, खान, मन्त्री इत्यादि सभी हैरान हुए । खान बोला, 'काजी ! नानक सत्य तक पहुँचा है, और पूछने की भूल नहीं करनी चाहिए ।"[2] इस समय गुरू बाबा ने "अमल करि धरती बीजु सबदो करि" नामक शब्द का गायन किया । नवाब से अब रहा न गया, पाँवो को छूकर कहने लगा, नानक राजु मालु हुकमु हासलु (जो मेरा है) सब तेरा है ।"[2] यहीं निवास करो, हम आप की सेवा करेंगे । गुरू जी ने कहा, "नवाब अब ठिकाना कहाँ ? तुम बसो, सुखी रहो, राज्य माल तुम्हारे हैं, हम तो अब त्यागकर चले हैं, ईश्वर की नौकरी करने के हेतु । ईश्वर की आज्ञा माननी है और उस के कार्य करने के लिए जाना है ।" अब सारे व्यक्ति जो एकत्रित थे, स्तुति करने और कहने लगे कि नानक

---

१. मुसलमानों की एक नमाज (प्रार्थना) का नाम है ।

२. पुरातन जन्मसाखी ।

बाबा सच्चे के रंग में रंगा है, इसमें ईश्वर बोलता है ।

"इितु तनु माइआ" वाली बाणी का गुरू जी ने इस अवसर पर उच्चारण किया । फिर उठकर वन में जा बैठे । तब मरदाना भी जा बैठा ।

(क) हुज़ूरी में पाठ करो

यह पहला दिन था जब गुरू जी ने दैवी आज्ञा के पश्चात् अपना मुख खोला । जो भूल आपने काज़ी नवाब की दूर की थी वह यही थी कि वे दोनों नमाज़ तो पढ़ते थे, पर उनका मन ईश्वर की हुज़ूरी में हाजिर नहीं था । नमाज़ पढ़नी या अरदास करनी, पाठ करना, उच्चारण करना, ध्यान लगाना अथावा समाधिस्थित होना, उपासना करनी अथवा पूजा करनी, कीर्तन करना अथवा स्तुति गाना, इत्यादि सभी कार्य मानो ईश्वर के सम्मुख होकर प्रेम के यत्न हैं, पर इनका बाहरी स्वरूप अथवा कर्तव्य ही रह जाता है । मन अपने तरंगों में आनन्द लेता रहता है । हाँ, ये कर्म दृष्टमान हैं पर इनका जीवन नहीं रहता, इसलिए ईश्वर का कार्य जब ईश्वरीय आज्ञा में गुरू जी ने आरम्भ किया तो पहली सुमति यह दी कि —

'भजन ईश्वर की हुज़ूरी में करो ।' आजकल अनेकों सिक्ख इस प्रकार के हैं, जो गुरु वाणी का पाठ करते ही नहीं, पर कई जो पाठ करते हैं, वे यह कहते है कि मन नहीं लगता, स्वाद नहीं आता; नित्यनेम करते हैं, सुखमनी [1] का पाठ भी प्रतिदिन करते हैं कभी-कभी एक से अधिक जपुजी (बाणी) का पाठ भी करते हैं, पर स्वाद नहीं आता । अब यदि गुरू जी की वाणी का विचार करो अथवा उनके कर्तव्यों को समझो और करो तो यह कष्ट हट जायेगा । गुरू जी ने जो कुछ काज़ी अथवा नवाब को बताया है, वह हमें बताया है । जिस दिन हमने यह कथा पढ़ी तो हम यह पढ़कर प्रसन्न हुए कि श्री गुरू जी ने काज़ी अथवा नवाब को खूब झाड़ दी, अथवा यह कि गुरू जी धन्य हैं जिन्होंने अपनी दैवी शक्ति द्वारा यह जान लिया कि काज़ी-मुल्ला के हृदय के भीतर की क्या दशा थी, पर हम तीसरी बात का त्याग कर देते हैं कि गुरू जी की यह कथा आज हमारे साथ भी घट रही है और हम भी काज़ी तथा नवाब की भाँति हो रहे हैं । हमें गुरू जी यह आदेश दे गये हैं कि नित्य नियमानुसार पाठ करो, वाणी पढ़ो, पर ईश्वर की हुज़ूरी में गैर हुज़ूरी की वाणी पढ़कर जो आनन्द न आवे तो इसमें दोष तुम्हारा अपना है । जब तुम वाणी का पाठ करो तो अपने-आपको ईश्वर की हुज़ूरी में समझो और ऐसा अनुभव करो कि ईश्वर तुम्हारा पाठ सुन रहा है । यह समझकर मन वाणी में लगाओ कि यदि अब हमारा मन उड़ेगा और जिह्वा वाणी पढ़ेगी, तब जिसकी हुज़ूरी में वाणी का पाठ कर रहे हैं, वह किस प्रकार प्रसन्न होगा ? उसके साथ मन कैसे लगेगा ?

मन उन वस्तुओं के साथ लगेगा जिनका वह चिन्तन कर रहा है और उनका ही प्रभाव पड़ेगा । यदि भजन-पाठ करते समय मन ईश्वर में लगेगा तो ईश्वर के स्वरूप का प्रभाव शान्ति, दण्ड, मुख, आत्म-उल्लास, आत्मरस होकर आएगा और यदि मन अन्य वस्तुओं में लगेगा तो उनका प्रभाव ग्रहण

---

१. वाणी का नाम है ।

करेगा । अतः जो वाणी का पाठ करते समय काज़ी की भाँति मन सांसारिक पदार्थों में लगेगा, उस पर प्रभाव पड़ेगा मन के भटकने का, अतः विचार करो और समझो कि आज गुरू नानक कह रहे हैं, 'हे मेरे सिक्ख ! (शिष्य) हुजूरी का भजन अथवा पाठ कर । मन भागता है, दौड़ता है, इसका स्वभाव ही इसी प्रकार का है, इसको बरजो, इसको मोड़ो, वाणी के अर्थों की ओर लगाओ । देख वाणी क्या कहती है, वाणी वाहिगुरू की स्तुति गाती है, फिर ईश्वर के चरणों में मन को लगाओ, हाँ हुजूरी में । ईश्वर का नाम जपने वाले प्रेमियों की संगत करो, यदि वे बताये कि किस प्रकार उनका मन शनैः-शनैः दौड़ना छोड़ता गया है और वाहिगुरू (ईश्वर) के साथ जुड़ता गया है ।

इन बातों को पक्का करो :—

१. ईश्वर है, अवश्य है ।

२. वह मुझे दीखता नहीं, क्योंकि अभी मेरे आत्म-नयन खुले नहीं हैं ।

३. ज्ञान-चक्षुओं को वाणी और भजन खोलता है ।

४. मैं पाठ करूँ, पाठ सुनूँ, कीर्तन करूँ, कीर्तन सुनूँ, भजन तथा बन्दगी में लगा रहूँ ।

५. पाठ, कीर्तन, भजन की प्रत्येक दशा में यह समझूँ कि मैं हुजूरी में ही यह सब कर रहा हूँ । मैं "कोटि बृहमंड को ठाकुर सुआमी" की हजूरी में हूँ । वे मेरी अरदास सुन रहे हैं । मैं अब भय में तथा प्रेम में, उसके हुजूर में सदा उपस्थित रहूँ और अरदास करूँ । गुरू बाबा नानक के आगे अरदास करूँ कि यदि मन उड़े तो उसको रोकूँ, यदि वह न रुके तो उसको रोकने के लिए अरदास करूँ, गुरू नानक के आगे अरदास करूँ कि "जिस प्रकार आपने काज़ी अथवा नवाब को हुजूरी प्रदान की थी उसी प्रकार मुझे भी हुजूरी प्रदान करो। आप सदैव जीवित हैं, देह में अथवा देह से बाहर, आप हमारे साथ हैं । आप जागृत ज्योति हैं । जिस प्रकार उस समय आप तुष्ट हुए थे, आज मुझ पर भी तुष्ट हो, मुझे हुजूरी में हाजिर होकर अरदास करना, वाणी का पाठ करना, भजन करना, प्रदान कीजिए । आप दयालु हैं, दीनों पर दया करने वाले हैं, आप गुरू हैं, मैं आपका सिक्ख (शिष्य) हूँ, चाहे नाम का ही सिक्ख हूँ, पर गुरू जी हूँ तो, आपका मुझे अपने नाम के सदके हुजूरी का पाठ हुजूरी की अरदास, हुजूरी का भजन आदि प्रदान करो ।

यदि मन अब भी भटकता फिरे, तो बन्दगी वाले गुरू के प्यारे गुरू के सिक्खों के आगे अपना दुःख प्रकट करो और कहो कि हे मेरे गुरू के प्यारे ! मुझे सुमति दीजिए, मैं किस प्रकार पाठ किया करूँ ? भजन, अरदास तथा पाठ के समय मैं गैर-हुजूरिया न होऊँ । मेरे गैर-हुजूरी के रोग की निवृत्ति कीजिए आप मेरे लिए प्रार्थना कीजिए, मुझे प्यार कीजिए, जिससे मुझे हजूरी प्राप्त हो जाए, इस प्रकार सत्संग की सहायता लेनी चाहिए ।

आप यत्न करो, बाहर भागने वाले मन को मना करो, इसको रोको, सुमति दो कि हे उदैव अस्थिर रहने बाले मन ! अब मैं शहनशाहों के शहनशाह कोटि ब्रह्माण्डों के ठाकुर के आगे प्रार्थना लेकर आया हूँ, अब सारे उसकी शरण में गिर पड़ों, संकल्प, विकल्प, विचार, आशा, अंदेशे छोड़ दो । ये उड़ानें तेरी अपनी आत्महत्या हैं । अपने घर आ और इधर-उधर की बातों का त्याग करके

एक हुजूरी के घर आकर प्रार्थना कर जिसे ईश्वर सुने और तेरा इस संसार रूपी सागर से उद्धार हो ।

इस प्रकार अथवा जिस प्रकार बन पड़े, शनैः-शनैः एवं शीघ्रता से, जिस प्रकार ही ईश्वर की कृपा हो, हजूरी का पाठ पढ़ो, हजूरी में होकर प्रार्थना करो, सदैव पाठ करते समय यही समझो कि ईश्वर 'है' ईश्वर 'है' ईश्वर मेरे समक्ष प्रत्यक्ष मेरी प्रार्थना सुन रहा है और यह जो वाणी का पाठ करता हूँ, वह ईश्वर उसको सुनता है, अतः फल होगा ।

(ख) एकेश्वर का स्मरण

दूसरी शिक्षा जो सुलतानपुर में गुरू जी ने दी थी, वह यह थी :

एक पत्थरों की पूजा करने वाला था । उसकी आयु मूर्ति पूजा में व्यतीत हुई थी । उसने चर्चा सुनी कि सुलतानपुर में "एक तपस्वी प्रकट हुआ है" उसका नाम नानक है । काज़ी और नवाब उसके चरणों पर गिरे हैं । हिन्दू साधु तथा मुसलमान फकीर भी चरणों पर गिरकर धन्य-धन्य कह चुके हैं । यह सुनकर मूर्तिपूजक प्रसन्न हुआ । उसकी आयु का एक भाग इस प्रकार की भक्ति में व्यतीत हुआ था, पर उसकी मनोकामना पूरी नहीं हुई थी । गुरू जी की महिमा सुनकर वह उनके दर्शनों के चाव में आया । यह सुनकर कि कलियुग में कोई "प्रकट हुआ" है वह दर्शनों के लिए चल दिया । जब आकर वन में गुरू जी के दर्शन किये तो कलेजे में आकर्षण-सा हो गया, और चरणों पर गिर पड़ा । गुरू जी ने कहा, "सुन्दर तुमने मन लगाकर भक्ति की है ? परन्तु अब जीवित की भक्ति कर, जिससे आगे से वरदान तथा उत्तर मिले ।" मूर्तिपूजक गुरू जी के दर्शन से शान्तचित्त हो गया, उसको स्वाद भी आया, पत्थर हृदय पसीजा भी, पर अभी परिपक्व हुई रेखाओं का प्रभाव बाकी था । कहा जाता है कि उस रात्रि को जब वह सोया, तो उसने पत्थर की मूर्ति, जिसकी पूजा करता था, गुरू जी के द्वार पर देखी कि वह झाड़ू लेकर बाहर खड़ी है । उस पर इस स्वप्न का प्रभाव भी पड़ा । अगले दिन उसने नाम धारण किया । उसकी रसना ईश्वर का नाम जपने लगी, उसका दिल ऊँचा हो गया और ईश्वर की लगन में लग गया । गुरू नानक के प्रत्यक्ष दर्शन उसके भीतर निवास कर गए और वह जीवित-सा हो उठा ।

दूसरी शिक्षा जो गुरु जी ने दी वह पढ़कर हम प्रसन्न होते हैं कि देवी गुरू जी के द्वार पर झाड़ू देती है और यह कि पत्थर की पूजा एक हलकी बात है । पर वास्तविक बात भूल जाते हैं कि यह कथा हमने आज पढ़ी है, यह तो हमारे साथ हुई है, हमें गुरू जी ने आप सुमति दी है कि—

१. ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं पूजना चाहिए । एक ईश्वर का ही स्मरण करना चाहिए ।

२. हमारे मोह-माया और पदार्थों के प्यार सभी मूर्ति पूजा हैं । माया में रहकर माया के पूजारी नहीं बनना चाहिए । इस देवी की पूजा नहीं करनी । हाँ, सबसे अधिक निरंकार को ही प्यार करना चाहिए ।

(ग) सब जीवों पर दयालुता

तीसरी सुमति जो उस दिल गुरू जी ने दी, वह यह थी कि 'नवाब ने गुरू नानक जी को साधु हो गया जानकर' मोदीखाना किसी अन्य के अधिकार में कर दिया। उसने पिछला लेखा करना तथा विधि मिलानी ही थी। इसके मिलने से कुछ धन गुरू जी का नवाब की ओर निकला, वह नवाब ने गुरू जी को भेज दिया, उस समय कई जरूरतमन्द गरीब लोग गुरू जी के दर्शनों के लिए आये हुए थे। उन्हें आपने ध्यान करके देखा। पास खड़े किसी व्यक्ति ने कहा, पातशाह ! आपके घर में पुत्र हैं, स्त्री है, आप त्यागी हुए हैं, यह धन उनको दे दीजिए।' गुरू जी ने कहा, 'सब में उसकी ज्योति है, सभी उसी के पुत्र हैं', सो जो कुछ था, उसी समय लुटा दिया।

हम प्रसन्न होते हैं कि धन्य गुरू नानक, जिसको धन का तनिक-सा भी लोभ नहीं था। धन्य हैं गुरू जी जो जरूरतमन्द को पुत्र कहा करते थे और सब में भगवंत को देखते थे, किस प्रकार सबके साथ प्रत्यक्ष प्यार करते थे।

पर तीसरी बात हम भूल जाते हैं कि यह कथा भी आज ही हुई है। यह तो हमारे साथ हुई है और गुरू जी हमें कहते हैं : अन्दर ईश्वर का नाम बताओ, वाहिगुरू को अपने अंग संग समझो, ईश्वर का नाम आठों पहर न भूलो। पर जब कोई जरूरतमन्द दिखाई दे तो उसमें भी ईश्वर की ज्योति ही दिखे, जो सर्वव्यापक है। उसकी आवश्यकता यथाशक्ति पूरी करो, पर ऊँचे ख्याल में रहो कि मैं अपने अन्दर बस रहे नाम के नामी ईश्वर की हर ओर देख रहा हूँ और उसको प्यार कर रहा हूँ। दु:ख दरिद्रता गरीबी मैं न हटा सकता हूँ और न ही मैं दाता हूँ। मैं तो एक ज्येति का प्रेमी हूँ, मेरे भीतर 'ईश्वर का नाम' होकर ज्योति बस रही है और कहती है किस सब जीवों में वही ज्योति है उसी ज्योति के लिए प्रयत्न करो। यह तीसरा सबक है :

"सरब जीआँ मिहरंमत" का है।

हम सिक्ख हैं; जो सुमति गुरू नानक जी ने दी है, जो कृपा की है, उसे द्वारा जिसका उद्धार हुआ है वह सिक्ख (शिष्य) कहलाए। हम सिक्ख हैं, देखें कि जो सुमति गुरू जी ने दीं हैं, वह गुण जो वाणी में आए हैं, हमारे में हैं अथवा नहीं ? यदि हैं, तो हम भी धन्य हैं, गुरू के सिक्ख होकर "धन्य सिक्ख" हैं। पर यदि हमारे में नहीं हैं; तो हमें धारण करना चाहिए। बातों का नाम 'सिक्खी' (शिष्यत्व) नहीं है। गुणों को धारण करने अथवा रहन-सहन का नाम सिक्खी है। गुरू जी आप बताते हैं :

"विणु गुण भगति न होइ ।।"

गुणों को धारण करना चाहिए। अब तो सभी का ध्यान माया की ओर बढ़ रहा है, संसार सिर के बल इसके पीछे भागा जाता है, वृत्तियों पदार्थों की प्राप्ति की ओर तथा पदार्थ पूजा में सिर के बल गिर रही हैं, और यह प्रतिदिन बढ़ रहा है। दाता भुलाया जा रहा है, "पदार्थों" की ओर प्यार बढ़ रहा है। गुरू जी ने इन्हीं भूलों से छुड़ाकर हमें आत्मदेश में पहुँचाया था। वे उस समय की कथाएँ और उपदेश लिखे हैं और हम पढ़ते हैं। अब हमें 'अमल' की आवश्यकता है, अन्यथा हम

गुरू जी की प्रसन्नता लेने वाले सिक्ख नहीं । यह साखियाँ पढ़ें और अन्य व्यक्तियों के साथ घटी पढ़कर और कहानी का मज़ा लेकर एक ओर न चजे जाएँ । साखी अपने साथ घटी समझें, अपने अवगुण उस कथा के प्रकाश में देखें और फिर अपने-आपको सुधारें, तब गुरू बाबा की प्रसन्नता है । हम सिक्ख हैं और जीवित सिक्ख हैं और बनावट, दिखाना व्यर्थ जाहिरदारी और पक्षपात को तो वे रद्दी करके दूर फेंकते थे । यदि हिन्दू मुसलमानों में इसको देखकर इसके विरुद्ध वे चिल्लाते थे तो सिक्खों में इसको देखकर और अधिक चिल्लाते थे । वह जो पहला वाक्य बोले, 'न कोई हिन्दू है न मुसलमान' उसकी ध्वनि यही थी कि बनावट, दिखाना, जाहिरदारी और पक्षपात धर्म नहीं है, मजहब नहीं, कल्याण मार्ग नहीं है, और परमार्थ नहीं है । उनकी एक आवाज़ 'न कोई हिन्दू है न मुसलमान 'आज सिक्खों को अधिक कान देकर सुननी चाहिए, कि गुरू बाबा जी अदेश से आते ही बोले तो क्या बोले और उसके प्रकाश में हमको आज क्या अमल करना है । क्या आपा सुधारना है और क्या लाभ उठाना है ? यह है गुरू को मानना, गुरू को प्रत्यक्ष समझना, अपने साथ बोलता देखकर, सुनकर अमल करना और सिक्ख बनना ।

४. सुलतानपुर से विदाई

साखियों में बाबा कालू के पुत्र के त्यागी हो जाने का समाचार सुनकर ससुर मूलचन्द का शामे पण्डित को साथ लेकर सुलतानपुर पहुँचना लिखा है । दोनों ने आम गृहस्थ के दृष्टिबिन्दु से उन्हें समझाया कि घर रहो और साधुओं का वेष छोड़ो ओर शामे पण्डित ने शास्त्रों के वाक्य सुनाकर परमार्थ के दृष्टिबिन्दु घर छोड़ने के अवगुण बताए । पर गुरू जी ने 'राजा बालकु नगरी काची दुसता नालि पियारो' वाला शब्द उच्चारण कर उनकी तसल्ली की और तब पण्डित ने देखा कि यह केवल शास्त्री नहीं जो शास्त्रों से बस में आवे, यह अनुभवी महापुरुष है और किसी अनुपम रंग में है। पर मोह वाले महता कालू और अपनी पुत्री के दुःखों की निवृत्ति के इच्छुक मूलचन्द जी दुःखातुर हुए । अन्त में महंता कालू तथा माता तृप्ता जी ने बड़े होने और पुत्र की ओर से सेवा के अधिकार की माँग की । तब गुरू बाबा जी ने बताया कि जिस पिता के सारे पुत्र हैं, उसकी आज्ञा, जलते हुए जगत में उसके प्यार का ढिंढोरा पीटने की है । उसकी आज्ञा बिछुड़ी सृष्टि को उसके साथ मिलानें की है । तुम आप ही बताओ कि मैं कैसे करूँ ? यह व्यथा गुरू जी ने इस प्रकार के ईश्वरीय प्रेम में रस स्निग्ध होकर दिखाई कि माता-पिता पर भी उस समय प्रभाव-सा छा गया और वे 'हाँ' कर गए । यह 'हाँ' किसी ईश्वरीय रंग में हो गई, बाद में जब वे घर गए तब दोनों उदास हो गए । सबसे अधिक दुःखमयी दशा माता सुलखनी जी की थी, जिनके सिर का स्वामी छोटे-छोटे बाल-बच्चे छोड़कर निरन्तर उदास हो गया था और ये भनकें भी उस होकर कानों में पड़ रही थीं कि वे अब परदेश जा रहे हैं और फिर वहाँ से वापस लौटेंगे भी कि नहीं, इसका क्या ठिकाना । पति के वियोग का दुःख पुत्रों का पालन-पोषण और शिक्षा का संशय; इस प्रकार के अनेकों भाव थे जो उनको उदास करते थे । दीदी नानकी उनको धैर्य बँधाती थी, जिससे उनके मन को सान्तवना तो मिलती थी, पर वह फिर टूट-टूट जाती थी । एक दीदी का हृदय ऐसा था जो घबराता नहीं था । वे ऊँचे मन वाली

वाहिगुरू के प्रेम वाली इस सबको वाहिगुरू की आज्ञा तथा भाई की ईश्वरीय रंगत का चाव देखती थी। क्या दीदी को दुःख नहीं था। भाई के वियोग का दुःख था तो बहुत, पर वास्तविक दुःख सत्संग के मण्डल का था। इसमें ऊँचे बलबले थे और इसका आदर्श ऊँचा था। उनको दृष्टिगत हो रहा था कि मेरा गुरू जो ईश्वरीय सौन्दर्य है, अपने स्वामी की आज्ञा से उसका अधिक ऊँचा, साफ सुन्दर काम करने चला है। इसलिए उसके दुःख में टोटा नहीं था, खीझ तथा निराशा नहीं थी। कहते हैं कि माता सुलखनी के दुःख करने पर गुरू नानक ने कहा था कि निरंकार तेरा प्रतिपालन करेगा। निरंकार की आज्ञा का हाल जो गुरू जी ने इस समय बताया इसने एक बार माता सुलखनी के साहस पर भी प्रभाव डाला और गुरू नानक देव जी के ऊँचे उद्देश्य तथा ऊँचे काम की एक झलक उनको भी दिखाई पड़ गई, जिसके सम्मुख माता जी ने भी सीस झुका दिया।

दीदी का दुःख इस प्रकार का था कि उसकी परख स्वयं पारखी को थी। उनके मस्तक पर ध न्यवाद, आँखों में आकर्षक और प्यार, अधरों पर दुःख की फड़कन और रोम-रोम में वियोग का कम्पन था। उनकी बूद्धि इश्वरीय आज्ञा के आगे झुकी रही थी और हृदय में धन्यवाद का तिरना तैर रहा था। परन्तु फिर भी बिछुड़ने को मन नहीं करता था। इस पर समस्त ऊँचे रंगों के ज्ञाता गुरू जी ने कहा—दीदी ! तुम्हारा प्यार ईश्वरीय है और बहुत ऊँचा है। इसका मूल्य तथा इसकी कदर यह है कि जब तुम बहुत दुःखी हो जाओ और तुम्हारा दुःख असह्य हो जाए तो शहनशाहों के शहनशाह के आगे अरदास करना, उसी समय आ जाया करेंगे। बन्धुओं के मोह भी बहुत गहरे थे, पर वे कुछ काम न बना सके। पर दीदी के प्यार ने परम त्यागी के मन में भी इतना प्रभाव डाला कि सभी को दर्शनों का अवसर बन गया। यह आशा हो गई कि वे सदा के लिए नहीं जा रहे हैं। चाहे किसी रंग में रहे कभी-न-कभी लौटेंगे और फिर दर्शन देंगे।

सुलतानपुर से विदा होते समय प्यार करने वालों के दिलों के बलवले :—

१. दीदी के प्रेम का कुछ चित्र इस गीत में है :—

धुर अदेश ध्वनि यह आई।
वीरन ले परदेश सिधाई ।।
जी घबराए, चैन न आवे ।।
नानक बिन अँधियारा छावे।
जाओ गुरू हरि काम बनाओ।
कभी कभी इस देश भी आओ ।।

२. उसी समय के माता सुलखनी जी के विरह का यह चित्र है :—

पापी मिट जाओ नैन।
साइयाँ हे साइयाँ।
पिया मेरा परदेश सिधाये।
हाय नहीं मैं किसी काम की,

प्रीतम है हरि का व्यौपारी ।
ऊँची उसकी शान पकड़ मेरी से बाहर ।

३. उस समय संगत के विरह का यह चित्र है :–

ठहर जा ठहर जा हे ईश्वर के सँवारे हुए !

१. संगत है यह अर्ज करती ।
हाथ जोड़े नयन भरती ।
ठहर जा हे ठहर जा हे ईश्वर के दुलारे हुए !

२. मन भर के अभी नहीं दर्शन तुम्हारा पाया ।
बिजली का प्रकाश आया ।
जाओ मत जाओ दाता ईश्वर के सँवारे हुए ।

३. खेत जो तुमने लगाया ।
वह अभी नन्हा ही है ।
माँगता जल याचना नैनों के फैलाए हुए ।

४. पवन वेग कौन रोके ।
बादलों को कौन टोके ।
धुर से जो चल रहे वे टरते नहीं टारे हुए ।

५. चल दिये जो आप सांई ।
दास को मत भूल जाना ।
कूकरी सम याद रखना दर्शन सुधि धारे हुए ।
जाओ मत जाओ दाता ईश्वर के सँवारे हुए ।

४. उस समय मानो आकाश से यह आकाशवाणी हुई :–

नानक जग में जाकर मेरा नाम जपाना ।
जगह जगह जाकर के अमृत जाय पिलाना ।
टूटों को तुम जोड़ मिलाना तुम बिछुड़ों को
देना जीवन दान काम यह मेरा तुम करना ।

नवाब के साथ जिस दिन से वह नमाज़ वाली घटना घटी थी, उस दिन से उसकी साधारण दशा बदल गई। मोदीखाने का हिसाब और बचे हुए को निर्धनों को देने का प्रभाव नवाब पर और अधिक पड़ा। वह कुछ विचारवान हो गया । रात्रि जागते व्यतीत होती थी । आगे का भय आता था और अपने मोदी की ईश्वरीय रंगत की आकृति आँखो के आगे नाचती रहती थी। उसका मन करता कि कुछ विनय करे पर मुसलमानी कट्टरता से भय खाता था । पर उधर कुछ दिनों में सारी रंगत

बदलती गई । हिन्दू, मुसलमान गुरू जी के आगे झुकते गये । काजी, मुल्ला, मुफ्ती सब उनका लोहा मानने और सिर झुकाने लग पड़े । नवाब के मन को जो लगी थी वह भी इतनी धधक उठी कि सांसारिक भय और लज्जा आदि कुछ न रहे और उनका मन चरणों पर पड़कर सुखी होने का पूरा साहस कर बैठा । गुरू जी के विदा होते समय नवाब वहाँ पहुँच गया और उनके चरणों पर गिर पड़ा । उसने बाबा के चरणों को चूमा और भक्ति का ढंग पूछा । गुरू जी ने सतनाम का उपदेश देकर उनको निहाल किया ।[१]

इसके बाद नगर के सब हिन्दू और मुसलमान आकर इकट्ठा हो गये और उन उसने माथा झुकाया । फिर फकीरों ने आकर चरण चूमे, हाथ मिलाया । फकीरों पर बाबा जी की प्रसन्नता हुई ।[२]

मरदाने[३] को गुरू जी ने साथ लिया । इस तरह सत्संगियों, प्रेमियों, सम्बन्धियों, फकीरों काजियों, मुफ्तियों और नवाब के प्यार-सत्कार आदर में गुरू बाबा जी सुलतानपुर से विदा हुए । अपने अदेशी बाबुल की नौकरी करने चले ।[४]

□□

१. खालसा तवारीख ।

२. पुरातन जन्मसाखी ।

३. मरदाना रबाब बजाया करता था । रबाब अरब देश का साज है । गुरू जी ने उसे भी कुछ अपने ही ढंग का बनाया और फिरंदे को नया बनाने की आज्ञा दी थी । गुरू नानक जी के इस नये रबाब को 'मरदाना' ने साथ लिया । दीदी जी ने फिरंदे को इसके दाम दिये थे । रबाबियों (गायकों) के पास जो रबाब आजकल होते हैं, यह वैसा नहीं था । गुरू नानक देव वाले रबाब का नमूना तथा बजनिये रामपुर रियासत में अब भी पाये जाते हैं । यह छः तारों का होता है और सरोद की भाँति बजता है । 'कानूने इशरत' नामक पुस्तक में इसका कुछ ब्योरा और पता दिया हुआ है ।

४. बाबा पैधा सचखंड नऊ निधि नाम गरीबी पाई ।
बाबा देखै ध्यान धरि जलती सभ प्रिथमी दिस आई।।
बाझहुँ गुरू गुबार है है करदी सुणी लुकाई ।
बाबे भेख बणाइया उदासी की रीति चलाई ।
चड़िया सोधण धरत लुकाई ।

[भाई गुरुदास]

उदासीयाँ

८ उदासी की तैयारी

मलिक भागो—भाई लालो

१. भाई लालो

व्यास नदी का पश्चिमी किनारा। एक छोटे-से टीले पर अमृत बेला में 'ईश्वरीय ज्योति' ध्यानमगन बैठी है। एक प्रेमी ध्यान लगाकर कीर्तन कर रहा है। आकाश से शीतल सुहावनापन बरस रहा है। शान्ति और एकान्त में कीर्तन का प्रवाह स्वाद-पर-स्वाद की लपट दे रहा है। सूर्योदय हो गया, आपने सुन्दर नैन खोले, आकाश की ओर, फिर नदी की ओर और फिर चारों ओर देखा—

हउ जीवा गुण सारि अन्तरि तू वसै ॥
तू वसहि मन माहि सहजे रस रसै ॥३॥

[सूही महला १]

मीठी ध्वनि आई। फिर उठ खड़े हुए और कहा, 'महापुरुष एक आएगा, कीर्तन होवेगा, आबादी आबाद होगी'।[1] यह कहते आगे को चल पड़े। इसी तरह की दो दिन व्यतीत करके, मार्ग में चलते, ठहरते, तीसरे दिन अमृत बेला में एक बेरियों के झुण्ड के नीचे एक सुन्दर तालाब के किनारे जा ज्योति जगाई। कीर्तन हुआ, स्वाद आया, फिर सुन्दर अधर खुले और वाक्य निकले—

अब तब अवरु न मागऊ हरि पहि नामु निरंजन दीजै पिआरि।
नानक चात्रिकु अंम्रित जल मागै हरि जसु दीजै किरपा धारि ॥८॥

[गुजरी अः महला १]

यहाँ पर ज्योति जगाकर, रंग लगाकर यहाँ से भी एक दिन उठकर चल पड़े; कहा, 'महा पुरुष आएँगे, हरि कीर्तन का मन्दिर तथा नगर बसायेंगे।[2] फिर दो-चार दिन और सफर किया, रास्ते में खालड़े गाँव और लाहौर में चुहट्टे पीपल में नीचे ठहरते ऐमराबाद पहुँचे जिसका नाम तब सैदपुर संडयाली था। एक खाती के घर जाकर 'धन्य निरंकार' की अलख जगाई। यह खाती का काम करता था, सीधी सादी-सी सूरत थी, बाहर से कठोर दिखता था। आवाज़ सुनकर बाहर आया, देखा, नैन नीचे कर लिए, फिर देखा और फिर चरणों पर गिर पड़ा। आप बोले—लो भाई लालो ! आ गए हैं और चल पड़े हैं देश से विदेश जाने का विचार करके। लालो के नेत्र भर गए, शीश झुक गया फिर उन्हें कोठरी के अन्दर ले गया। साथ वाला साथी आश्चर्यचकित होने लगा, और मन में सोचने लगा—मोदीखाने के अनेक नौकर आगे हाथ जोड़कर खड़े होते थे, नवाब कृपा करता

---

१. यहाँ पर तीसरे सतगुरू जी आए और गोइंदवाल नगर बसाया था।

२. इस स्थान पर अमृत सरोवर और अमृतसर नगर, तीसरे, चौथे, पाँचवें सतगुरू जी ने बनाया।

था, घर का सुख था, देवी-स्वरूप बहन थी, पतिव्रता स्त्री सेवा करती थी' मगर इन्होंने; यह सब-कुछ छोड़ा । मार्ग में जहाँ पर ठहरे, वहाँ बड़ी सेवा हुई । आज कीले बनाने वाले के घर आये हैं । यहाँ पर न खाट है न पीढ़ा, न खेस न दरी ।

इतने में लालो बाहर जाकर एक खटोला लाया और गुरू जी को उस पर बैठाया । कुछ समय तक दोनों ओर से कोई बातचीत नहीं हुई । फिर लालो ने बाहर एक चौके में रसोई तैयार की । इधर मरदाना ने पूछा, 'हे दाता जी ! यह कौन पुरुष हैं, जिसके घर आप चलकर आए हैं ? घर छोड़कर शहरों से दूर-दूर रहने वाले आपने यहाँ कहाँ आकर चरण रखे हैं ? यह सुनकर गुरू जी हँसकर कहने लगे, मरदाना, हम भक्त के घर आए हैं । यहाँ धर्म का निवास है और धर्म का ही व्यवसाय होता है और इसी कारण मन प्रकाश से परिपूर्ण है । इतने में भोजन तैयार हो गया । लालो ने आकर कहा, 'चौके में चलकर भोजन कीजिए ।' श्री गुरू जी ने कहा, 'लालो ! यह सारी धरती चौका है और सत्य में लीन होने से सब कुछ स्वच्छ हो जाता है । भोजन यहीं पर ले आओ' । यह सुनकर लालो कोदों की रोटी और साग वहीं ले आया तो मरदाना सोचने लगा–कहाँ आ गए, यह सूखी रोटी, और मेरा गला । पर अच्छा, जो गुरू को अच्छा, लगे सो स्वीकार । खा मन, खा और प्रसन्न होकर खा । यह विचारकर उसने जब भोजन किया तो उसे अमृत का स्वाद आया। जब सतगुरू जी ने भी भोजन कर लिया तब लालो ने चरणों पर शीश झुकाया । सतगुरू जी ने कृपा की और लालो की भक्ति तथा साधना वाली वृत्ति अचल आत्म रस में लीन हो गई।

दो-तीन दिन इसी घर में निवास कर जब श्री गुरू जी चलने को हुए तब लालो ने नेत्र भरकर विनती की कि कुछ दिन और ठहरिये जो कृपा की है उसे और बढ़ाइये तथा और मुझ तुष्ट कीजिए । उसकी प्रेम-भावना पर प्रसन्न होकर आप कुछ समय और वहाँ ठहर गये । रात्रि को लालो के घर आ जाना और सवेरा होते ही बाहर चले जाना तथा दिन भर कंकड़ों[1] या रेत के टीलों पर किसी रंग में मग्न होकर बैठे रहना । थोड़े दिनों के पश्चात् मरदाना तो घर वालों का पता लेने के लिए तलवण्डी चला गया, पर श्री गुरू जी वहाँ पर ही रहे । इतने में नगर में यह बात प्रसिद्ध हो गई कि तलवण्डी का वेदी-कुल का खत्री लालो शूद्र के घर में रहता है और उसके हाथ की रोटी खाता है' तथा एक मिरासी भी साथ ही रहता है । मरदाना कभी किसी काम के लिए नगर में जाता तो लोग उसको 'कुराहिये का डोम या मिरासी' कहा करते । यह खुनस और भी बढ़ी जब दो-चार ब्राह्मण गुरू जी को समझाने के लिए गए और उनके साथ वार्तालाप करके निरुत्तर होकर लौटे । परन्तु कई हिन्दू-मुसलमान कीर्तन तथा वचन सुनकर श्रद्धावान भी हो गए । यहाँ पर गुरू जी 'नानक तपा' के नाम से प्रसिद्ध हुए । कई मुसलमान 'नानक शाह' कहकर बातचीत करते थे । इस प्रकार दूर निकट के ग्रामों के लोगों का आना, सतसंग करना और शिक्षा लेकर जीवन सुधारना आरम्भ हो गया । ब्राह्मण, मुल्लाओं को अब खुनस उठी कि यह तो यहाँ पर ही डोरा डाल

---

१. यहाँ पर अब तक गुरुद्वारा और सरोवर है । इसका नाम रोड़ी साहब है और भाई लालो का कोठा तथा कुआँ भी अभी तक है। यह पहिले खत्री दीवानों के पास ही था । बाद में पाकिस्तान बनने से पूर्व अकालियों के अधिकार में हो गया था ।

बैठा है और लोग श्रद्धावान होते जाते हैं । हमारी ओर से लोग कहीं विरक्त न हो जाएँ । अतः उन्होंने वहाँ के नवाब उसे कारिन्दा मलिक भागो खत्री की चुगलियाँ करके बहकाना आरम्भ कर दिया । दो-चार बार सतगुरू जी को उठाने के लिए लुक-छिपकर आदमी भी भेजे, पर उनकी दिव्य मूर्ति और प्रभाव-भरे स्वरूप के आगे किसी का साहस न हुआ कि बे अदबी के वाक्य तक उच्चारण करे । इन्हीं दिनों मलक भागो के घर कोई समागम का दिन आ गया और उसने सभी साधु-ब्राह्मणों का ब्रह्म-भोज किया और गुरू जी को भी निमन्त्रण भेजा । पर इस ब्रह्मभोज में गुरू जी न गए । ब्राह्मणों को अवसर मिल गया; वे लगे मलक भागो को भड़काने, कि देखो नानक तपा कितना अहंकारी है, ब्रह्मभोज के लिए निमन्त्रण जाने पर भी नहीं आया । शूद्र के घर खाता है आर खत्री-ब्राह्मणों का निमन्त्रण भी स्वीकार नहीं करता । कितना अहंकारी है और कुरीति का प्रचार कर रहा है । भागो ने जब इस बात का निश्चय कर लिया कि निमन्त्रण गया था और नहीं आया तो उन्होंने क्रोध में भरकर गुरू जी को बुलवा भेजा । एक ब्राह्मण ही बुलाने के लिए गया, पर श्री गुरू जी ने उसका सन्देश सुनकर कहा– "हम फकीर लोग हैं, हमारा पातशाहों से क्या काम"

यह सुनकर ब्राह्मण ने और जाकर मलक को भड़काया कि देखो अब भी पकड़ में है, आपके बुलाने पर भी नहीं आया, मैंने बड़ा समझाया, मगर वह तो कहता है कि हमें मलक से कोई काम नहीं है । इधर सतगुरू जी यह कहकर जंगल में चले गए । पीछे भाई लालो के घर कुछ प्रेमी सज्जन इकट्ठे हुए और उन्होंने सोचा कि यह बात अच्छी नहीं हुई कि सतगुरू जी से हाकिमों की छिड़ गई । ये लोग अन्धे होते हैं, ईश्वरीय रंग की सूझ से रिक्त और राजमद में चूर होकर ये लोग अकारण अत्याचार कर देते हैं । कहीं मलक इस ईश्वरीय सौन्दर्य और ईश्वरीय ज्योति की कोई कष्ट न दे बैठे । इन विचारों में लीन छोटे और नये जागे हुए मनों में प्यार की झनझनाहट छिड़ी । कई एक उपाय सोचे गए, पर पूरे होते न दिखाई दिए । सायंकाल को जब श्री गुरू जी घर आए तो बातचीत सुनी और बोले–'कोई चिन्ता न करो, वह निरंकार ! जिसके हम हैं आप ही सब कुछ करेगा नाम जपो, निर्भय के रंग में रोते रहो' । इस तरह के वाक्य आप कहते थे और नूरानी चेहरा दमकता था, उधर निराश मनो में भरोसा बँधता था ।

२. मलिक भागो

अगले दिन मलिक भागो के भेजे हुए पाँच सरकारी आदमी आए कि कारदार साहब ने आज्ञा दी है कि आप उनके पास कचहरी में उपस्थित हों और यदि आप इन्कार करेंगे तो हमें ज़ोराज़ोरी ले चलने के लिए कहा गया है । श्री गुरू जी सुनकर मुस्कराये और कहने लगे–अच्छा भाई हम चलते हैं, यदि साईं को यों ही अपना काम पूरा करना है तो यों ही सही । यह कहकर धीरे-धीरे चल पड़े । प्रेम की डोर से बँधा हुआ लालो पीछे-पीछे चला और भी दो-चार प्रेमी सज्जनों को जब इस घटना का पता चला तो वे भी कचहरी पहुँच गए । कुछ तमाशबीन भी जा पहुँचे ।

सभा लगी हुई थी, मलिक भागो बैठा था । वह श्री गुरू जी को अन्दर ले गया । श्री गुरू जी जैसे ही गए थे, चुप खड़े हो रहे। देखकर मलिक का मन कुछ कँपा, कुछ कहने लगा तो जिह्वा रुक

गई । तब श्री गुरू जी बोले, 'हे मलिक ! किस काम के लिए बुलाया है ? फ़कीरों के साथ क्या काम है ?'' मलिक ने हकलाकर कहा, 'आप को साधु समझकर ब्रह्मभोज पर बुलाया था, ब्रह्मभोज में क्या दोष था कि आप नहीं आए ?'

गुरू जी–हम फ़कीर हैं, साईं जहाँ पर जैसी देता है, खा लेते हैं ।

मलिक–फिर मेरे घर खाने में क्या दोष था ?

गुरू जी–तुम्हारे घर अनेकों खा गए, एक ने न खाया तो क्या हुआ ?

मलिक–जब सब ब्राह्मण, खत्री, साधू महात्मा खाएँ और एक साधु अकड़कर कहे, कि मैं नहीं खाता, तो वह अपमान है ।

गुरू जी–फ़कीर किसी का अपमान नहीं करता । दानी दान करता है करे, लेने वाला ले, न लेने वाला दण्ड योग्य क्यों ?

मलिक चुप हो गया, फिर क्रोधित होकर कहने लगा—तुम खत्री होकर, वेदी होकर शूद्रों के घर खाओ, डोमों-मिरासियों को पास बैठायो, उच्च जाति के निर्धनों को शूद्रों के साथ एक पंक्ति में बैठाकर खिलाओ और धर्म की रीति तोड़ो और उच्च जाति के खत्रियों के घर आमन्त्रित होकर भी न आवो, यह क्या फ़कीरी है ? तब श्री गुरू जी मुस्कराए और कहने लगे, 'अच्छा ! फिर मलिक जी ! एक पूआ अपने ब्रह्मभोज का मँगवाओ ।' उधर एक आदमी पूआ लेने के लिये गया, इधर लालो को कहा, 'तू भी अपना सूखा टुकड़ा कोदो का ले आ ।' जब दोनों आ गए तब गुरू जी ने एक हाथ में पूआ लिया और एक हाथ में कोदो का टुकड़ा । बाँह लम्बी करके दोनों को दबाया तो पूए में से रक्त की बूँदें और कोदों में से दूध की बूँदें गिरनी शुरू हो गईं । गुरूजी चुप तथा उसी तरह अचल खड़े रहे और लालो तथा समस्त उपस्थित जन देखते रहे । भागो अचम्भे में रह गया । उसे लज्जा आई, क्रोध आया, खीझ चढ़ी और फिर चेहरा फीका पड़ गया ।

गुरू जी–बबूल के बीज के साथ काँटे नहीं होते, पर बीज से पौधा पैदा हो जाने के बाद काँटे आप ही निकट पड़ते हैं । अधर्म का इकट्ठा किया पैसा और उससे बने पदार्थ किसी तरह भी दुखदायी नहीं दीखते, पर जब निर्मल हृदय वाले उन्हें खाते हैं, तो पीड़ित होते हैं और अधर्म के काँटे चुभते हैं । किसका जी नहीं करता है कि पूए ओर खीर न खाए और कोदो खाए ? परन्तु जान-बूझकर कौन प्राणी खाँड में लपेटा विष खाएगा ? ऐश्वर्य, प्रताप, अधिकार, पदार्थ, धन और धाम यदि धर्म की कमाई नहीं तो किस काम के ? दरिद्रता, कंगाली, मटर की है या कोदो की, पर जैसी भी है हकहलाल की है तो मन शान्त तथा निश्चिन्त है । यही मन यदि धन्यवाद में है तो जागृत मन हैं, हाँ, मन में ईश्वर और हाथ में काम । ऐसी कमाई का भोजन, ब्रह्मभोज है । यह कहते हुए सतगुरू जी बाहर आ गए । मलिक कुछ कहने का साहस न बटोर सका । सभा में यह तमाशा देखकर लोग चकित थे, अनेकों जीवों में गुरू जी के कलावान तथा करनी वाले होने का निश्चय बैठ गया ।

सैदपुर के नवाब का पुत्र बीमार हो गया । एक दिन मलिक भागो पता लेने गया तो वे बहुत

उदास बैठे थे । वैद्य-हकीम निराश हो चुके थे । भागो ने यह निराशा देखकर कहा, 'नवाब साहब ! ऐसे समय बहुधा फ़कीरों की कृपा द्वारा काम बन जाता है, कोई पूरा फ़कीर यदि मिल जाए तो उसकी शक्ति से आराम आ सकता है ।' नवाब ने कहा, "पूरा फ़कीर कहाँ खोजूँ ?" तब भागो ने कहा– 'पाँच-दस-फकीरों के नाम तो मैं बताता हूँ, सभी को पकड़ मँगवाओ, और जेल में रखो, जब तक स्वस्थ न कर दें, छोड़ो मत । यदि उनमें कोई पूरा हुआ तो अपने-आप निकल आएगा, अन्यथा प्रजा इनसे मुक्त होगी ।' नवाब ने यह सुनकर आज्ञा दी कि सभी को बुलवाओ । भागो ने जिन नामों की सूची लिखकर दी उसमें गुरू नानक तथा मरदाना का नाम भी लिख दिया । थोड़े समय के पश्चात् दास चल पड़े और दस-पाँच साधुओं को नवाब के डेरे में ले आए । श्री गुरू जी बाहर कंकड़ों वाले स्थान पर बैठे थे, वहाँ से गुरू जी को भी बुला लाए । लालो सुनकर भागा और श्री जगत के प्रकाश को जेल में बैठा देखकर रो पड़ा–

हे जगत ! तेरा अन्धकार, तू कभी भी अपने सुखदाताओं को नहीं समझा, कभी भी उनका सत्कार नहीं किया और कभी भी उनको दुःख देने से न टला ।

पर श्री गुरू जी ने लालो को संकेत किया और कहा, 'लालो सावधान हो, वाहिगुरू का चोज़ है ।'

इतने में नवाब आ गया और कहने लगा, साईं के फ़कीरो ! मेरा पुत्र बीमार है, इसके लिए प्रार्थना करो जो अल्लाह (ईश्वर) कृपा करे और वह स्वस्थ हो जाए ।'

गुरू जी–कभी बबूल हो अंगूर लगे हैं ?

नवाब–फ़कीर साईं । कभी नहीं ।

गुरू जी–ज़ोर को कुशलता का फल कैसे लगेगा ?

नवाब–मैं नही समझा ।

गुरू जी–तुमने ईश्वर के फ़कीर ज़बरदस्ती बुला भेजे हैं, वे ज़ोर से लाये गए हैं उनके मन के ऊपर इस धक्के का क्या प्रभाव पड़ेगा ? सोचो । जो ज़ोर-ज़बरदस्ती से लाये गए हैं वे कुशलता की प्रार्थना कैसे कर सकते हैं ?

नवाब (अधर काटकर) बात तो उचित है ।

गुरू जी–तुम जिस प्रकार ज़ोर से भूमि-कर लेते हो, जिस प्रकार बेगार करवाते हो, उसी प्रकार तुम ईश्वर के घर से 'ज़ोर' के साथ कुशलता माँग रहे हो ?

सैदपुर पठानों का एक बड़ा किला था और नवाब वहाँ का किलेदार था । उसकी सख्त आज्ञा सारे इलाके में मानी जाती थी । यही नवाब था जिसने बाबर के साथ लोहा लिया था और सैदपुर में कत्लेआम हुई थी । इस समय गुरू जी के बेधक वाक्य उसके अन्दर बिंध गए । उसे पुत्र का मोह व्याकुल कर रहा था, अतः नरम होकर कहने लगा–दाता जी ! हर सिपाही लोग कठोर होते हैं, हमारी उजड्ड मति पक जाती है, अतः आप कृपा करो, अपराध क्षमा करो और प्रार्थना करो कि बेटा स्वस्थ हो ।

गुरू जी–ईश्वर की आज्ञा मानो जो होता है, होने दो । उसकी आज्ञा पर ठहरो; यदि स्वस्थ होना होगा तो हो जाएगा; यदि स्वामी की मर्ज़ी न हुई तो नहीं होगा ।

नवाब–साईं जी ! मोह का चक्कर है, ममता मिटती नहीं, यह जीव तड़पता है, कोई रेख में मेख मारो ।

गुरू जी–ममता वाले ! ईश्वर के रंग देखो ! तुम्हारी कठोरता तथा ज़ोर ईश्वर के घर में मंजूर नहीं, वहाँ से आज्ञा हो चुकी है, और आज्ञा अटल है । ज़ोर को काटने के लिये ज़ोर आ रहा है । आज शहजादा सुख की नींद सोता है, सोने दो कल पता नहीं काया के कपड़ों कि किस प्रकार टुकड़े-टुकड़े होंगे और कुँवरों तथा शहज़ादों को किस प्रकार लकड़ियों की भाँति काटा जायेगा, आज की यह घटना यदि घट जाए तो आसान है, जो आगे आ रहा है, वह कठिन है ।

हाकिम न समझा । हाँ, उसका भाव तो न समझा पर सहम गया । बोला–साईं जी ! कृपा करो, मैं अपने इलाके में ज़ोर नहीं करूँगा । मेरे ऊपर कृपा करो और बच्चे को जीवन प्रदान करो ।

गुरू जी–बच्चे का जीवन तो फकीरों के झूठे टुकड़ों में हैं, पर बच्चे की ओर अपने कर्मचारियों की रूह पर दया करो जिससे वह बच जाए । यह सरदारी किस काम की है ? यह अमीरी किस अर्थ की है ? यह धन किस काम में लगना है ? क्यों मनुष्यों की हड्डियों के ढेर इकट्ठे करके ऊपर बैठकर समझते हो कि मालदार हो गए हैं ? धर्म सँभालो, न्याय करो, दया करो । पर ईश्वर के रंग (लालो की ओर देखकर) देख लालो ! निरंकार के रंग ने पुकार दे दी है, पर कोई सुनेगा नहीं, आज्ञा में चढ़ी हुई पतंग के समय डोर को कौन खींचता है ? धुर से हो चुका है, सारे ज़ोरों का मूल्यांकन हो जाना है । कौन ऐश्वर्य के समय होश करता है ? हाँ, मनुष्य को मद, न्याय पर नहीं रहने देता ।

नवाब–साईं जी ! बच्चे को जीवन प्रदान कीजिए ! जो भूल हुई है, उसके लिए क्षमा कीजिए । आप साईं वाले हैं, हम भूल करते हैं ।

गुरू जी–हे खान ! यदि तुम्हें इस समय का ही सुख ज्यादा है तो वाह ! वाह !

नवाब (सोच में से निकलकर) मैं समझ गया । (भागो की ओर देखकर) हाँ सभी फकीरों को छोड़ दो । (गुरू जी की ओर देखकर) आप भी दाता जी ! जाओ, मैं आपके द्वार पर उपस्थित होकर बेटे के जीवन का दान माँगूगा । मुझे भूल हुई है, क्षमा कीजिए ।

गुरू जी–जाओ लालो, कोई झूठा टुकड़ा ला दो जिससे लड़का स्वस्थ हो जाए ।[1]

लालो गया, जाकर टुकड़ा ले आया । रोगी को दिया, उसने खाया और तत्काल स्वस्थ हो गया । पठान हाकिम अचम्भा करने लगा, दरबार अचम्भा करने लगा, भागो अचम्भा करने लगा, समस्त मुक्त फकीर अचम्भा करने लगे !!!

सतगुरू जी–सचेत होवो खान ! ऊपर से आज्ञा की कलम चल गयी है । ज़ोर के लिए ज़ोर

---

१. गुरू नानक प्रकाश में लिखा है कि इस समय गुरू जी ने कहा कि तेरा पुत्र तो मर चुका है राज़ी किसको करना है? जब नवाब ने घर से पता मँगवाया तो पुत्र मर चुका था, पर खालसा तवारीख और बाले वाली जन्म साखी में लिखा है कि लालो से झूठा टुकड़ा मँगवाकर गुरू जी ने नवाब का बेटा स्वस्थ कर दिया ।

आ रहा है । प्रार्थना और कुशलता की आवश्यकता वहाँ पर है । करो यदि कुछ बन सकता है तो करो । जनता ईश्वर की है, धर्म का काम सबका व्यवसाय है, ज़ोर तथा अत्याचार ईश्वरीय आज्ञा के विपरीत है ।

नवाब न समझा । उसने समझा कि मुझे न्याय करने के लिए कहते हैं, सो मैं करता हूँ और आगे भी करूंगा । पर उसका न्याय भी एक धक्का ही था । वैसे तो पठानों का सारा शासन ही प्रजा के लिए कष्टदायक था । गुरू जी ने फिर ध्यान नहीं किया, मस्त रंग और चुप होकर चले आए और कंकड़ों पर जा बैठे । लालो ने आकर पूछा, पातशाह ! आज आप अंगम की बोले हैं ?" तब सतगुरू जी ने होनहार का संकेत करके मूकता धारण कर ली । अगले दिन मलिक भागो आकर चरणों पर गिर गया, और कहने लगा–हे ईश्वरीय दाता ! मैंने बड़ी अवज्ञा की है, कृपा करके क्षमा कीजिए, मुझे लोगों ने भुलाया था ।'

गुरू जी–कारिन्दा होकर बहकाने में आना, हे भागो ! यह कैसे ? कारिन्दागीरी का त्याग कर दे, धर्म का काम कर, यदि तुम्हारी आँखें सत्य-असत्य की पहचान नहीं कर सकतीं । हाकिमों के सिर पर हाकिम है, उसके न्याय से डर, वह तोलता है, चाहे तोलता हुआ दिखाई नहीं देता ।·····
·····उसका न्याय आ रहा है ।

मलिक–मुझ से अवज्ञा हुई, क्षमा कीजिए !

गुरू जी–मेरी अवज्ञा, नानक की अवज्ञा ? हैं नानक की अवज्ञा ! कोई नहीं । उस अवज्ञा से डर जो तुमने अपनी तथा अपनी प्रजा की की है, जो तुम ईश्वर की कर रहे हो । देखो ! पशु-पक्षी सारे दिन पेट भरने के लिए फिरते हैं । काम करते हैं और पेट भरते हैं । सदा प्रसन्न, सदा नीरोग, आकाश में उड़ते हैं । परिश्रम के भोजन में सुख है । परिश्रम में शरीर को स्वस्थ रखता है । मेहनत साईं के मार्ग में सुख देती है । लोगों के कमाये धन को ज़ोर से छीनना, धोखे के साथ छीनना, इकट्ठा करना और उसके ऊपर साँप की भाँति पालती लगाकर बैठना, शरीर का, आत्मा का मन का रोग है । तुम 'आपा' खो बैठे हो, अपना-आप मार बैठे हो, दया करो आपे के ऊपर, इस मृतक को जीवित करो । धर्म का कण इसमें डालो ।

भागो–पातशाह ! अब तो मन ने तरंग खाई है, जो आप कहो, मीठा है, पर मुझे बताओ कि इस आलसी शरीर के साथ, इस आलसी हो चुके शरीर से मजदूरी किस प्रकार करूँ ?

सतगुरू–पातशाह का सिंहासन मजदूरी है । गरीब की टोकरी मजदूरी है, पर तब यदि दोनों ईश्वर पर भरोसा रखकर अपना-अपना काम करें । तुम्हारी कारिन्दागिरी मेहनत है, मजदूरी है, काम है । यदि तुम सत्य-असत्य को पहचानो, न्याय करो, घूस न लो, जोर-अत्याचार न करो तो । हाँ, सब काम, सारे उत्तरदायित्व, सारे व्यवसाय हैं, यदि उनको भली-भाँति किया जाए ! चाहे कोई व्यवसाय मिला है, चाहे स्वयं लिया है, धोखेबाजी सभी व्यवसायों की शक्ति को नष्ट कर देती है । यदि उनमें धोखेबाजी नहीं तो मजदूर की टोकरी, बणिक का तराजू, कारिन्दा की कारिन्दागिरी, राजा का न्याय और साधु को शुभ मति से दान देना, सभी व्यवसाय हैं । हाँ, यदि हृदय में स्वामी को धारण करके यह सब किया तो सब कुछ बन्दगी हो जाता है । जो कुछ भी करना हमारे लिए हमारे

हिस्से में स्वामी की ओर से, भाग्य द्वारा अथवा उसके चुनाव से अथवा किसी की कृपा द्वारा आया है। अपना रक्त निकालकर, खेती का काम करके, सरकार कर देकर, जिस कृषक के पास कठिनता से वर्ष-भर के लिए अनाज की रह जाता है, उसको डरा-धमकाकर उससे कुछ और लेना, उसका रक्त खींचने के समान है। जैसे पशु का गला काटकर रक्त निकाल लिया वैसे किसी के काम में से जोर अथवा छल-कपट द्वारा लेना, उसका रक्त निकालना है।

भला तुम्हारा ब्रह्मभोज साईं खा सकता है ? साईं के द्वार के प्यासे खा सकते हैं ? जब कि उसके ग्राम-ग्रास में वेदनाएँ तथा रोने की दुखदायी आवाज़ें और रक्त की बूँदें टपकती हैं। तेरे ब्रह्मभोज, तेरे दान, तेरे श्राद्ध, तेरे यज्ञ अपनी प्रशंसा के लिए हैं, अपने पापों पर परदा डालने के लिए हैं, रक्त के तालाबों पर छप्पर डालना है। शोक है उन पर जो इस पुण्य के दान को खाते हैं; शोक है उन पर जो इस अन्न पर पलकर साधु, ब्राह्मण अथवा तपस्वी कहलाते हैं। भागो ! देश अत्याचार के नीचे जल उठा है। प्रजा जोर के नीचे, चीख रही है। धुर से आज्ञा हो गई है, बहुत सख्त पापों का बन, आकाश के कष्टों के बादल खींच लाए हैं। अब इस अत्याचार को सहन करने के लिए आप तैयार हो जाओ जो अत्याचार तुम लोगों पर करते हुए लज्जित नहीं हुए। जो करते समय तुम्हें कड़वा नहीं लगा, अब उसको भोगने पर पता चलेगा कि वह कितना कड़वा है।

भागो काँप उठा, और रोकर, चरणों पर गिर पड़ा—क्षमा कीजिए, हे दाता ! क्षमा !

गुरू जी—क्षमा तो करेगा क्षमा करने वाला। या क्षमा करेंगे वे गरीब और दुर्बल, जिनको तुमने गरीब तथा दुर्बल बनाया है। जाओ, उनसे जाकर क्षमा माँगो जिनको तुमने पीड़ित किया है। मैं व्यापार करने वाला फकीर नहीं, पूरा तुलेगा, पूरे तराजू पर। देश पर तूफान आ रहा है। पठान-राज्य के सिर पर आँधी आ रही है। यदि तुम्हें अपनी जरूरत है तो नम्र हो जाओ, क्षमा माँगो और अपने हाथों से काम-धन्धा करो, फिर उस स्वच्छ कमाई से उज्जवल होकर ऊँचा उठो।

साईं के प्यारे महावाक्यों को सुनकर भागो घर चला गया। जाकर घर के दरवाजे खोल दिए और उन प्रजा लोगों का सारा धन लुटा दिया जिनसे उसने वह सर्पिणी (माया) इकट्ठी की थी, और जो पालती मारकर बैठी हुई भागो पर विष चढ़ा रही थी। कुछ लोगो कहने लगे कि भागो बावला हो गया है, पर आम जनता में 'नानक तपे' का यश फैल गया, कि उसने इतने भयंकर साँप को सीधा कर दिया। हाँ, सैदपुर के इलाके में तथा प्रजा में भागो का यश फैल गया। दुःखी हृदयों में से आशीर्वादों की नदी बहकर ईश्वर के द्वार पर पहुँच गई। एक दिन सायंकाल को भागो लालो के घर गया : जगत का स्वामी मकई की रोटी खा रहा था, उन्होंने एक टुकड़ा भागो को भी दिया, 'खाओ भाई, और इसका स्वाद देखो।' भागो के लिए आज पहला दिन था जबकि उसे अन्न का स्वाद आया। करबद्ध हो वह कहने लगा—'क्षमा करने वाले ! कृपा करो और अपने चरणों के संग लगा लो, आने वाले दुःखों से रक्षा करो, लोक-परलोक में सहायता करो।'[1]

---

१. "गुरू नानक प्रकाश" और "गुरू नानक सूर्योदय" में भागो का प्रसंग फिर नहीं आया परन्तु बाले वाली जन्म साखी में उसके क्षमा माँगने और गुरू जी की कृपा का प्रसंग है।

गुरू जी–देखो ! जिस प्रजा को तुमने दुख दिया था, उसका हृदय अब शान्त हुआ है और उनका आशीर्वाद ईश्वर के पास पहुँचा है और तुम पर उनकी कृपा हुई है । नाम जपो, देखो धर्म की कृति नाम के बिना सुहागिन नहीं होती । धर्म का काम करने वाले स्वच्छ तो हो जाते हैं, पर कुसंग के कारण तामसी वृत्ति में चले जाते हैं । यदि साथ के नाम की टेक हो, नाम का प्रकाश हो, नाम की शीतलता हो, तब वही साधु, वही संत, वही फकीर, वही महात्मा है । केवल काम करने वाले भी सफल नहीं होते, जो मूर्खता में हैं और पशुओं की भाँति जीते हैं, चाहे सुखी और निश्चिन्त हैं । वनों में, जंगलों में केवल मूकता धारण करने वाले ही साधु नहीं, वे तो टिके हुए यन्त्र हैं, यन्त्र की भाँति उनके शरीर हिलते-डुलते हैं। पर हाँ, वे जो नाम जपते हैं और नाम में उछलते, प्रेम तथा धन्यवाद, विनती तथा रस के साथ चौंकते हैं, ईश्वर की ओर, अन्दर से बाहें ऊँची कर करके अभिलाषा करते हैं, केवल ये जीवित हैं, उनका ही लोक-परलोक सफल है । नाम के बिना मृत हैं, नाम के बिना शरीर में जीवन नहीं । हाँ भागो आज कृपा हुई है, तेरे लिए नाम आया है नाम में जियो, धर्म का काम करो, कुसंग का त्याग करो और सत्संग में रहो, तब बचोगे अन्यथा यहाँ पर अथवा आगे भी ठिकाना नहीं, दोनों स्थानों पर कष्ट मिलेगा ।

भागो फिर चरणों पर गिर पड़ा । वह अब अर्धबेसुध-सा था। लालो ने आकर पानी की छींटा मारा–सतगुरू ने सिर पर हाथ रखा और कहा–'वाहिगुरू'। भागो ने कहा–'वाहिगुरू' और उसके अन्दर भी निवास कर गया–'वाहिगुरू' ।

इस प्रकार जलते हुए जगत की रक्षा करने के लिए शूरवीर सतगरू, घर-बाहर, अपने प्यारे सभी छोड़कर सुलतानपुर से चले । मार्ग में कई स्थानों पर ठहरे । पहला डेरा ऐमनाबाद में लगाया और सत्संग आरम्भ हो गया । दूर-निकट के ग्रामों के कई लोग सुधर गए, पर भागो आर लालो इस नगर के सत्संगी मुखिया सिक्ख–गुरुमुख हुए । नगर के चेटकी मुल्ला और बीराराधन वाले पण्डित और पाण्डेय लोगों की खेलों में लगाते हुए । हाकिमों को भी बहकाते गए । यह उस दिन तक हुआ जब तक कि सारे नगर का कत्लेआम नहीं हुआ और सेना तथा लोगों के साथ आम प्रजा भी पीड़ित नहीं हुई ।[1] गुरू जी कुछ दिनों के पश्चात् विदा हो गए । भागो का सत्संग करता रहा और उस महान कष्ट से पहले जो सैदपुर में हुआ था और कत्लेआम हुआ, भागो नाम जपता, ईश्वर के रंग रांता, सुख की साँस लेकर इस जगत से पहले ही चला गया । श्री गुरू जी कुछ समय यहाँ पर और ठहरे, पर अब जगत्-रक्षा की पुकार तीव्र थी, सो आप यहाँ से चल पड़े। सुलतानपुर से चलते समय अपने पहला पाठ यह सिखाया था कि भोजन, भक्ति, प्रार्थना, स्मरण जो कुछ भी करो वह वाहिगुरू की हुजूरी में करो, गैर-हाजिरी का किया गया स्वीकार नहीं होता । चाहे उसमें अच्छा स्वभाव बन पड़ता है, पर हुजूरी में किए बिना उसका पूरा लाभ नहीं होता । ऐमनाबाद में दूसरा पाठ आपने यह सिखाया कि शरीर संसार में है और किसी मनो-कल्पना द्वारा अथवा दर्शन विद्या के विचार-मात्र से शरीर संसार में से उठ नहीं जाता । इसलिए मन को सिद्ध करते हुए शरीर को धर्म के काम में

---

१. देखो इसी पुस्तक में प्रसंग—सैदपुर बन्दीछोड़ ।

क्रियामान रखो । इसका पालन करो, पर धर्म के काम की कमाई द्वारा करो । यदि धर्म के साथ किया जाए तो प्रत्येक काम, प्रत्येक व्यवसाय कीलें बनाने से लेकर पातशाही तक धर्म का काम है, और धर्म का काम है, और धर्म का काम तब सौभाग्यवान होता है जब हृदय में नाम का निवास हो । ये दो उच्चकोटि के प्रकाश स्तम्भ अपनी धरती पर खड़े करके दाता जी यहाँ से चल पड़े–

(१) भक्ति करो, भजन करो, नाम जपो, हजूरी में ।

(२) जो काम करो, सुन्दर करो, धर्म द्वारा करो, धर्म की कमाई खाओ, फिर नाम जपो । धर्म का काम और नाम इकट्ठा रखो ।

सूचना–सुलतानपुर से चलकर पुरातन जन्मसाखी वाले तो जंगलों को जाना बताते हैं, पर दूसरी जन्मसाखियाँ और नानक प्रकाश आदि लिखते हैं कि आप सैदपुर गए । यह प्रसंग ऊपर आ चुका है । फिर आप तलवण्डी गए राय बुलार का प्रेम वाला आकर्षण आपको आकर्षित कर रहा था और उसको शीतलता प्रदान करनी थी ।[1]

□□

१. बाले वाली जन्मसाखी में लिखा है कि यहाँ पर राय बुलार की दर्शनों के लिए बिनती पहुँची थी ।

६ फिर तलवण्डी

सैदपुर संडियाली से चलकर आप तलवण्डी आए और बाहर एक कुँए पर डेरा डाला । जब परिवार ने सुना तो बाबा कालू, चाचा लालू और माता, तीनों आए और घर चलने के लिए कहा, पर गुरू जी न माने । कुछ समय और वार्तालाप कर चाचा लालू ने कहा कि राय दर्शनों की लालसा में है और आपको याद कर करके बहुत दुःखी हैं, उसके पास तो चलो । तब गुरू जी राय के डेरे पर आए। राय खाट पर बैठा था।[1] गुरू जी को देखकर उठा और निकट जाकर पैरों पर गिरने लगा तो गुरू जी ने सम्भाला । राय ने आपको खाट के सिरहाने की ओर बैठाया और आप पैरों की ओर बैठ गया । काफ़ी समय तक राय के नयनों से आँसू गिरते रहे और गुरू जी किसी कृपादृष्टि से उसकी ओर देखते रहे । फिर राय ने कहा, "हे प्रदत्त ! मुझे ईश्वर से क्षमा करा दो ।"

गुरू जी–आप तो राय जी, धुर से क्षमा किए हुए हो ।

राय–धुर से क्षमा करवाया है तो आप भी अपनी कुछ कृपा करो ।

गुरू जी–राय जी, जहाँ हम हैं वहीं आप हैं ।

राय–एक बार माथा चरणों में लगा लेने दो, मेरी इच्छा तब पूरी होगी । यह कहकर राय ज़बरदस्ती खाट पर से उतर गये और सुन्दर-सुन्दर चरणों में सिर लगा दिया । सिर चरणों के साथ छूते ही राय जी के मन में जहाँ पर प्यार और विरह डेरा लगाकर बैठे थे, वहाँ प्रसन्नता की झनझनाहट छिड़ गई और उसका रोम-रोम विकसित हो उठा । 'नानक भगतां सदा बिगासु' । राय को 'आत्म विकास' जो सच्ची भक्ति का फल है, प्राप्त हुआ । इस विकास के आने पर पापों तथा उनके फल-दुःखों का नाश होता है । 'सुणिऐ दूख पाप का नासु' । दुःख पाप झड़ गए, "नानक भगतां सदा विगासु" ।

कुछ समय इस रम में मगन रहकर राय ने अपने दास से कहा कि सुधा ब्राह्मण से कहो, कि भोजन तैयार करे । फिर उस दिन सबने भोजन वहीं पर किया ।

राय के साथ इतना प्रेम देखकर सारे परिवार ने ज़ोर दिया कि राय जी आप प्रेरणा कीजिए कि नानक बाहर न जाएँ । तपस्वी के भेष में ही रहे, पर यहीं पर रहे । राय ने विनय की कि आप फ़कीरी ही करो पर टिको यहाँ पर ही । मेरी जो सारी भूमि है वह आपकी ही हुई है । काम करने वाले काम करेंगे, आप बाँटो, दो, जैसे आपको सुख मिले, वैसे करो, कोई कुछ नहीं कहेगा । गुरू जी बोले–किसानी करना, दुकान पर बैठकर व्यापार करना, चलो फिरकर सौदागरी करना और कमर बाँधकर नौकरी करना, इन सब वस्तुओं की अपेक्षा हमने साईं के नाम को चित्त में बसाया है, यही है किसानी, यही है दुकानदारी, यही है सौदागरी और यही है नौकरी करना ![2] राय जी । यह

१. तवारीख खालसा ।

२. सोरठ महला १ में 'मनु हाली किरसाणी करणी' यह शब्द गुरू जी ने उस समय उच्चारण किया लिखा है, जिसका तत्व सारांश यह है ।

सब-कुछ ईश्वर की आज्ञा है। राय तो आज्ञाकारी था, उसने समझ लिया कि यह-ईश्वर के रंग में रांते हैं। उसके प्रेम में जगत तारने के लिए फकीर बने हैं। इनको रोकना आज्ञा में हस्तक्षेप करना होगा, तब फिर उसने यह कहा-कोई और आज्ञा कीजिए जिससे मैं भी कबूल हो पड़ूँ। तब गुरू जी बोले-हे राय। आज्ञा यह है- वह काम करना जो उस (ईश्वर) को अच्छा लगे। उस ईश्वर की आराधना करना, जहाँ पर जोर न चले, वहाँ पर जोर साईं के आराधना में लगाना। उसकी शरण में रहना।[1]

१. तुलसां दासी का निस्तार [2]

इन्हीं दिनों की वार्ता है। एक दिन माता तृप्ता जी बोलीं-"तुलसां जाओ, लालजी से कहो कि भोजन तैयार है, आकर जीम लें।"

तुलसां-बहुत अच्छा जी।

जब तुलसां गई तो जगत को सुन्दरता प्रदान करने वाले सतगुरू जी सो रहे थे। चेहरे पर कुछ ऐसा ऊँचा तथा पावन प्रभाव था कि तुलसां को जगाने का साहस न हुआ। फिर वह सोचने लगी कि यदि मैं चरणों को दबाऊँ तो सुख से जाग उठेंगे। यह सोचकर तुलसां ने जब चरण छुए तो उसके शरीर में जीवन की झनझनाहट छिड़ गई, जिस तरह बिजली को छूने न शरीर में थरथर करती एक लहर-सी गुज़रती है। इस झनझनाहट ने उसकी आँखों के परदे हटा दिए। घर का टीका उसको संसार का टीका होकर दिखाई दिया, उसके मन में जान लिया कि यह सच्चा पुरुष है और जगत् में मानवीय खेल कर रहा है। इतनी ऊँची सुरत हो गई कि दासी का मन ऊँचे मण्डलों में चला गया। चारों और क्या देखती है कि संसार की रूह बदल गई है, कोई दुःख-कलेश नहीं हैं, भय भ्रम का चित्र ही नहीं रहा, सुख-ही-सुख है। आह, जिन चरणों के स्पर्श ने यह रंग पलट दिया है अब बेबस ही उन पर मस्तक लगाती है। नेत्रों के साथ उनको दबाती है और बलिहारी हो-होकर देखती है कि सारे संसार का केन्द्र है तो यह है। विह्ल हुई चरणों का चूमती है तो नेत्र एक चक्कर खाकर एक कपास के रंग के तीक्ष्ण; पर शीतल प्रकाश में जा खुलते हैं। अब क्या देखती है कि सतगुरू के प्यारे सिक्ख मनसुख का जहाज़ संगलादीप के समीप डूबने लगा है और वह श्री गुरू नानक देव जी का ध्यान धरकर एक मन होकर विनय कर रहा है और श्री सतगुरू जी आप पहुँचकर उसकी सहायता कर रहे हैं। इतने में क्या देखती है कि जहाज़ खतरे से पार हो जाता है। तुलसां, यह 'दासों के साथ प्यार के विरद का' कौतुक देख रही थी कि अन्दर से आवाज़ आई-'री तुलसां बिटिया ! जल्दी लाल जी को जगाकर ला।'

---

१. इक फुरमाइस आखीअै जे मंनै सांई। जिसते जोर न चलई करि जोर थिआई।। ऐसा सतिगुर राइ जी किसै हाथ न आवै। सोई कार कमावणी जो उसको भावै।।१।।रहाऊ।।
हिकमति हुकम न चलई कोई करि देखै।। सेख मसाइक सिध साध सभ लिखीअै लेखै।। दस अवतारी आइया जगु हुक्म चलाइया।। अन्त काल धरती पए कुछ हथ न आइआ।। बड़े-बड़े महाबली जोधे अर सूरे।। कहु नानक सभ देखिआ सभ धरती पूरे।
यह शब्द जन्मसाखी बाले वाली में से यहाँ पर दिया गया है, पर गुरू ग्रन्थ साहिब जी में नहीं है।

२. तुलसां दासी की कथा भी गुरू नानक प्रकाश में से यहाँ पर लिखी गई है।

तुलसां इस आनन्द में अनचाहे उठी, अन्दर गई तो माता जी ने पूछा-'लालजी, उठे हैं कि नहीं ?'

तुलसां–माता जी ! लाल जी न कहो, सृष्टि के स्वामी कहो । वे कोई सो तो नहीं रहे कि मैं जगा सकूँ । अम्माँ ! वह तो मनसुख का डूबता हुआ जहाज पार कर रहे हैं । मैं साहस नहीं बटोर सकी कि जगाकर ले आऊँ ।

माता–अच्छा बेटी,·····और कौन हँसी करेगा, अपने ही पैदा किये हुए तो । यह दिन भी आने थे, तुमको भी हमारे साथ मज़ाक करने थे ।

यह कहकर माता आप गई और इधर चौके में दीदी नानकी आ बैठी ।

नानकी–तुलसां ! तूने भारी भूल की है । यदि वाहिगुरू के रहस्यों में से कोई कण मिल जाए तो इस तरह प्रकट नहीं करना चाहिए । परमेश्वर के प्रेमियों को कौन पहचानता है ? सारा संसार सदा से ईश्वर के प्रेमियों का मज़ाक करता है, बाद में पश्चाताप करता है; पर जीते-जी हर समय बेकदरी ही रही है । जब परमेश्वर की अथवा परमेश्वर के प्रेमियों की करनी की कीर्ति बिना विचार के की जाए तो निन्दा होती है । इसलिए यह प्यार नहीं होता, बल्कि हम-आप निन्दा करवाते हैं । बहन, जिह्वा में ताला लगाओ और अन्दर सुख लो ।

इतने में माता कौतुकी सतगुरू जी को जगाकर ले आयीं । लाकर भोजन कराया और बाद में कहने लगी कि 'देख लाल ! यदि तू फकीरों की भाँति बावला होकर न फिरे, कोई काम-काज करें, सुन्दर बिरादरी-पंचायत में बैठे, तो लोग हमारे साथ हँसी-मज़ाक तो न कर। पहले तो बाहर वाले ही हँसी उड़ाते थे, अब घर के नौकर तक मज़ाक करते हैं ।'

सतगुरू जी–माता जी ! किसने आपसे कोई बेअदबी का वाक्य कहा है ?

माता-यह देखो, तुलसां आज कहती थी कि मैं किसको जगाऊँ, लाल तो सागरों में जहाज़ तारता है ।

सतगुरू–माता जी ! तुम दुखी न होओ, तुलसां का क्या है, यह तो बावली है, बावलों से क्या गुस्सा ?

यह कहना ही था कि दीदी के पाँवों के नीचे से मिट्टी निकल गई, पृथ्वी, आकाश चक्कर खा गए । उसने 'हाय' करके निःश्वास लिया, फिर सँभली, और जिह्वा रोककर चारों ओर देखा । तुलसां बावली हो गई ।

अगले दिन जब श्री गुरू जी एकान्त में बैठे थे तो दया की खान दीदी ने विनती की– हे बीर ! हे निरंजनी ज्योति, तुलसां पर कृपा करो !

सतगुरू जी–दीदी ! चिन्ता न करो, तुलसां का कुछ नहीं बिगड़ा । वे साईं का स्मरण करेगी और पचाएगी । असह्य का लहन करेगी । बावलापन इतना ही रहेगा कि प्राप्त वस्तु की निन्दा नहीं करेगी और किसी बात से बावली नहीं होगा । बावला वह तो वाहिगुरू के प्यार में बोल न सके, तुलसां को हाज़मे का चूरण मिला है । वह अब अन्तस के सुख को सहन करेगी ।

निरंजनी ज्योति को पहचानने वाली दीदी ने धन्यवाद दिया। तुलसां के दिन आत्मसुख में व्यतीत हुए।

सूचना--इस प्रकार कुछ दिन तलवण्डी रहकर श्री गुरू जी फिर सैदपुर संडियाली[1] लालो के घर चले गए। पाँच दिन रहकर फिर वहाँ से भी चले गए। इन लेखकों ने मार्ग के समाचार नहीं दिये हैं। पुरातन जन्म साखी ने सुलतानपुर से 'तब बाबा जी उजाड़ कऊ चले' लिखा है और आगे उप्पल खत्रियों के घर वाले नगर का और सज्जन ठग का प्रसंग दिया है।

लगता है कि गुरू जी सैदपुर ज़रूर गए हैं, वहाँ पर निशान गुरूद्वारा रोड़ी साहिब और लालो का कोठा अब तक मौजूद हैं। यह भी ठीक लगता है कि राय से मिलने के लिए तलवण्डी गए हों, क्योंकि वह वृद्ध था। और उसका कल्याण सतगुरू का परम प्यारा मन्तध्य था। भाई बाले वाली जन्म साखी में गुरू जी का दोनों स्थानों पर जाना लिखा है। (पृष्ठ ७८-८३)। वहाँ से इस ओर आए और दक्षिण की ओर चल पढ़े और निर्जन-निर्जन में से चलते गए। इसका तात्पर्य लाहौर से दक्षिण को निर्जन प्रान्त में से होकर यात्रा करने का है। एक बसती के पास बाहर डेरा करते हैं और मरदाना से कहते हैं कि इस नगर में उप्पल खत्रियों का घर है वहाँ पर जाकर खड़ा हो जा, तुझे भोजन आदि सब-कुछ मिलेगा। हड़प्पे के गुरूद्वारा में जाकर खड़े हों तो लगता है कि निर्जन पार करके सुन्दर सस्ती उस समय यही थी। शहर से बाहर गुरुद्वारा है जो अब (इस पुस्तक से लिखते समय) एक प्रेमी सिंह के उद्यम द्वारा बड़ा सुन्दर बन गया है। आप यहाँ पर आकर ठहरे और मरदाना नगर में उप्पलों के घर जा खड़ा हुआ। यह प्रसंग आगे आता है। इस ठिकाने से चलकर गुरू जी सज्जन के घर जा पहुँचते हैं। सज्जन की समाधि अब तक मौजूद है और तुलम्भे के इलाके में भाई जोधसिंह की धर्मशाला के निकट है। सो हड़प्पे से और नीचे की ओर जाकर यह स्थान आता है। यदि पुरानी शाही सड़क जिसको फूस वाली सड़क कहते हैं, मिण्टगूमरी से चलें तो पहले हड़प्पा, फिर चीचावतनी, फिर बुरजी, फिर तुलम्भा और फिर मखदूमपुर, फिर करीरवाला, रावाँ और आगे मुलतान आता है। मखदूमपुर रेल का स्टेशन है जो खानेवाल शोककोट के बीच में है। स्टेशन से समाधि लगभग आधा या पौन मील है। यहाँ पर एक पुराना खंडहर है जो भाई सज्जन (ठग) की भिड़की (खंडहर) कहलाता है। नही उसकी बस्ती थी। यह भिड़की मखदूमपुर से कोई डेढ़ मील की दूरी पर है। समाधि आजकल (पुस्तक लिखते समय) गोसाइयों के अधिकार में है जो उस समाधि पर से सज्जन का नाम हटाना चाहते हैं। पर पुरातन सारे बताते हैं कि तीन समाधियों में से एक सज्जन की है और दो गुसाइयों की। पर भिड़की को सब लोग अब तक सज्जन की भिड़की कहते हैं। समाधियों के पास ही भाई जोध का पक्का डेरा है, जो नगर से बाहर है। पुरातन लोग बताते हैं कि सज्जन का उद्धार करके गुरू बाबाजी यहाँ पर बैठे थे। सातवें गुरू से वरदान प्राप्त करके भाई जोधजी ने यहाँ पर आकर ठिकाना किया और भक्ति करते रहे। दशम पातशाह (गुरु गोविन्दसिंह जी) के समय की मसन्दों की पकड़ के समय भाई जोध भी आनन्दपुर पहुँचे। भाई फेरू ने आपकी सच्ची फकीरी सतगुरू जी को बताई। फिर और कृपा हुई। फिर आप यहाँ पर आ गए और सतनाम का छींटा देते रहे। आपने यहाँ पर ही प्राण दिए थे। यह ठिकाना उनकी यादगार है जो स्टेशन से आधे मील की दूरी पर रेल के 'सिगनल' के पास है।

१. इस नगर का नाम अब ऐमनाबाद है।

सज्जन की समाधि को कई लोग भाई सज्जन की समाधि कहने के स्थान पर बगैर समझे-सोचे सज्जन ठग की समाधि कर देते हैं । सज्जन 'ठग' न रहा 'सन्त' हो गया था, पर लगे घाव स्वस्थ होकर भी निशान छोड़ जाते हैं । सज्जन सन्त हो गया पर पहली उपाधि 'ठग' नाम के साथ लगी ही रही ।

सज्जन ठग की कथा आगे है ।

□□

१० सज्जन ठग

'ठगै सेती ठगु रलि आइया साथु भि इको जेहा ।'

[रामकली वार महला ५-७]

"महा बिखादी दुसट अपवादी ते पुनीत संगारे" ॥१॥

[राग आसा महला ५]

१. हड़प्पे की साखी

परबतु सुइना रूपा होवै हीरे लाल जड़ाऊ ।
भी तूँ है सालाहणा आखण लहै न चाऊ ॥

[वार माझ-सलोक महला १]

जब श्री गुरू बाबा सतगुरू नानक देव जी जलते हुए जगत् का उद्धार करने के लिए चल पड़े तो पहिले निर्जन वनों की ओर रुख लिया । वनों-ही-वनों में जाते । यदि बस्ती आ जाती तब उसमें प्रवेश न करते । एक दिन एक बस्ती आई, तो मरदाना से आपने पूछा, 'मरदाना भूख लगी है क्या ?' जब मरदाना ने कहा—'पातशाह ! आप तो अन्तर्यामी हैं ।' गुरू जी बोले—'जा मरदाना, बस्ती में चला जा ओर भोजन कर आ ।' मरदाना ने कहा—'जी ! मुझे तो नगर में कोई जानता नहीं, बिना माँगे भोजन कौन देगा ? यदि आप कहें तो माँगकर खा आऊँ ?'

गुरू जी—शब्द के गायक ! तुझे माँगने की क्या ज़रूरत ? तू जा', नगर में उप्पल खत्रियों का घर है, वहाँ पर जा खड़ा हो, चुप ही रहना, वे लोग भोजन करते होंगे, और तुझे जाते ही देखकर प्रसन्न होंगे । सारा नगर उमड़ पड़ेगा । हिन्दू-मुसलमान सभी तेरे चरणों पर झुकेंगे और छत्तीस प्रकार के भोजन ला-लाकर आगे रखेंगे । कोई वस्त्र भी लाकर भेंट करेगा । जो भी तेरे दर्शन करेगा, वह मन में कहेगा, यहाँ पर सर्वस्व लाकर आगे रखूँ । तेरे दर्शन से बलिहारी हो-होकर कहेंगे, वाह साईं के सुन्दर ! तुमसे निहाल हो रहें हैं । पर मरदाना ! कई ऐसे भी होंगे जो तेरी परवाह नहीं करेंगे कि तू कौन है और कहाँ से आया है ।

यह वचन सुनकर मरदाना नगर में गया । गुरूओं के पूरे गुरू ने जो वचन कहा था सो अक्षरशः सत्य हुआ । सारा नगर आकर चरणों पर झुका । भोजन, रुपये, वस्त्र बहुत-कुछ आया । लोगों ने बहुत आदर किया और सेवा की । मरदाना अपनी सेवा-पूजा देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, फूला न

---

१. लगता है कि यह बस्ती हड़प्पा थी। जहाँ पर नगर से कोई एक कोस बाहर गुरू नानक देव जी का गुरुद्वारा अब तक है । यह नगर बहुत पुराना है । कई हजार वर्ष पुराने खण्डहर यहाँ से निकले हैं ।

समाया, पर बीच-बीच में जब कोई ऐसा आदमी आता तो मरदाना की ओर देखता तक नहीं, तो उसका मन कुछ उदास-सा हो जाता । इस प्रकार जब सूर्यास्त हुआ, तब मरदाना रुपये, कपड़े बाँधकर बाबा जी के पास ले आया । मरदाना के चेहरे का प्रसन्नता, मन का उल्लास तथा प्रसन्नता बाबा जी ने देखी, फिर रेशमी रथा सूती वस्त्र देखे, फिर रुपये और मुहरें देखीं । गुरू जी देखते और देख-देखकर मुस्कराते और हँसते । गुरू जी हँसते और हँस-हँसकर लोट-पोट होते जाते, कहते—मरदाना ! क्या लाए हो ?

मरदाना— सच्चे पातशाह ! यह अनेक वचनों का प्रताप है, आपके 'नाम' के ही कारण है । सारा नगर मेरी सेवा के लिए आ गया । मैंने तृप्त होकर पदार्थ खाए । ये रुपये वस्त्र आपके लिए ले आया हूँ ।

गुरू जी (प्रसन्न होकर)—मरदाना, अच्छा किया जो ले आया । तेरा भाव सुन्दर है, पर तो हमारे किसी काम के नहीं ।

मरदाना—फिर पातशाह ! इनका क्या करूँ ?

गुरू जी—फेंक दे ।

मरदाना ने एक बार सतगुरू के खिले हुए माथे की ओर देखा, दूसरी बार अपने अन्दर झाँका; फिर नूरी मस्तक देखा, जिससे 'प्रकाश' छिटक रहा था । तब मरदाना ने गठरी उठाई और दूर जाकर फेंक दी । फिर पास आया, बैठा और पूछने लगा—आप सदा निर्लिप्त रहते हैं, किसी वस्तु को छूते तक नहीं । लोग प्रसन्नता के साथ दें तो वह भी फेंक देते हैं । यह क्या बात हैं !

गुरू जी—मरदाना ! यही माया तो छोड़कर घर से बेघर होकर चले हैं, फिर इसी से लिप्त हो जाना—क्या बात हुई ?

मरदाना—फिर घर-बार छोड़े हुए साधु-संन्यासी भी आपको अच्छे नहीं लगते ।

गुरू जी—मुझे 'अच्छा न लगने वाला' कोई भी नहीं । पर घर, पुत्र, पत्नी, माता, पिता का त्याग करके निखट्टू होकर अपना बोझ दूसरों पर डालकर चल पड़ना बुरी बात है । निरे त्याग से कुछ काम नहीं बनता ।

मरदाना—आप क्यों कुछ स्वीकार नहीं करते ?

गुरू जी—मरदाना ! हम निरंकार की आज्ञा से चल पड़े हैं, हमारे लिए घर और वन एक समान है, ग्रहण और त्याग बराबर है, जहाँ पर रखे उसकी रज़ा में राज़ी हैं । अब उसकी आज्ञा है जलते हुए जगत में शीतलता फैलाने की, स्थान-स्थान पर अधिकारियों की साधनाओं को जाकर सफल बनाने की, दुखियों, सन्तप्तों श्रमिकों का उद्धार करने की । जिस प्रकार जगत का कल्याण करने के लिए पवन चलती है । उसी प्रकार इस ईश्वरीय आज्ञा के आगे सिर झुकाकर हम चले हैं, हम माया स्वीकार करने के लिए घर से नहीं चले थे ।

मरदाना—पर जी ! यह शरीर पाँच तत्वों का है, अन्न के बिना कैसे खड़ा हो सकता है ? मंज़िले-सफ़र और फिर फाका करके !

गुरू जी—शरीर अन्न से जीता है, अन्न छोड़ना पाखण्ड करना है। पर मरदाना ! मनुष्य केवल उस अन्न से ही नहीं जीता तो वह खाता है। पर प्रेमियों की ओर से प्यार के साथ खिलाने का भी आधार होता है। यदि कोई प्रेमी अपने मन के प्यार में दूरी से ही भोजन कराता है उसका भी आधार रहता है। फिर मरदाना ! मनुष्य केवल अन्न से ही जीवित नहीं रहता, जीवन नाम के आसरे भी है। अन्न के आधार से नाम जपा जाता है पर शरीर को नाम का भी कोई आधार है। यह बात कभी तुम्हें भी घटकर दिखाई देगी।

"नानक, भगता भुख सालाहणु सचु नामु आधारु ।।"

[आसा दी वार महला १]

मरदाना—बलिहारी आपकी कृपा को, दाता जी ! पर धन से निर्वाह तो होता है, आप इसे इस तरह उठा-उठाकर फेंकते हैं, जिस प्रकार मरे हुए साँप को फेंका जाता है।

गुरू जी—धन निर्वाह के लिए है, यह सत्य है। इसका त्याग हो ही नहीं सकता। पेट भरने योग्य अन्न खाना भी माया है, यह जीना ही माया है। हाँ, पर उपवास रखने से माया का त्याग भी नहीं होता। इस प्रकार के त्याग के जितने भी यत्न है, व्यर्थ हैं। हाँ, मन में से लोभ का त्याग माया का त्याग है।

मरदाना—आपने ठीक कहा है, फिर यह वस्त्र, रुपये क्यों फेंक दिए हैं ?

गुरू जी—यदि अन्दर लोभ नहीं, तो उसका बाहर कोई व्यवहार भी होता है न। हमें वस्त्रों तथा रुपयों की आवश्यकता नहीं है, इसलिए फेंक दिए हैं। जब आवश्यकता नहीं तो इनको साथ बाँधकर ले चलना लोभ है। तेरे अन्दर धन का प्यार है; देख फेंक देने पर भी फिर-फिर याद आ रहा है ! मरदाना ! कह, सत करतार !

मरदाना—सत कतार !

गुरू जी—देख मरदाना ! तुझे शब्द की सेवा प्रदान की है। शब्द का आधार पहचान। जीवन शब्द के आधार पर है।

मरदाना—पातशाह ! आपके सुन्दर मुख के शब्द हुआ कि जा बस्ती में। सारा नगर चरणों पर आ झुकेगा। आपके इस शब्द के कारण सब आकर चरणों पर झुके। मैंने नहीं पहचाना कि भोजन, वस्त्र, चाँदी, सोना आपके उच्चारण किये हुए शब्द से हुआ है। यदि मैं शब्द को पहचानूँ, शब्द से प्यार करूँ; हाँ, आपके उच्चारे हुए शब्द की आवश्यकता आ पड़े तो चोट भी सहन करूँ। मैं मूर्ख और जाति का नीच हूँ, आपकी अनुकम्पा असीम है और वर्षा की भाँति अपने-आप बरसती है।

गुरू जी-मरदाना ! रबाब बजा ! छेड़ आसा का स्वर।

कोइ भीखकु भीखिया खाइ ।
कोई राजा रहिआ समाइ ।।
किसही मानु किसै अपमानु ।
ढाहि उसारे धरे धिआनु ।

तुझ ते बड़ा नाही कोइ ।
किसु वेखाली चंगा होइ ।।१।।
मैं तां नामु तेरा आधारु ।
तूँ दाता करणहारु करतारु ।।१।। रहाऊ ।।
वाट न पावउ वीगा जाउ ।
दरगह बैसण नाही थाउ ।।
मन का अँधुला माइआ का बंधु ।
खीन खराबु होवै नित कंधु ।।
खाण जीवण की बहुती आस ।
लेखै तेरै सास गिरास ।।२।।
अहिनिसि अँधुले दीपकु देइ ।
भऊजल डूबत चित करेइ ।।
कहहि सुणहि जो मानहि नाउ ।
हउ बलिहारै ताकै जाउ ।।
नानकु एकु कहै अरदासि ।
जीउ पिंडु सभु तेरै पासि ।।३।।
जा तू देहि जपी तेरा नाउ ।
दरगह बैसण होवै थाउ ।
जा तुधु, भावै ता दुरमति जाइ ।
गिआन रतनु मनि वसै आइ ।।
नदरि करे ता सतिगुरु मिलै ।
प्रणवति नानकु भवजलु तरै ।।६।।१८।।

[आसा महला १ तितुका]

ईश्वरीय नाद, दैवी स्वर और ऊँचे भाव-प्रभाव डाल गए । मरदाना का मन उच्च स्थान पर पहुँच गया । उसने माथ टेका । मरदाना के मन में विचार आया कि एक साईं का प्यार सत्य है । प्यार साईं की याद है और याद शब्द है, चाहे अन्दर रस रूप है, चाहे नाम का रूप है, चाहे कीर्तन का रूप है, चाहे इस सच्चे पातशाह का वचन रूप है ।

गुरू जी–जो शब्द का सेवक होगा, जो नाम जपेगा, जो औरों को नाम जपाएगा, वह लोभ में नहीं पड़ेगा । जो लोभ में व्यवहार करता दीखे, वह साईं का सेवक नहीं है । नाम के प्यारे लोभी नहीं होते, धर्म में व्यवहार करते हैं । धन को हाथ-पाँवों का मैल समझते हैं । लोभी का भरोसा नहीं करना चाहिए कि यह साईं का भेजा हुआ है अथवा साईं का मनुष्य है । लोभ पाप करवाता है, झूठ के साथ, छल के साथ, कम तोलकर, घूस लेकर, झूठी साक्षी देकर, दूसरे को बुरा करके, स्वामी के

साथ कपट करके अनेकों पापों द्वारा लोभ धन इकट्ठा करवाता है। जहाँ पर लोभ है वहीं पर पाप आकर छलता है।

२. सज्जन का घर

मरदाना—पातशाह ! अब कोई बस्ती समीप आएगी क्या ?

गुरू जी—मरदाना ! देख ईश्वर के रंग।

मरदाना—पातशाह ! कहीं पर ठहरें, दो-चार दिन तो समय पर अन्न-जल मिले।

गुरू जी—देख करतार के रंग, ठिकाना भी देगा, अन्न भी देगा, पर अत्यन्त मँहगा। दुःख भी आयेगा, पर कल्याण होगा। हत्या का नाश होगा।

मरदाना— जैसी आपकी आज्ञा; मुझे अपनी आज्ञा के तार का स्वर बना लो जिससे मैं अलग टीं-टीं न किया करूँ।

गुरू जी—मरदाना ! तुझे शब्द की सेवा मिली है, जो तुम चाहते हो, वही हो जाएगा।

जब आगे चले तो एक बस्ती दिखाई दी। इससे थोड़ा इधर बाहर की ओर एक ठिकाना आया, जिसके चारों ओर दीवार थी। एक तरफ बीच में दरवाजा और आगे ड्योढ़ी थी। दोनों नुक्कड़ों पर धर्म-स्थान थे। एक ओर ठाकुरद्वारा था और दूसरी ओर मस्जिद थी। ड्योढ़ी को पार करके आगे खुला स्थान और बड़ी भारी हवेली थी। इसके अन्दर कोठरियाँ और तहखाने थे। किसी गुप्त स्थान पर कुएँ जैसा स्थान भी था, जिसका मार्ग गुप्त था। उसका निर्माण धरती के अन्दर नीचे किया गया था। मकान में कई कमरे थे। इस हवेली का एक स्वामी था और उसके दास-सेवक थे।

जब वे इस द्वार पर जा खड़े हुए तब आगे दो सेवक करबद्ध आ खड़े हुए—"आओ महाराज ! आपके मुख पर नूर है, ईश्वर तथा धन की कृपा की झलक है। आप भाग्यशील हो। आओ, स्वागतम्, आपका अपना घर है, यात्रा के कारण थके हुए लगते हो। माथे पर धूल लग रही है। आओ, अन्दर आ जाओ। यह अतिथियों का आश्रम है, थकान दूर करो। थकान दूर कराना हमारी सेवा है। आपका आना सौभाग्य की बात है। आपकी कृपा कि आप हमारे यहाँ आए। आप अच्छे आये हैं, अपने आये हैं। आओ, अन्दर आ जाओ।"

गुरू नानक के वैराग्य पुन्ज कदम, बस्तियों तथा घरों से दूर-दूर चलने वाले कदम, आज शीघ्रता से आगे बढ़े। आगे बढ़-बढ़कर बस्तियों की ओर रुख करने वाला मरदाना आज ठहरता, चौंकता, सहमता, झिझकता, पीछे-पीछे चलता तो गया, पर जो कदम आगे बढ़ाता, वे पीछे पड़ते। कहने लगा—'बलिहारी आपके कौतुक, देखूँ········।'

गुरू जी—सुन्दर ! देख करतार के रंग। सुन्दर, स्वच्छ मन वाले चलता आ ! तेरी झिझक सच्ची है। पर झिझक मत, आ जा। ये कह जो हैं कि तुम्हारा अपना ही घर है। सभी घर अपने हा हैं। जो नहीं होते वे हो जाते हैं। हे ईश्वर के अपने आ जा।

आगे जाकर वे एक सुन्दर सजे हुए कमरे में जा बैठे। पहुँचाने वाले दास चले गए तो एक सुन्दर दाढ़ी वाले, चिकनी-चुपड़ी सूरत वाले, मीन सदृश नयनों वाले, तरबतर, गिन-गिनकर कदम

धरने वाली मन्द गति वाले, सीधी सीढ़ीनुमा पाग वाले, हाथ में माला लिए, गले में कुरता पहिने, कमर में अँबुए रंग की धोति पहिने आये । आकर नमस्कार करके बैठ गए–"आओ जी, स्वागतम् । यह घर अतिथियों का है । आपका अपना है । इस दास को सेवा के लिए ईश्वर ने घर का नौकर नियुक्त किया है । लोभ, मोह का बध किया है । फकीरों, सन्तों, ईश्वर वालों का टहलुआ है, इसका मोह दूर किया है । दाईं ओर पूजा होती है ओर बाईं ओर नमाज़ । दोनों ईश्वर के घर हैं ।

इतने में दो दास गर्म जल तथा साफ़ा लेकर आ गए; बोले–महाराज ! यात्रा के कारण थके हुए आपके चरण धो दें ।

गुरू जी एक अचल, गम्भीर आवाज़ में बोले—वाह वाह·······भाई लोगो ! पाँव धुलवाने की हमारी इच्छा नहीं, मन वैसे ही सुखी है । (स्वामी की ओर) भैया ! आपका नाम?

स्वामी–वैर से खाली नाम है जी ।

गुरू जी–हैं ! निर्वैर नाम तो ईश्वर का है ।

स्वामी–जी ! मैं तो स्वामी के कूकरों का कूकर हूँ । वैसे, मेरा नाम सज्जन है । सब का सज्जन, किसी को न दुखाने वाला ।

गुरू जी–सज्जन ? साथ क्या : दास, राम, लाल ?

स्वामी–जी नाम तो मिट्टी की पठरी का मिट्टी ही चाहिये, पर सेवक होने के नाते मुसलमान शेख सज्जन कहते हैं, हिन्दू सज्जन राम कहते हैं और यह तो दोनों का सामान है ।

मरदाना यह वाक्य सुन कर चौंका और घूरकर देखने लगा । उसके नयन शीघ्रता से पीछे मुड़े; मन ने कहा–यहाँ पर तो सहम ही सहम है, घर में, दर में, चाकर में, ठाकुर में टहल में, बात बात में । इस मेरे मौजी स्वामी के कौतुक का पता नहीं कि किस तरह के हैं ।

जो दास पानी लेकर आए थे, चले गए । स्वामी भी चले गये । जब थोड़ी देर के पश्चात् गुरू जी मस्जिद की ओर गए तो सज्जन नमाज़ पढ़ रहे थे । वहाँ से निवृत होकर आरती के समय ठाकुर के आगे दीपक फिराने के लिए जा पहुँचे, फिर आये तो गुरू जी के लिए भोजन का थाल स्वयं लेकर आये ।

गुरू जी बोले–भाई ! भोजन मत लाओ, एक रात काटनी है, तुम भोजन करो और सो जाओ ।

सज्जन–घर पर अतिथि आएँ और भूखे रहें, यह पाप मैं कैसे कर सकूँगा ?

गरू जी–तुम्हें यह पाप नहीं लगेगा । यदि भोजन खिलाओगे तो तुम्हारा भला नहीं होगा ।

सज्जन–(घबड़ाकर)–हे भाग्यशील ! अन्न पानी का क्या है, कोई दूसरा घर है, विचार मत करो, खाओ घर आपका है, यह दास आपका है । भ्रम न करो, मेरा जन्म हिन्दू का है, रहन सहन भी हिन्दू है, मुसलमानी सामान तो राज्य के कारण है, तथा राजा, तथा प्रजा ।

गुरू जी–फकीरों की प्रसन्नता लेनी चाहिए । (मरदाना की ओर देखकर) क्यों भूख है ?

मरदाना–साईं जी ! आज तो जन्मों के भूखे कलेजे पर भी कोई पर्दा आ गया है, चिड़िया जितनी भी भूख नहीं ।

सज्जन–भला जी, मुझे तो प्रसन्नता लेनी है । (दासों को) ले जाओ भाई अन्न। (गुरूजी की ओर) दूध तो पीऐंगे न आप ?

गुरू जी–सज्जन ! हमारी रुचि नहीं, आराम करो । देखो ! जाल डालने वाले के जाल, उसका निर्वाह मछलियाँ पकड़ने तथा बेचने पर ही होता है, पर कभी जाल में मगरमच्छ भी फँस जाता है ।

सज्जन (चौंककर)–यह क्या कहा आपने ? क्या मुझ पर कोई नाराज़गी है ?

गुरू जी–नाराज़गी फकीरों की बुरे के साथ नहीं बुराई के साथ होती है । तुमने हमें आदर दिया है, ठिकाना दिया है, हम तुम्हारे कल्याण की चिन्ता में बैठे हैं । अब जाओ, भोजन करो ।

पहर रात व्यतीत होने पर सज्जन फिर आया, "महाराज ! बिछावन तैयार है, चलो चलकर आराम करो, सोवो !"

गुरू जी–सज्जन ! तुम उस नींद में सोवो जो शरीर के लिए सुख का ठिकाना बनी है, जो अपनी गोद में प्रत्येक व्यक्ति को लोरी देती है, जो जीते जी, ग़रीब, अमीर, पापी, पुण्यात्मा को एक-सा कर देती है, हम यहाँ पर ही बैठेंगे, अभी हमारे सोने की इच्छा नहीं ।

सज्जन–सोये बिना शरीर कैसे रह सकता है ? उदास न होवो दाता जी ! यह आपका अपना ही घर है ।

गुरू जी–(मुस्कराकर)–फिर फिर हमारा मत कहो, कहीं हमारा ही न हो जाए । सुख से रहो, हमें रात भर ठहराकर सवेरे विदा करो । हमारे पीछे मत पड़ो, फकीरों को रात के जागरण का आनन्द लेने दो ।

सज्जन (बड़ी त्रमता दिखाकर)–जैसी आज्ञा, मुझे तो अपासी आज्ञा माननी है ।

गुरू जी–जाओ फिर जाकर सो जाओ । सज्जन सिर झुका कर चला गया ।

थोड़े समय के पश्चात् एक शाहज़ादे के से वेष वाला धनवान सा व्यक्ति आकर बैठ गया और वन्दना करके बोला–हें सुन्दर ! मैं भी मुसाफिर हूँ, कल से यहाँ पर ठहरा हुआ हूँ । यह बड़ा सज्जन पुरुष है, सब की सेवा करता है । युवावस्था में धन कमाया है अब पुण्यार्थ में लगाता है । आप बहुत धनवान और भाग्यशाली लगते हैं, क्यों ? ठीक है न जी ? धन कमाकर आए हैं, हीरे पन्ने पास हैं । छिपकर घर पहुँच जाओ इसीलिए फकीरी धारण की है । हमने ताड़ लिया है, पर जानते हो क्यों ? अपने धन को बढ़ाने के लिए । मैं नवाब ईसाखान खरल का छोटा पुत्र हूँ । मुझे पासा लगाने का शौक है, दो चार दिन कोई अवसर नहीं बना था खेलने खिलाने का । आओ थोड़ा आमोद प्रमोद कर लें । नक्की पूर खेलें। कमा लो, इससे धन कुछ और बढ़ जाएगा । मुझे तो खेलने का चसका है, सदा हारता ही हूँ, पर स्वभाव नहीं हटता । साईं ने बहुत दिया है, हार गया तो हार गया । परवाह नहीं की जाती, मन इसमें प्रसन्न रहता है ।

मरदाना–(घूरकर) हमारे पास धन नहीं है ।

शाहजादा–है तो सही, पर न सही, पाँच सौ मेरे से ही ले लो और आओ खेलें । मन का बहलाव है और क्या । सर्दी की लम्बी रात व्यतीत ही नहीं होती, आसानी से व्यतीत हो जाएगी ।

गुरू जी–हमें कोई पता नहीं, हमें कोई शौक नहीं, धन से हाथ धोकर चले हैं ।

शाहज़ादा–श्रीमान् ! हमें चराते हो । माथा दमकता है करोड़पतियों की भाँति, आँग चमकती है लखपतियों की भाँति । हम संकेत पहचानते हैं । आओ, शर्त यह रही कि यदि तुम जीत जाओ तो लो, यदि हार जाओ तो मुझे कुछ नहीं लेना ।

गुरू जी–सदा हारने वाले, दूसरों को जिताने वाले, शोक ! काश तुम्हें हार जीत देखने का पता होता ।······जाओ सोवो········, फकीरों के पीछे मत पड़ो ।

शाहजादा–चलो फकीर ही सही, दाँव पर धन नहीं लगाते तो वैसे ही चौसर खेलो, शतरंज तो अकल बढ़ाने वाला खेल है, मोहरें लाऊँ क्या ? इसमें तो हार से कुछ व्यय नहीं होता ।

गुरू जी–हीरा रूपी जन्म की हार की जिनको सूझ नहीं उनको हार के द्वारा होने वाली हानि का क्या पता ?

शाहज़ादा–हीरा जन्म क्या होता है ? धन, माल, हँसी, खेल और प्रसन्नता, यही न ?

गुरू जी–हीरा जन्म मनुष्य देह है, और बिगड़ता इस प्रकार है–

खसमु विसारि कीए रस भोग । ता तनि उठि खलोए रोग ।।

[मलार महला १]

शाहज़ादा–आप तो साधुओं की भाँति बोलते हैं·······चलो मन ! सोएँ, किस लिए बेकार सिर रगड़ते हो, एक तो धन देते हो दूसरे, उदासियों के कटाक्ष सुनते हो । इस प्रकार का व्यंग करके यह भी विदा हुआ ।

फिर एक पचास वर्ष की ढली आयु वाली स्त्री, बड़ी आयु की माँ की भाँति दर्द व प्यार भरी आवाज़ में थाल आगे रखकर कहने लगी, "मैं बलिहारी लालजी ! न अन्न, न जल, न दूध, कितने कठिन व्रत धारण किए हैं । वाह ईश्वर के लाल ! तप हो तो ऐसा, बन्दगी हो तो ऐसी (सीस झुकाकर) आप पूर्ण पुरुष दिखाई दिए हैं । हाँ ! मैं बलिहारी, सारी रात जागना है, कुछ तो इस शरीर को आधार दीजिए, यह फूस का छप्पर, बिना सहारे के कैसे टिकेगा । इस लोटे में है देवताओं का अमृत, 'सुरापान' जिसका एक घूँट पीकर सिद्ध, नाथ, गोरख सारी रात लौ में जुड़कर बैठते हैं । इस दूसरे लोटे में सोमरस है, जो देवता तथा ऋषि पीकर ईश्वर के गीत गाते हैं । यही सोम रस है, हिमालय के शिखरों से लेकर दक्षिण की घाटियों और रेगिस्तानों तक यही एक बूटी मिलती है जो सारी थकानों तथा दु:खों को 'भंग' करती है अब भी साधु लोग घूँट पीकर सारी रात समाधि लगाते हैं और इस तीसरे में है 'दिल का दोस्त' मला हुआ और छाना हुआ मीठा-मीठा[1], मलंग, बेपरवाह जिसे अच्छे-अच्छे फ़कीर पीकर मन के तार को ईश्वर के साथ बाँधते हैं। यह पोस्त की डिबिया, बिटिया चीनी बेगम की, जो पीते नहीं वह आधी रत्ती इसी की जिह्वा की नोक से लगाकर दशम द्वार का उछाल खाकर टिक जाते हैं सारी रात भजन के स्वर में । कोई वस्तु तनिक-सी ले लो, जिससे शरीर को आधार मिल जाए, सारी रात सुख में व्यतीत हो जाएगी ।

गुरू जी–हे जगतमाता की मूर्ति ! विश्राम कर । नशे की आवश्यकता नहीं, ओछे लोग ओछा नशा करते हैं । जा सो जा, जो बिना पीए ही मस्त हों वे क्यों पीएँ ?

---

१. पोस्त ।

माता—वाह वाह ! स्वामी बोले ! मैंने तो सहानुभूति की थी, तुम सहानुभूति से भी ऊँचे हो, युग-युग जीयो ।

गुरू जी—यदि तूने सहानुभूति की थी तो ईश्वर भी तेरे प्रति सहानुभूति करेगा । यदि असहानुभूति की थी तो भी ईश्वर तेरे प्रति सहानुभूति करेगा ।

यह सुनकर माता भी सिर झुकाकर चली गई ।

३. सज्जन के घरों में निमन्त्रण

सज्जन के घर में इधर उसकी और उसके कर्मचारियों की मण्डली जमा थी और सज्जन उनकी राय पूछ रहा था—

सज्जन—बताइए, यह फकीर है, या धनी है या कि कोई गुप्तचर है ?

१. मेरे विचार में तो कोई साधारण साधु है । नया बेरागी है -- तप-जप करने वाला, इसके पास-पल्ले कुछ है नहीं । इसके पीछे पड़ने से कोई लाभ नहीं, इसे सवेरे विदाकर देना चाहिये ।

२. नही, धनवान है, माथे पर धन की रेखा चमकती है, और साथ ही रूप की रेखा भी चमकती है । धन पास हुए बिना क्या कभी कपोल चमके है और माथे दमके हैं ? कहीं से कमाकर माल लाया है । इसके पास मोती तथा हीरे हैं । रत्नों का कोई एक डिब्बा है बस !

३. नहीं यह बात जो उसने कही है कि मछलियाँ जाल में और कभी मगरमछ जाल में, क्यों कहीं है न ? यही पक्की निशानी गुप्तचर होने की है । यदि एक-दो दिन रह कर हमारा रहस्य ले गया तो हमारी कुशलता नहीं । अब इसकी यही पर ही समाधि लगी रहे तो ठीक है । यह अवश्य ही किसी का गुप्तचर है ।

माता—तुम सब चतुर हो और धद्यपि पुरुष कहते हैं कि स्त्री की अक्ल कभी दूरी तक नहीं जाती, तथापि मेरी बात सुन लो । मालिक सहित सभी के अनुमान ग़लत हैं, यह गुप्तचर नहीं है ।

सज्जन—(बात काटकर) फिर मगरमच्छ क्यों कहा है ?

माता—मैं बताती हूँ, सुनो । मुझ मुर्ख की बात भी आप सारे चतुर पुरुष तनिक सुन लें । यहाँ पर कई धनवान, निर्धन, चतुर, साधु फकीर हर प्रकार के लोग आये हैं और तुमने-हमने उन्हें पराजित होते देखा है । पर इसके रंग-ढंग भिन्न हैं, पैसे वाली चमक इसके माथे पर नहीं, नयन रसीले हैं, पर देखें तो शीतलता देते हैं । भीतर से बाहर कहीं खोए-खोए-से लगते हैं, पास जायें तो और प्रकार का स्वाद आता है । इस प्रकार का प्रभाव कभी किसी के आने पर नहीं पड़ा । फिर जो बात करता है उसमें कुछ और होता है । विचार करने पर कहीं कुछ जाकर समझ में आता है । गुप्तचर नहीं है, यदि होता तो मगरमच्छ की बात कभी न करता । इस प्रकार की कच्ची बात करके हमें संशय में न डालता कि हम उसको मगरमच्छ जानकर चौंक जाते, और चौकन्ने हो जाते जिस प्रकार कि तुम सब हो रहे हो । गुप्तचर अपने-आपको प्रकट नहीं किया करते । गुप्तचर तो विश्वास बढ़ाकर, भरोसा जमाकर वार करते हैं ।

सज्जन—फिर मगरमच्छ वाली बात का क्या अर्थ है ?

माता–इसका मुझे पता नहीं, पर कोई फ़कीरी रहस्य है, जिसको हम पापी और माया में अँधे लोग नहीं समझ सके । मेरे साथ भी रहस्य-भरी बात की है, मैंने कहा– मैंने तुम्हारे साथ सहानुभूति की है । कहने लगे यदि तुमने सहानुभूति की है तो ईश्वर तुम्हारे साथ सहानुभूति करेगा । यदि असहानुभूति की है तो भी ईश्वर तुम्हारे साथ सहानुभूति करेगा । अब विचार कर लो, यह तो कोई अच्छा ऊँचा, सचमुच ईश्वर वाला फ़कीर ही कह सकता है । न धनवान, न निर्धन, और न बनाबटी फकीर यह बात मुँह से निकाल सकता है । फिर जिस समय यह कहा था उस समय उनके स्वर में सहानुभूति की झनझनाहट थी ।

सज्जन–मर जा बुद्धिमती, तेरे बाल तो धूप में ही सफेद हुए हैं संसार में क्या सचमुच कोई ईश्वर वाला है ? सब पाखंड के भक्त हैं । (सिर फेरकर) वास्तव में कोई नेकी वाला है भी ? कोई नहीं, सारे स्वार्थी हैं । यदि कोई व्यक्ति ईश्वर वाला या सचमुच नेकी करने वाला होता तो सज्जन भी उनमें एक होता, तुम सब बालक होते । मैं तो खूब परख-निरख करके, सज्जनता कर-करके, चोटें खा-खा करके, दुःख सहन कर-करके, अपनी की हुई भलाईयों के मुँह छल के साथ तुड़वा-तुड़वा करके इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि जगत पाप, छल, झूठ, बनावट, स्वार्थ का इन्द्रजाल है । इसमें जो बड़ा इन्द्रजाल बिछाने वाला है वही अधिक सुखी है । चेहरे देखो साधारण पाग देखो, मन्दिरों को जाते देखो, कथा सुनते, गाते, परोपकार करते देखो, तो निहार हो जाओ । जब इनसे वास्ता पड़े तो सबके-सब बिल्लियों की तरह चूहों की दुर्गन्ध के पीछे बेबस होकर पड़ने वाले द्रोही । व्यापारी देखो, काम करने वाले देखो, ठेकेदार देखो, सब छल के ठेकेदार हैं । सो मैंने कहा अरे सज्जन, तू ठगों का सरदार और छलियों का महाराज बन ।...... दुहाई है । मैं नहीं मानता कि कोई साधु है, कोई शुद्ध है । हाय...... । आज चिन्ता से मेरा कलेजा हिल गया है कि यह मुझसे भी बड़ा कोई किस प्रकार है जो जल में मगरमच्छ बनता है ।

माता–जो आप कहते हैं ठीक ही होगा, पर आज स्त्री की बुद्धि जिसे पुरुष एड़ो में बताते हैं ठीक निकलेगी । जो चाहो कर लो, पर मैं रोकूँगी, अवश्य रोकूँगी ।...... मुझे यह केवल तपस्वी ही नहीं लगता; यह कुछ बलवान, ऊपर से डुबकी मारने वाला सत्यवादी दीखता है । हो सकता है मगरमच्छ वाली बात तुम्हें मार्ग पर चलाने के लिये कही हो । जिससे तुम्हें चिन्ता हो और पापों में पत्थर हुई तुम्हारी बुद्धि का आवरण हटे और सद्विचार अपना काम करने लगें और फिर वह कोई मर्म-स्थान खोज कर किसी ज्ञान की चोट मारे ।

सज्जन–तू आज ब्रह्मज्ञानिन तथा फकीरी की पहचान रखने वाली कहाँ से बन गई ? कहीं उस गुप्तचर ने कुछ दे-दिलाकर हमारे विरुद्ध अपने साथ तो नहीं मिला लिया तुम्हें ?

माता–(हँसकर) आप स्याने हैं । विनाशकाल के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है और सुधार की चोट लगते समय बुद्धि आपे का हठ त्याग बैठती है ।...... याद है न ! मुझे किस छल के साथ पकड़कर लाए थे और बन्दीगृह में डालकर इन बुरे कामों में लगाया है मैं साधु की पत्नी थी । मेरे घर में प्रतिदिन साईं वाले, चाहे बातों के ज्ञानी, चाहे तपों के अभिमानी, चाहे अच्छे आते थे, मैं उनकी सेवा करती थी, देखती थी सुनती थी । मेरे भाग्य फिर गए, यहाँ आ फँसी । खुशी के साथ

तो नहीं फँसी थी, जगत को काला देखकर तो नहीं फँसी थी; मैं तो बाँध कर मारी गई।..... मैंने तो यह देखा है कि जब मन काला होता है तब जगत में पाप-ही-पाप दिखाई देता है। जब मन साफ़ होता हे तब पुण्य भी दिखाई देने लगते हैं। लोग बुरे हैं, ठग हैं, धोखेबाज हैं तो क्या हमको कैसा बनना है या हमको नेक रहना है ? पर अपने बस में क्या है, कर्मों की रेखा, कर्म फिर गए, मैं साधु की स्त्री ठगों की कान काटने वाली बन रही हूँ। भाग्य ! (कहकर रो पड़ी)

सज्जन—भाई मित्रो ! दोनों की चिन्ता करो आज, एक उनकी और एक इस घर के शत्रु की। इस आँचल में छिपे हुए साँप की जो आज अपनी जाति-बिरादरी वालों को घर आया देखकर, या घूस लेकर, हमें ही फुँकार मारने लगी है। इसके बहुत दाँत तोड़े हैं पर फिर निकल आते हैं।

माता—मेरे तो दाँत भी तोड़ो और सिर भी फोड़ डालो, न रहे बाँस और न बजे बाँसुरी। इतनी सेवा करने पर भी मुझ पर अभी विश्वास नहीं हुआ। कृतघ्नों के पास कभी भी विश्वास नहीं बनता चाहे कितना टूट-टूटकर मरें। उठो तो पहले मेरा ही सिर फोड़ डालो, कुछ समय तक दुम मार-मार कर यह दो मुँह वाली सर्पिणी अपने-आप शान्त हो जाएगी।

सज्जन—अब दिमाग मत चाट, ज्ञान मत घोट, आज समय आया है कष्ट का, अकल खर्च करने का, घर आए हुए को पहचानने का, यह ले चली है अपने राग।

पहला ठग—जाने दो जी, क्यों सब-के-सब घबरा गए हैं ? जाओ सोवो, मेरे ऊपर छोड़ दो, मैं जगूँगा, मैं तड़के भेज दूँगा, यों ही रस्सी को नाग समझकर शोर कर रहे हो।

दूसरा—सारे जाओ तो, मैं जागता हूँ। मैंने रात की रत्नों वाली डिबिया न छीन ली तो मुझे कहना।

तीसरा—बताओ तो हमारा हर्ज ही क्या है। मिलकर उसके शरीर को बाँध लें और गुप्तवास में ले चलें और वहाँ पर सदा के लिए समाधि लगवा दें। यदि धनवान है तो धन निकल आयेगा, यदि वैसे ही है तो जहाँ सौ मारे वहाँ एक सौ एक सही। यदि गुप्तचर है तो भी झगड़ा समाप्त होगा। न बाहर जाए, न दांत खुलें, न कोई हमें खतरा हो।

माता—ठीक है, धन भी न मिले और वैसे बेकार मार दें, और यदि गुप्तचर है तो मारने से बात समाप्त हुई, जिसका गुप्तचर है, वह भला कोई पीछे है ? वह तो दल लेकर आ पड़ेगा, तुम्हें बाँधकर पत्ता-पत्ता खोज लेगा। आज बच्चों की-सी बातें क्यों करते हो ?

सज्जन सोच में पड़ गया। घोर पापी विचारों के कुएँ में उतरा। कुछ समय सोच में पड़ा रहा, अन्त में यही निश्चय हुआ कि सवा-पहर रात रहते समय पाँच-सात व्यक्ति मुँह और शरीर को बाँध लें और गुप्तवास में ले जाकर उनकी सेवा कर दी जाए।

४. कृपा। पहला धर्मसंस्थान

हा, हा ! पापों में इस प्रकार में प्रवृत्ति जिस प्रकार व्यापारी की व्यापार में और काम करने वाले की काम होती है। वह पापी धर आदेशों के स्वामी की जान का गाहक बन कर अपनी कुटिल तैयारियों में लग गया। सज्जन अपनी कोठरी में चारपाई पर जाकर लेट गया। नयन मूँदता है, पर नींद नहीं आती। मन को स्थिर करता है, पर स्थिर नहीं होता। पापियों के मनसूबे, पापियों

के प्रबन्ध बड़े पक्के और बुद्धि के सूक्ष्म जाल बिछाने वाले होते हैं, वे बड़े-बड़े घोर काम कर बैठते हैं, पाप करते-करते उनका हृदय पत्थर हो जाता है, पर आपे का भय उनके अन्तस् को भी हिला देता और घबरा देता है । सज्जन को यह संशय कि कहीं गुप्तचर न हो, सारी अकल तथा निठुरता के होते हुए भी घबड़ा-धबड़ा देता है । यदि गुप्तचर है तो मार देने पर भी कल्याण होगा कि नहीं ? यह दूसरा संशय उसके मन को खाता है । फिर मन की कठोरता और पाप में प्रवृत्त मज़बूती बेपर्वाह करके नयन मुँदवा देती है । सज्जन इसी दशा में था कि एक साज़ के छिड़ने की आवाज़ आई । मीठा-मीठा स्वर, जो सरोद से भी अधिक प्यारा था, छिड़ पड़ा । आधी घड़ी तक अलापना होता रहा, पहले विहाग का, फिर सोहनी (राग का नाम) और फिर जोग का । सज्जन उठकर बैठ गया । जबरदस्ती मन सुनने में लग गया । अब एक अत्यन्त मीठे कण्ठ से स्वर निकला, सुरीले, साज़ के स्वर के साथ इस प्रकार लिपटी हुई कि मानो दोनों एक रूप हैं । आह ! पत्थर कलेजा भी खींचा गया । अब जो कुछ गाया जा रहा था उसकी समझ में भी आने लगा । परमेश्वर के प्रेम के यश गाये जा रहे थे । सज्जन अपनी कोठरी से बाहर आया झरोखों में से देखा कि दास तो गा रहा है और 'आप जी' नयन मूँदे बैठे हैं, चेहरे पर आश्चर्यजनक आभा छा रही है । धीरे से सज्जन अन्दर चला आया, कुछ दिखावे के लिए जो उसका स्वभाव था और कुछ बेबस हो सिर झुकाकर एक कोने में बैठ गया । शब्द होता रहा, वह सुनता रहा । कोठरी में समाधिस्त होने का प्रभाव सा छा रहा था । उसके नयन भी बन्द होने लगे, फिर समाधिस्थ हो गए, अन्तस् भी कुछ समाधिस्थ हुआ, नींद में एक हिलोर आई । क्या देखता है कि सारी की हुई हत्याएँ पृथ्वी में से उठ खड़ी हुई हैं । वे सारे लोग जिनकी हत्याएँ की गई थीं कतार बाँधकर खड़े हैं । सभी पुकार रहे हैं--'मारो मारो जाने न पाए, बदला, बदला, हत्यारा है, पापी है, ठग है, मारो, मारो, मारो ।'

इनके पाँवों में क्या देखता है, विधवा, अनाथ बच्चे, बृद्ध माता-पिता क्रन्दन कर रहे हैं ।

सज्जन ! देख भाई, ये तेरे लगाए हुए पौधों का बाग है, तेरी की हुई तबाही का खेत है और तेरे ही मारे हुए पुरुषों की फसल पैदा हुई खड़ी है ।

इतने सारे पीड़ित सज्जन पर टूट पड़े । कोई पीटता है, कोई दाँत से काटता है, कोई दबाता है, कोई मरोड़ता है, कोई कोड़े मारता है, कोई गला घोंटता है ।

सज्जन ! यह तेरी करनी है, लोगों को दिये गए कष्ट हैं—तुझ पर कैसे आ पड़े हैं ? कर बुरा होगा बुरा । हैं सज्जन ! तूने तो कभी यह नहीं समझा था ?

तड़पकर सज्जन की आँख खुल गई, दिया दीवट पर टिमटिमा रहा है, साज़ छिड़ रहा है, अलाप हो रहा है, पर कण्ठ बन्द है । शुक्र है कि यह स्वप्न था, शुक्र है यह सत्य नहीं था, शुक्र है यह शीघ्रता से समाप्त हो गया, नींद खुल गई ।

हाँ ! अब सज्जन सोचता है—न जाने यह कोई व्यक्ति हो जो सचमुच अच्छा तथा सज्जन हो ? नहीं; पर जगत में अच्छा नहीं । खैर ! पर स्वप्न क्या था, मेरे मारे हुए लोग मरे नहीं ? अभी जीते हैं ? बदला-बदला कहकर चीखते हैं ? वे कितने हैं ? मैं अकेला । वाह रे जीव ! था तो स्वप्न, पर नौकर-चाकर, ठगी के हिस्सेदार, कोई भी कष्ट के समय सहाई नहीं हुआ, मैंने अकेले ही मार

खाई। पुत्र, पुत्री पत्नी-परिवार किसी ने भी सहायता नहीं की ? हे मन, तूने अकेले ही ने हाँ, अकेले ही ने मार खाई। कोई किसी का नहीं सुखों के सारे यार हैं। खाते समय सारे मित्र, लेखे के समय, भरने के समय ! सज्जन तू अकेला था । पर यह तो स्वप्न था। वाह रे कायर मूर्ख ! बस स्वप्न से ही घबरा गया, अब स्वप्न का पीछा छोड़ दे स्वस्थ हो। यदि रोटी का एक ग्रास अधिक खा लिया जाएं तो बुरे स्वप्न आ ही जाते हैं, छोड़ ! ठीक स्वप्न था सुसरे ! छोड़ो परे जाने दे। पर क्यों बारंबार आँखों के आगे आता है ? था तो स्वप्न, जब जागृति में क्यों प्रत्यक्ष हो-होकर दीखता है ? लोग कहते है ? 'जागृत स्वप्न है इसको स्वप्न समझ कर झूठ समझो और तेरी मति मारी गई है सज्जन ! तू स्वप्न को जागृत में प्रत्यक्ष देखता है। सुसरे ! छोड़े परे, स्वप्न को स्वपन होने दे। हे मन ! यह वेदान्ती किस प्रकार जाग्रत को स्वप्न को स्वप्न कर देते हैं, तुझ से स्वप्न भी स्वप्न नहीं हो सकता। जा स्वप्न अपने देश को जा, नींद की गोदी में सोना, तेरा जागृत के देश में क्या काम है ? हट, आँखों के सामने से, दूर हो।

फिर नेत्र खोलकर देखा कि मीठा-मीठा साज़ बज रहा है, अलाप हो रहा है सूही तोग का है, सूही का कौन-सा समय ?

वाह रे ठग ? तू भी सूही पहचानता है ?

देखता है अचल समाधि लगी हुई है, चेहरे पर सौन्दर्य बरस रहा है। रोंगटे खड़े हो गए और भय-सा लगा, सहमा, नयन मुँद गए फ़िर स्वप्न आँखों के आगे आ गया। नयन खोलता है तो दर्शन करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं और वह काँप जाता है। नयन मूँदता है तो स्वप्न प्रत्यक्ष दीखता है।

अब लगी हुई समाधि में से गुरू नानक के सुन्दर कण्ड का नाद उठा, अलाप के साथ गायन छिड़ा, छिड़ पड़ा एक शब्द। सज्जन के लिए एक बोल छिड़ा, सज्जन सुनने लगा। जबरदस्ती ध्यान शब्द की ओर जाता है और मन स्वाद रस तथा सार रस पीता है—

उजलु कैहा चिलकणा घोटिम कालड़ी मसु।
धोतिआ जूठि न उतरै जे सउ धोवा तिसु ।।१।।
सजण सेई नालि मै चलदिया नालि चलनि।
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंनि ।।१।। रहाऊ ।।
कोठे मंडप माड़ीआ पासहु चितवीआहा।
ढठीआ कंमि न आवनी विचहु सखणीआहा ।।२।।
बगा बगे कपड़े तीरथ मंझि वसंनि।
घुटि घुटि जीआ खावणे बगे ना कहीअनि ।।३।।
सिंमल रुखु सरीरु मै मैजन देखि भुलंनि।
से फल कंमि न आवनी ते गुण मै तनि हंनि ।।४।।
अंधुलै भार उठाइआ डूगर वाट बहुतु।

अखी लोड़ी ना लहा हउ चड़ि लंघा कितु ।।५।।
चाकरीआ चंगिआईआ अवर सिआणप कितु ।।
नानक नामु समालि तूं बधा छुटहि जितु ।।६।। ।।३।।

[सूही महला १ घर ६]

जैसे-जैसे इस शब्द की एक-एक तुक गाई जाती है, सज्जन के मन पर प्रभाव डालती है। गायक भी, बीच-बीच में अपने नयन कटोरे खेलते हैं और झलकती दृष्टि से सज्जन की ओर देखते हैं, फिर नयन मूँद लेते हैं । कभी सज्जन की आँखों के सामने स्वप्न फिरता है, कभी बन्द नयनों में गायक जी के दर्शन होते हैं । कभी अन्य खुलने पर प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं । ''घुटि घुटि जीआ खावणे'' सुनते ही सज्जन के मन में छुरी चल गई कि यह तो मेरा चित्र, मेरे कर्मों का चित्र मेरे हृदय-रूपी नेत्रों के आगे रखा जा रहा है । पहले स्वप्न में मेरी करनी से उत्पन्न काँटेदार बन तथा विषाक्त उत्पन्न दिखाई दिए । अभी स्वप्न से मुक्त नहीं हो पाया था कि प्रत्यक्ष में मेरे कर्म व पत्री मेरे आगे रखी जा रही है । यह, हो-न-हो तो कोई गुप्तचर नहीं, कंगाल नहीं, धनी नहीं, नहीं यह कहीं वह तो नहीं जिसका मैंने निर्णय किया था कि जगत में कोई नहीं ? कहा जाता है कि हुमा[१] तथा उनका[१] है, पर किसी ने देखे नहीं हैं । जो नहीं हैं, वे ये तो नहीं ? कहीं कोई उसी जैसा तो नहीं आ गया जो कभी किसी ने नहीं देखा पुण्यों से, नेकियों से नहीं दीखा और मेरे पापों का दण्ड देने के लिए आया तब मुझे दीख पड़ा ? फिर हिरण्यकश्यप, रावण, कंस आदि राक्षसों के सुने हुए नाम सज्जन को याद आये और उसे वह स्वयं उन जैसा बुरा तथा मलिन दिखाई देने लगा ।

सो ज्यों-ज्यों अगली तुकें गाई गईं, सज्जन को अपने कर्मों के फल भुगतने का चित्र दिखाई देने लगा और अपने जीवन को व्यर्थ खोले का पश्चाताप होने लगा । ज़ोर भी लगाता कि पाप का पर्दा जो फट रहा है, फिर जुड़ जाय और ये भयानक दृश्य दूर हों, पर फटे हुए पर्दों में से अपने कर्मो के फलों पर पड़ने वाला प्रकाश दूर नहीं हुआ । अन्त में मन विह्ल हो गया, विह्ल होकर बेबस हो गया, अभी अन्तिम पंक्ति का चरण उलट-फेर ले लेकर कण्ठ से गाया जा रहा था जो उठकर चरणों पर आ झुका, पाँव चूमे और रोकर चिल्लाया, 'मेरे ऊपर कृपा करो, मेरे किये हुए पापों पर कृपा करो' । फिर कहा, 'कृपा करो कृपा करो' और चरणों के साथ लिपटता गया और फिर कहता गया 'कृपा करो' । ज्यों-ज्यों चरणों को चूमता था बुद्धि स्वच्छ होती जाती थी, मन निर्मल होता जाता था और कोमल हो-होकर कहता था, 'मेरे ऊपर कृपा करा' ! सतगुरू जी ने सिर पर हाथ रखकर उठाकर बैठाया, सज्जन उठ बैठा और फिर सुन्दर नेत्रों को देखकर कहने लगा 'कृपा करो ।'

सतगुरू जी–सज्जन ! कृपा तब होती है, जब दो बातें करो–एक सत्य में आ जाओ । तुमने जो हत्यायें की हैं, छीना-झपटी की है, छल किये हैं उनको सच-सच कह दो । दूसरे, कृपा होती है अधर्म की कमाई के साथ मोह तोड़ने से जो कुछ पापों द्वारा इकट्ठा किया है उसको खाना और व्यवहार करना विष समझो । पापों की कमाई कृपा के मार्ग की बाधक हैं ।

---

१. पक्षियों के नाम ।

सज्जन—हे आज ही दिखाई देने वाले दाता जी ! मैं अपराधी हूँ, हत्याएँ की है छीना-झपटी की हैं, ठगा है, विश्वासघात किये है, ऐसी कोई बुरी बात बाकी नहीं रही जो नहीं की हो, आपके द्वार पर सब बताता हूँ, चलो आँखों से चलकर दिखाता हूँ, पर हे कृपालु ! आप कृपा करो ! कह दो क्षमा कर दिया । पाप की कमाई अपने हाथों से लुटा दो । पर हाय ! मेरी पाप द्वारा इकट्ठी की हुई को आपके पवित्र हाथ लुटाने के लिए भी न छुएँ । उसको--रक्त-भरी को यह इकट्ठा करने वाले पापी हाथ ही लुटाएँगे । जिन-जिन का पता याद है उनके घर किसी-न-किसी ढंग से उनसे छीना हुआ माल पहुँचा दूँगा । दाता ! आप किसी तरह कह दीजिए, 'क्षमा किया ।'

तब गुरू बाबा कृपालु हुए, दयालु हुए, कहने लगे, सज्जन ! तेरे पाप क्षमा किये, पर तू अब नाम जप, नाम जप, इस घर को गिराकर दूर कर, धर्म स्थान बना, उसमें बैठ, नाम जप और दूसरों को जपा, आए जीवों की सेवा कर, अन्न की, वस्त्र की । नाम की कमाई कर ।

सज्जन—कृपा; कृपा जो आप कहेंगे, वही होगा ।

यह कहता हुआ वह चरणों में लिपट गया ।

अब सज्जन के दूतों का गुरू बाबा को बाँधकर ले चलने का समय आ गया था । वे सब आ गए, और क्या देखते हैं कि सज्जन तो चरणों से लिपटा पड़ा है । वे हतप्रभ होकर दीवारों के साथ लगकर खड़े हो गए । गुरू बाबाजी ने कृपा की दृष्टि से देखा—

ईश्वर से भूले हुए ! यह रास्ते जो तुम दूसरों के लिए बना रहे हो, जान लो कि तुमने अपने लिए बनाए हैं । यह छुरे जो तुमने लोगों के लिए तेज़ किए हैं, जान लो कि अपने गले के लिए उनको सान पर चढ़ाया है । विष के प्याले जो औरों के लिऐ भेजे हैं, जानो कि तुम्हें आप ही पीने हैं । डरो कि इनके द्वारा तुम्हारा आपा अन्दर-ही-अन्दर बुरा होता जाता है, तुम्हारा आपा बुरा बनता जाता है । हाँ, अपने ही किये हुए कर्म अपने पर ही घटित होते हैं । डरो उस ईश्वर से जो अपने कर्मों को अवश्य ही लौटाकर देता है ।

सज्जन ने शीघ्रता से फिर सिर उठाया कि कहीं मेरे दूत कुछ कर न बैठें । उनकी ओर देखकर बोला—आओ चरण पकड़ो, मुझे तो पता चल गया है कि यह वह है जो इस धरती पर मुझे मिला नहीं था, जल्दी से इनकी शरण में पड़ जाओ ।

यह सुनकर झिझकते, पर आँखें झपकाते वे सब आगे बढ़े और चरणों में झुक गए । जो-जो चरणों को छूता उसके पापों की मैल तथा पर्दे हट जाते और उसे ज्ञान हो जाता कि 'मैंने बुरे काम किए हैं और अब किस प्रकार कृपा हो' ।

जब सारे सीस झुका चुके तब सज्जन ने नयन भरकर कहा, खेमी नहीं आई ?

दास--पता नहीं वह कहाँ पर है ।

सज्जन ने कहा—जाओ, जाकर ले आओ ।

जब दास गए तो वह अपनी कोठरी में अपने दुपट्टों की रस्सी बनाकर छत से बाँधकर फाँसी की भाँति बना चुकी थी और आत्महत्या की तैयारी कर रही थी । चौंककर दास ने कहा, माता ! यह क्या ?

खेमी–निराशा की सीमा पापियों को इसी स्थान पर ले जाया करती है, जा मुझे इस पापी शरीर का अन्त करने दे ।

दास–क्यों ?

खेमी–(क्रोध) क्यों किस बात की? आयु व्यर्थ नष्ट की, पाप कमाए, पापियों के साथ मिलकर सारे पापों में भाग लिया, अन्त में पापियों में मिलने का यह परिणाम निकला कि मैं 'विश्वासघातिन' हूँ । हाय मेरी किसी करनी ने मेरे लिए विश्वास पैदा ने किया । विश्वासघातकों में विश्वास कभी उत्पन्न नहीं होता । मैं अब किसके लिए जीवित रहूँ ? घर से गई, घाट से गयी, धर्म ईमान से गई, न यह लोक रहा न परलोक । पापियों में भी रहने योग्य न रही, विश्वासघाती भी मुझे विश्वासघातिन कहते हैं । दुष्टों में भी मेरा स्थान नहीं, पापी भी मुझे पापी समझते हैं । मेरे लिए अब तक मौत ही की गोद में स्थान है । जा दूर हो मुझे मेरी माता की गोदी में जाने दे (ऊपर देखकर) हाँ, मेरी माँ, मौत तू ही है, आ, और मुझे उठा ले अपनी गोद में ।

दास ने भागकर खेमी को पकड़ लिया और खींचकर बाहर ले आया और चिल्लाती हुई को घसीटकर सच्चे दरबार में ले गया और उसकी व्यथा बतलाई ।

सतगुरू जी–अप खेमी ! यदि तेने सहानुभूति की तो ईश्वर तेरे प्रति सहानुभूति करेगा यदि नहीं की तो भी वह सहानुभूतियों का स्वामी तेरे प्रति सहानुभूति करता है, आ सहानुभूति वाली ! आ सहानुभूति वाले स्वामी के द्वार के तुझे कृपा लेकर दें ।

खेमी–(सुबकी भरकर) सहानुभूतियों वाले ! नयनों वाले ! कर्मों वाले ! कृपा कर (सिसकी भरकर) इस अभागिनी के कर्मों को नष्ट होने दे मैं जीवन से निराश हूँ ।

गुरू जी–(सिर पर हाथ रखकर) सावधान हो, ईश्वर के द्वार पर अपने पापों को मान, क्षमा माँग, तेरे पर भी क्षमा हो जाए ।

खेमी–(अति निराश आँखों से आशा के साथ देखकर)–हे नेत्रों वाले ! आपने किस अपराधिनी के सिर पर हाथ रखा है, हाथ परे हटाओ, कहीं इस जलते हुए सिर के छूने से आपके कोमल हाथों में छाले न पड़ जाएँ । आपके नर्म-नर्म कोमल हाथों को ।

गुरू जी–तेरे इस स्पर्श से तेरा निराशा के कारण जल उठा सिर शान्त हो जाएगा । जागा, तेरे पाप क्षमा किए, तेरे कर्म जला दिए तेरे किये हुओं को अनकिया हुआ कर दिया । कृपा ।

कृपा, कृपा, सुनती-सुनती, खेमी के शरीर में कड़क की-सी आवाज़ हुई, मूर्छित होकर गिर पड़ी, आँखों की तारी लग गई और लम्बे-लम्बे श्वास लेकर तड़पने लगी ।

नयनों वाले के नयन टकटकी लगाकर खेमी की ओर देखते रहे । तड़पन हट गई अचल हो गई, नयन मुँद गए श्वास ठीक चलने लगा । मन्द-मन्द हो गया ।

दाता ने कुछ समय के पश्चात् फिर सिर पर हाथ फेरा और कहा, उठ, उठी शान्त शीतल पर दुर्बल, सुखी पर निर्बल ।

गुरू जी–क्षमा हो गई तुझ पर, सज्जन पर, तेरे सारे घर पर ।

माता—(नयन उठाकर चारों ओर देखकर) सारे क्षमा किये गए ? तुम कौन हो ? फकीर ? नहीं, नहीं तुम कोई "आप" हो, तुम "आप" हो । नरकों की चलती हुई अग्नि की लपटों को कौन शान्त कर सकता है ? (सिर फेर-फेरकर) हम क्षमा किये गए । सच ? (लम्बा श्वास लेकर और सज्जन की ओर देखकर) क्यों रे सज्जन !

सज्जन मुस्कराया, फिर गुरू बाबा को साथ लेकर सज्जन आगे-आगे चल पड़ा । पीछे-पीछे गुरू जी, उनके पीछे मरदाना आश्चर्य चकित होता, उसके पीछे ठग के सारे मित्र ।

सज्जन ने अपने गुप्त कमरे, विष देने के ढंग, ठगने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली जड़ी-बूटियाँ, मारने के ढंग जुआ आदि खेल, सभी शैतान मनाखे बताए । अन्त में, तहखाने में ले गया जहाँ पर कुए की भाँति एक गड्ढा था, यहाँ पर हड्डियों के ढेर पड़े हुए लोग जिनका अभी तक चिन्ह नहीं मिटा था, मारने के सामान दिखाए ।[1] यहाँ पर यह जीवों के घात होने का भयंकर चित्र देखकर मरदाना के नैन बन्द हो एक और एक चीख निकली पर वह चीख कर रही थी : "धन्य तू, धन्य तू" "धन्य तू नानक" धन्य तू गुरू नानक" । हे सृष्टि के उद्धार कर्ता ! हे दुखियों दर्दी । हे त्राणकर्ता ! मैं तुम्हारे साथ मित्रों की भाँति समानता कर लेता हूँ दाता ! तुम कौन हो, कौन हो ? जो मनुष्य की पीड़ा को समझते हो । किस प्रकार अपनी जान को कष्ट में डालकर मौत की कन्दराओं में निःशंक आ जाते हो ? किस प्रकार कष्टों को दूर करते हो, जगत् के दुःखों को दूर करते हो । मैं समझता हूँ कि तुम भूल करने लगे हो, तुम न जाने कौन-सी अन्यन्त कृपा करने लगते हो । हाय राजा इस हत्यास्थान को नहीं खोज सका, प्रजा इसका अन्त नहीं कर सकी, तुमने किस प्रकार घर बैठे इसको देख दिया, किस प्रकार सीधे ठिकाने पर आ पहुँचे । किस प्रकार इस घोर पापियों को, जो तुम्हारी हत्या का मनाखा बाँध रहे थे, आकर जगाया है ? किस प्रकार इनको फाँसी पर लटकाया, पर इनकी आत्माओं को साईं की ओर मोड़ा है, तुम कौन हो ? दाता ! तुम कौन हो ? मैं नहीं पहचान पाता, नहीं पहचानता, जहाँ पर इनको क्षमा किया है; मुझ, दास को भी बखश दो, कह दो अनुकम्पा ।'

सतगुरू के अपने नयन मरदाना के इस प्यार के पिघलने को देखकर भर आये, भरकर छलके और फिर सिर छाती से लगा लिया और बोले : "ईश्वर की कृपा" ।

५. भाई सज्जन

दिन निकल आया, सज्जन सारा धन बाँट रहा है । याद कर-करके दूर-दूर लोगों के घरों में माल-सामान भेज रहा है । एक ओर घर गिर रहा है, दूसरी ओर माल बाँटा जा रहा है, आप तथा सारे साथी । धन्य 'करतार' का उच्चारण कर रहे हैं ।

नगर में धाक पड़ गई कि सज्जन ठग सीधा होकर साधू हो गया है, सरकारी कर्मचारी कोतवाल तथा और उच्चाधिकारी निराश हो रहे हैं । यह सब सज्जन के मित्र थे । इनको सरकारी वेतन से

---

१. रियासत जैपुर के अजायबघर में ठगों के सभी कारनामे मिट्टी के खिलौने बनाकर काँच की अलमारियों में रखे हुए हैं ।

अधिक धन सज्जन के घर से पहुँचता था । वे सज्जन के कुकर्मों को जानते थे, पर सज्जन की खोटी कमाई के साझी थे, इसलिए पकड़ते नहीं थे । वाड़ खेतों को खाती थी । पहरेदार बटमारों तथा ठगों के मित्र थे । कोतवाल और सिपाही चोर से वेतन पाने वाले थे ।[1]

गुरू बाबा एक ठिकाने पर जाकर बैठ गए, जनता दर्शनों के लिए उमड़ती चली आ रही है । मरदाना कीर्तन कर रहा है, आप सौंदर्य के सिंहासन पर बैठकर अनुकम्पा दानकर रहे हैं ।

सज्जन ने घर मन्दिर बनवाया हाफ़ज़ाबाद वाली जन्म साखी में लिखा है कि सज्जन गुरू-गुरू जपने लगा और नाम धारण करके सिक्ख बना । पहला धर्म स्थान वहाँ पर बनाया गया ।[2]

हाँ जी सज्जन धर्मस्थान का प्रब्रंधक बना । किये हुए पापों के कारण बन चुकी 'उपाधि' नाम के साथ दूर न हुई । सभी 'भाई' जानते हैं पर बेख्याल सब के मुँह से निकलता है 'सज्जग ठग' लगे हुए घाव ठीक हो जाते हैं, पर उन घावों के कारण बने निशान घावों के ठीक होने पर भी रह जाते हैं ।

बताओ किसके हैं ये नैन

कमलों की जब आँख खुली तब नज़र पड़े ये नैन
नयन देखकर रीझ गये वे झुक-झुक पड़ते ऐन
कमलों को जब देखा सहसा नयनों ने मन नैन
"चरणों साथ लगालो" कमलों ने बोले ये बैन
नरगिस कहता मस्त हुआ मैं देख मस्त ये नैन
मद की बूँदें टपका भरते नयन कटोरे नैन
पुष्प कली यों चिटख बोलती है मधुरे से बैन
हमको कौन खिलाता उसके दर्शन प्यासे नैन
कुल्ला फूटा शाख-शाख में लखे न को ये नैन
दर्शन की लालसा निकल आई है झाँकी लैन
अग्नि कह रही मैंने विरले सारे जग के नैन
में भी लखकर झुक-झुक जाती ये नूरानी नैन

सूरज और चन्द को प्रातःकाल में पूर्व की ओर अधखुले नेत्रों से देखा वे बेचैन होकर चढ़ने और डूबने से सके खड़े हैं, राय ये नैन खुले देखकर बिजली चमकी यह कहकर कि कहीं ये नेत्र मुझको न मोह लें तड़पकर छिप गई ।

---

१. 'राजे पाप कमांवदे उलटी वाड़ खेत कउ खाई' ।

२. देखो पुरातन जन्म साखी मुद्रित (१६३१ ई:) का पृष्ठ २८ । पिछली साखियों आदि में यह साखी अन्तिम उदासी में दी है, साथ कहीं पर मरदाना और कहीं पर मरदाना का पुत्र शाहजादा बताया है । धर्मशाला भाई जोध के ब्योरा तथा प्रसंग के लिए देखो इसी कथा के पहले वाली सूचना ।

हे सखी, अर्ध रात्रि में तारों ने ये नैन देखे, हमारे से भी अधिक सुन्दर ये नैन किसने बनाये हैं, हे सखी अदेश के गगन में काले नेत्र देखने के लिए झुक गया और जैसे ही नेत्र फेरे वह नीला पड़ कर रह गया।

लाखों आँखें बनकर ओस बिछी पड़ी है और ये बचन कह रही है ये नेत्र प्रतिबिम्बत होकर मेरी आँखों में चमक रहे हैं, हिरणों को झुण्ड तक देखकर बेचैन हो रहा है कि ये हमारे नेत्र वहाँ कहाँ चले गए हैं।

सबने अपने-अपने नेत्रों को सही-सलामत देखकर चिल्लाकर कहा कि हमें इनसे नेत्र मिले हैं।

काले नेत्रों वाली कुररी तड़पकर कहने लगी—हाय ! मैंने ये श्याम-सलोने नेत्र पहले क्यों नहीं देखे।

ममोले इन नेत्रों को देखकर यह कहते हुए हतप्रभ होकर रह गये कि हम अपने नेत्र आपकी भेंट करते हैं।

मछलियाँ इन नेत्रों को देखकर लज्जित होती हैं और इनके सामने ठहर नहीं सकतीं।

इसलिए पानी का पर्दा गलकर छिप-छिपकर ये नेत्र देखती हैं।

खुमरे ठुमक-ठुमककर चलते हैं, गुरू गुरू करते हैं, मटक-मटककर मटकते हैं और कहते हैं कि हमने आज ये नेत्र देख लिए हैं।

चकवा चकवी से कहता है कि हमेशा के लिए रात चली गई। क्योंकि कभी न डूबने वाला नयन-रूपी सूर्य उग आया है।

मछली बगुले से कहती है कि मेरे नेत्र मत देख, इन सुन्दर हंस-नयनों को देख ! प्रभात बेला में बुलबुल कहती है कि मैंने आज रात देखा है कि फूल मस्ती में आकर और अधिक ऊँचे नेत्रों को देख रहा है।

अमृत वेला में है मेरी बहन पपीहा बोली, मैंने इसका भेद अब पाया है कि ये नैन अमृत हैं।

आकाश को उड़ता जाता चातक बादलों को देखकर बोला, इन नयनों से सुहावनी स्वाँति बूँद बरस रही है।

नयनों की चमक देखकर चकोर नाचते, कुहकते और कहते हैं ये नयन चन्द्रमा से भी अधिक विमल और आश्चर्यजनक हैं।

कबुतर बिल्ली से कहता है कि एक टक मेरी ओर जो ये नैन लगा रही है वे नैन यदि इन नयनों की तरफ लगा दे तो ले बहिन, तू योगी हो जाय। हे गिद्ध, तेरे पाप अर्जित करने वाले दूर द्रष्टा नयन यदि इन नयनों को देखें तो उपकारी बन जायँ।

जैसे-जैसे तू बड़ा होता गया है वैसे-ही-वैसे तेरे नयन छोटे पड़ते गये हैं। हे अहंकारी हाथी। इन नयनों को देख जो गर्व चूर करने वाले हैं।

फणिधर नयनों में विष चढ़ाने के लिए डसने को गया, जब उसने आँख उठाकर देखा तो फन नीचा करके शिव-शिव उच्चारण करने लगा।

मोर-पंखों पर जो आँखे बनी हुई हैं और सबके चेहरों पर जो आँखें है वे सब मरी हुई आँखें हैं जीवित आँखे तो केवल ये ही हैं।

जादूगर ने नयन देखकर नयनों में नयन जमाये, पर अपने नेत्र लेकर ही रह गया क्योंकि नयन मूर्छित थे ।

युवतियों का झुण्ड नयनों में नयन डालने आया । इन नयनों की दमक देखकर प्रार्थना में झुक पड़ीं ।

रति कहती है कि मैंने अपने अग्नि-समान नेत्रों के कामदेव को लुभाया था, पर इन तेजस्वी नेत्रों को देखकर मेरे नयन भी ठगे गये ।

लैला, सस्सी, सोहनी और हीर नयनों से ठगी गई यदि वे इन नयनों को देख लेतीं तो उनके नयन दुख न देखते ।

सिकन्दर अमृत लेने के लिए समुद्र को गया था पर खाली औट आया और बोला कि ये नयन अमृत हैं ।

इन नयनों को देखकर नयन की आँख कटोरी झलक पड़ी और कहने लगी कि अपने चरणों । का श्रृन्गार कराने के लिए मुझे नौकर रख लो ।

कहते हैं कि डायन की नज़र कलेजा निकाल लेती है । यदि डायन की नज़र भी इन नयनों को देख ले तो अपने नेत्रों के अमृत डालने लगे ।

अगर नेत्रहीन व्यक्ति इन नयनों के सामने अपने खाली कोहरे कर ले तो उन नेत्रहीनों को भी नेत्र मिल जाय ।

मुर्ख अपनी आँखें निकालकर नयन देखना चाहता है । यदि इन नेत्रों को देख पावे तो, अपने नयन देख ले ।

नेत्ररूपी कुए उसे धन-दौलत से नहीं भर सके, पर इन नयनों के इशारे ने उन नयनों को भर दिया ।

नयन नयनों को मिलने के लिए गये और अपना दिल बेच आये । इनको जो नैन मिले वे नया-नया दिल लेते हैं ।

अभिमानी धनियों के द्वार पर बैठे कवियों के नयन इसलिए डोलते हैं कि उन्होंने ये नैन नहीं देखे ।

रूप के मारे नयन रूप को देख-देखकर तृप्त नहीं होते, यदि इन अरूपी नयनों को देख लें तो तृप्त हो जायँ ।

यदि दुनिया के नयन उन नयनों के चश्में से अमृत पी लें तो तोता-चश्मी न रहे ।

इन नयनों की सैन से मुर्ख भी विद्वान हो गये उन्होंने फिर एक इशारे से ही पण्डित नयनों को जीत लिया ।

दुनिया के सब नयन नींद के गुलाम हो रहे हैं । ये नेत्र सोते हुओं को जगाते हुए सदा जाग्रत रहते हैं ।

जो नयन इन सुन्दर नयनों को देखकर (भय से झुक गये) वे नयनदिव्य हो गये और दोनों ओर खुले गये ।

सारी दुनिया के नेत्र इन नयनों का दर्शन करने के लिए आये और इन नयनों को देखते ही समाधि में लीन होकर मग्न हो गये ।

यदि एक बार भी कोई इन सदा हँसते नयनों को देख ले तो फिर उसकी नज़र में और काई नयन नहीं चढ़ेगा ।

सन्त नयन-झरोखे बैठकर दुनिया का मुजरा लेते हैं, हे सखी ये शाह-नयन नयनों का मुजरा लेते हैं ।

रूप तथा सुन्दरता तभी सफल होती है जब चेहरे पर नैन होते हैं नयन तो बहुत हैं पर इन नयनों वाले नयन ही फल हैं । नयनों का यह धर्म है कि आकर्षित करें और आकर्षित हों । ये नयन आकर्षण का मूल हैं और जगत के नयनों को आकर्षित कर रहे हैं ।

नयनों को गूँगा कहा जाता है पर यह बात झूठी है । ये नयन काव्य और संगीत की जिह्वा से बोल रहे हैं । जगत् के जितने नयन हैं वे सभी खाली शीशे की तरह हैं, चमकने के लिए सब इन्हीं से ज्योति लेते हैं ।

जैसे हर आँख में नयनों की नयन पुतली है वैसे ही ये नयन सारे संसार की पुतली हैं ।

नयन भीतरी और बाहरी दोनों ही शीशे है । ये ईश्वरीय शीशा ईश्वर को देखने तथा दिखाने के लिए है ।

जिस प्रकार आत्मा का सरदार परमात्मा है उसी प्रकार नयनों का सरदार अपने इन नयनों को बनाया है ।

अदेश में रहने वाले नेत्र देश को देख गये और पंजाब को सुन्दरता प्रदान कर गये ।

ये नेत्र प्रेम-रूपी कटोरे हैं और प्रेम में ही भरे रहते हैं इनमें यदि और कुछ न पड़े तो तुष्ट रहते हैं । यदि तुम यह चाहते हो कि ये नयन तुम्हें अपनी नज़रों में समाविष्ट कर लें तो तुम सिर से पैर तक नयन ही बन जाओ ।

ये शाह-नयन लगन की दरगाह हैं और अनुकम्पा तथा मेहरबानी के समुद्र हैं ।

हे दिल, इन नयनों पर सुखने ही अपने नयन लगा दे ओर जगह लगलगकर ये नयन व्यर्थ ही जा रहे हैं ।

हे नयनों वाले साईं ! मैं आपके लिए पलकों की सेज बिछा रहा हूँ । यदि एक क्षण को भी आकर आप इस पर शयन कर जावें तो मैं धन्य हो जाऊँ ।

हे नयनों वाले सुन्दर ! नयनों में पधारो । तुम्हारे चरणों का स्पर्श प्राप्त करने के लिए मैंने अपनी नज़र का बिछौना बिछाया है । मेरे नयन वैरागी हो गये हैं और रो-रोकर अर्ज करते हैं कि बड़े और ऊँचे नैनों वाले एक दृष्टि मुझ पर डालें । मैं अपने नेत्र बेचने गई पर लोगों ने मुफ्त भी न लिए, पर हे सखी नयनों वाले ने लाखों में नयन ले लिये ।

हे सखी ! समझ में नहीं आता कि नज़रों वाले शाह की नज़रों में ये अमूल्य नैन क्यों भर गये हैं ।

प्रश्न : रात को काव्य-सौन्दर्य नयन-संगीत सुना गया और गूढ़ संकेत कर गया कि बताओ ये किसके नयन थे ?

उत्तर : हे सखी मैंने तेरा संकेत समझ लिया है । तूने जिन नयनों का गान किया है वे गुरू नानक के नयन हैं ।

□□

११ गुरू बाबा का टीला

सज्जन का उद्धार करके गुरू जी चलने के लिए तैयार हुए तो सज्जन ने विनती की--

पातशाह ! आप जा रहे हैं, में अभी पाप के गृह में जन्मा छोटा-सा शिशु हूँ, मेरे सिर पर आपके हाथ की आवश्यकता है बिछुड़कर कैसे जीऊँगा ?

गुरू जी–सज्जन ! तेरे सिर पर ईवर का हाथ होगा । तैंने घोर पाप किये हैं, तू छूने योग्य नहीं था, पर वे जो कुएँ में गिर पड़ें और निकल आएँ, सौभाग्यशाली हैं । पापों के अन्धकार में नयनहीन आसानी से चले जाते हैं, पर यदि अन्धे यह जान लें कि अन्धकार में आ पड़े हैं, और निकल आएँ, तो वह धन्य हैं ।[1] तुझ पर ईश्वर की कृपा हुई है जो तू अज्ञान के अन्ध ाकार में से न केवल निकल ही आया है, बल्कि नेत्रवान हो गया है । तुझे दीख पड़ा है कि पाप बुरा है, पाप पापी को प्यारा होता है,[2] पर तैंने अब उसे शत्रु समझकर अप्रिय किया है । अब तेरे अन्दर जो काम करने की शक्ति है, जो बुराई की ओर लगाई हुई थी उसे भलाई की ओर लगा दे । 'नाप जप' वाणी का भरोसा रख और धर्म-स्थान में बैठकर नेकी पर । नाम जपना और जपाना और आने वाले जीवों की सेवा करना, नंगों, भूखों, दुःखी और पीड़ित की सेवा करना; जिस प्रकार पहले घाव लगाता था अब मरहम लगाना, ईश्वर तेरा कल्याण करेगा ।

सज्जन–आपके आशीर्वाद से मेरा पालन-पोषण होगा, पर दाता । मैं दुर्बल हूँ, डरता हूँ कि फिर न फिसल पड़ूँ । कुररी के बच्चों की भाँति मुझे याद रखोगे, तो आप के बताए नव-जीवन में मेरा पालन हो सकेगा ।...... (नेत्र भरकर और करबद्ध होकर) जैसे आपकी आज्ञा, दाता ! पर हे दाता फिर कभी.... (अश्रु गिर पड़े)....फिर कभी दाता.....फिर कभी दर्शन.... !

गुरू जी–ईश्वर भला करेगा ।

धन्यवाद, धन्यवाद, धन्यवाद कहते-कहते सज्जन ने सीस झुकाया । उसके अश्रु दाताजी के चरणों पर गिर पड़े । हाँ जो मुसाफिरों, बेगानों, बे-वतनो, गरीबों, अमीरों को लूटता और विधवा तथा अनाथ बना-बनाकर अश्रुओं की नदी बहाया करता था, आज अपने पश्चातापपूर्ण अश्रु, प्यारपूर्ण अश्रु, वैरागयपूर्ण अश्रु, द्रवित हृदय के सुहावने अश्रु तारनहार के चरणों पर गिरा रहा है । हे नानक यही है वह उपहार, जो उधारे हुए जिज्ञासु, तुम्हें दे सकते हैं । तुम धन्य हो जो ज्ञान दे-देकर मृतकों को जीवित करते और जीवितों का प्रतिपालन करते हो ।

अब ठण्डी-ठण्डी वायु की भाँति नाम की सुगन्धि से भरे हुए गुरू बाबा जी चल पड़े । पीछे-पीछे चल पड़ा मरदाना संगीत के स्वर की भाँति थरर-थरर करता और साथ-साथ सज्जन तथा अन्य

---

१. 'कबीर जगु काजल की कोठरी अंध परे तिस माहि ।।
हउ बलिहारी तिन कउ पैसि जु नीक़सि जाहि ।।२६।।

२. पापु बुरा पापी कउ पिआरा ।।

लोगजो श्रद्धालु हुए थे, कोस-दो-कोस तक विदा करने के लिए आए । यहाँ से गुरू जी ने सबको बड़ी मुश्किल से विदा किया ।

मरदाना (अकेले चलते चलते)—ईश्वर को समझना कितना कठिन है, मैं तो हे गुरू नानक तुम्हें नहीं समझ सकता, जिसका मैं डोम हूँ और अंग-संग रहता हूँ । कितने लोग थे जिनको आप मार्ग पर चला सकते थे, इस ठग का क्यों उद्धार किया है, किस पापी पर तुष्ट हुए हो ? जिसको मार-मारकर भूसा बना देना चाहिए था उसको कैसे साधा है ? कितने बलवान हैं आप ? हैं जी ! किस पर बल लगाया है? ठग के ऊपर । क्यों ? तुम्हारी तुम ही जानो । न ईश्वर का कोई पता नहीं है और न तुम्हारा । बलिहारी तुम्हारी ।

गुरू जी—मरदाना ! एक गन्दे तालाब को निर्मल जल का स्रोत बना देना भला काम है, इसमें समझने की क्या आवश्यकता है पहले जगत इसके हाथों दुःखी था, अब सुखी होगा । इसके सुधार से हज़ारों के कष्ट दूर हो गए । आगे चलकर यह हज़ारों के कष्ट दूर करेगा । जगत का भला हुआ और सोचकर, यह जो मेरे कामों में बड़े वेग के साथ लोग लगते हैं, इनमें बदी तो नहीं है, पर बदी करने की जो शक्ति है वह बुरी वस्तु नहीं है । इनमें बहुत शक्ति होती है, यदि इस शक्ति को भलाई करने की अगुआई मिल जाए तो फिर यह उसी प्रकार भागकर शुभ कार्य करती है । निर्बल, आलसी और दरिद्री लोग । जो नेकी बदी कुछ नहीं करते, उनमें शक्ति नहीं होती । न जाने यदि दरिद्री भले पुरुष को शक्ति मिल जाए तो वह बुरा हो जाए । सो जहाँ पर शक्ति है चाहे किसी प्रकार की है वहाँ पर अगुआई की आवश्यकता है, प्रकाश देने की आवश्यकता है, जिससे वह शक्ति भले काम में लगे ।

मरदाना—ठीक है । इन चोरों, बटमारों, जुआरियों, अत्याचारियों में शक्ति तो बहुत होती है, मूर्ख वैसे ही बुराई की ओर जाते हैं । आप ने ठीक कहा है, यदि उनके नेत्र खुल जाएँ तो फिर सज्जनता की ओर वही शक्ति लगेगी, पर आप में दाता जी कितनी शक्ति है जो शक्तिशालियों को बुराई की ओर से हटाकर भलाई की आरे लगा देते हो । धन्य आप, धन्य आपका निरंकार ! भला

अ ब

किधर चले हैं ? मैंने समझा था मुलतान जाओगे, पर उस मार्ग को छेड़कर पूरब को चल पड़े हैं ।

गुरू जी—मरदाना ! नीली (इनके का नाम) की ओर चलना है । पर पीर, जो प्रजा को बहुत दुःखी कर रहा है, वह इधर है ।

मरदाना—पीर भी दुखी करते हैं ?

गुरू जी—पीर हो अथवा राजा, विद्या वाला हो अथवा धन वाला, ऋद्धियों सिद्धियों वाला हो कि तपस्वी, जिसके पास शक्ति है और ज्ञान नहीं, उससे बुरे काम हो ही जाते हैं, नेकी करना तो ज्ञान वाले का काम है,[1] जो चाहे गरीब है, चाहे अमीर, चाहे विद्वान चाहे नहीं ।

---

१. ब्रहम गिआनी कै होइ सु भला ।। [गऊड़ी सुखमनी]

मरदाना–पीर तो परिश्रम और साधना से बनते हैं, फिर बुराई में क्यों पड़ते हैं ?

गुरू जी–साधना और परिश्रम करने के लिए आँखों की आवश्यकता है । बिना आँखों के गड्ढे में गिर पड़ते हैं ।

मरदाना–उनके ज्ञान-नेत्र नहीं होते ?

श्री गुरू जी–मन है भखा, इसकी आवश्यकताएँ हैं और आवश्यकताओं से अधिक माँग, तृष्णा । सो साधना करते जब नेकनामी हो जाए या कोई ऋद्धि सिद्धि बन पड़ें तो मन उनमें ही फँस जाता है, मन है लौ लई की अतृप्त भूख वाला ।[1] यह है साधकों का गड्ढा ।

मरदाना–बचे किस तरह ? गिर पड़े तो निकले कैसे ?

गुरू जी–पहले से ही देखकर चले । निशाना बाँधे ईश्वर का वासनाओं को बस में करे, आपे कर विजय प्राप्त करे, फिर साधना करे, भरोसा धारण करे ईश्वर का, उसी के प्यार को सब कुछ समझे, जगत के पदार्थों तथा शक्तियों की ओर से वैराग धारण करे । फिर इस गड्ढे में नही फँसता ।

मरदाना–फिर अब जिस पीर की ओर चले हैं, वे सज्जन की भाँति हमारी जान का घातक ही होगा कि सुख रहेगा ?

गुरू जी–घबरा मत, ईश्वर भली करेगा ।

इस प्रकार बातें करते चलते गये । दो-तीन दिन और रातें मार्ग में विश्राम भी किया । फिर एक ग्राम से बाहर ऊँचा तथा स्वच्छ स्थान देखकर बैठ गये । यहाँ पर ही कीर्तन का रंग लग गया और यहाँ पर ही लोग आ गए । गाँव को लोग दर्शन करके निहाल हुए और घरों को चलने के लिए प्रार्थना करने लगे पर आप वहाँ पर ठहरे रहे । कुछ दिनों में संगत का आना-जाना हो गया तो पीर के कानों में आवाज़ पड़ी कि कोई फकीर आया है जो अपने मधुर वचनों से, चलती हुई नदियों को रोकता है । फिर सुना कि शक्ति वाला है । फिर किसी ने कहा कि निर्जन में डेरा बनाने लगा है और चौबारा भी बनायेगा । तब फकीर क्रोधित हो उठा और गुरू जी को नीचा दिखाने के लिए चल पड़ा और गुरू जी के पास आ गया । इसने तान्त्रिक आदि साधना और मानसिक बल के लिए चिल्ले काटे हुए थे, सो वह मन को बल देकर गुरू जी की सुरत पर दबाव डालने लगा, पर गुरू बाबा न तो भय की दशा में था और न तृष्णा की दशा में । न शत्रुता करनी जानता था न अन्धकार वाला मोह । सो चढ़े हुए सूर्य की भाँति प्रकाशमान चमकता रहा ।[2] कीर्तन होता रहा, पीर भी सुनता रहा । जब कीर्तन हो चुका तब पूछने लगा : 'दरवेश किधर से आये और किधर को जाना है ?'

गुरू जी–पवन एक ओर से आती है, एक ओर चली जाती है, वह चलती ही रहती है,

---

१. लउ लई तृिषना अतिपति

२. बलिओ चरागु अंधार महि सभ कल उधरी इक नाम धरम । [सवैये श्री सुख वाक्य महला ५]

पीर–सुना था यहाँ पर ठहरोगे। यदि ठहरो तो कोठा (कोठरी) बनवा दें, बैठकर तप करो।

गुरू जी–बैठे.....बैठे रहो, हमें अभी चलने की आज्ञा है।

पीर–(सुख का श्वास लेकर) हमने सुना था चौबारा बनाओगे।

गुरू जी–बनाएँगे अथवा गिराएँगे ? फकीर का घर साईं के चौबारे।

पीर–समझ में नहीं आया, एक तो गिराना दूसरा चौबारे में बसना।

गुरू जी–कहा जाता है मनुष्य मिट्टी से बना है, सो मिट्टी के साथ इसका प्यार है। एक मिट्टी का तो शरीर है, एक यह मिट्टी का मण्डप बनाकर उसमें घुसकर बैटता है। फिर बनता है कि मैं स्वामी हूँ, यह साईं का बुलावा आया नहीं कि मिट्टी की दोनों कोठरियों को त्याग करके चल दता है। मिट्टी में फँसकर बैठना मिट्टी जैसी बुद्धि का काम है। फकीर उज्जवल बुद्धि वाला होता है। वह मिट्टी के पृथक् होकर मिट्टी को देखता है कि यह मैं नहीं, मिट्टी के ऊपर साईं की ज्योति का चौबारा है। फकीर उसमें जाकर ठिकाना करता है। उठते, बैठते, चलते उनमना रहता है, फकीर इस चौबारे में खेलता है। मिट्टी का प्यार मिट्टी में ले जाता है। चौबारे उलटकर मढ़ी, गोरें कबरें बन जाते हैं।[१] मिट्टी का प्यार मिट्टी में रखेगा।

पीर सुनकर घबराया, सारी बातें यथार्थ थीं। उसको चौबारे के साथ प्रेम था, अपनी अकड़ के साथ प्यार था, इसलिए उसकी आज्ञा थी कि उसके गाँव के समीप कोई चौबारा न बनाए। यदि कोई बनवाता तो गिरवा देता। मुसलमान होने के नाते इसकी चलती थी, दूसरा करामाती होने का भय लोगों को खा रहा था। सारे लोग उसकी आज्ञा को मानते थे यह कोई नेकी का शिक्षक नहीं था, पर अपनी साधना के अहं में अपनी उच्चता मनाकर प्रसन्न होता था, इस प्रकार के कई उपद्रव भी हो जाते थे। आज गुरू बाबा के बचन सुनकर होश में आया। गुरू बाबा को प्रार्थना करके कुछ दिल वहाँ पर रखा और सतसंग करके जो बाधा थी निकल गई। करामात का चाव टूट गया, आज्ञा तथा नाम का रंग लग गया। वह प्रजा जो इस अहं के कारण कष्ट में थी, सुखी हो गई।[२]

□□

२. फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ उसारेदे भी गए। कुड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए ।।४६।।

[सलोक फरीद]

२. यह प्रसंग एक सन्त जी से मिला है जो बताते हैं कि यहीं पर पहले स्मृति स्तूप था, और संगत सतसंग लगाया करती थी। अब गुरुद्वारा बन गया है और प्रचार हो रहा है। यह प्रसंग एक किंवदन्ती के आधार हमारे पास पहुँची है।

१२ तारनहार जी की हरिद्वार की फेरी[1]

पीर को नाम के रंग में रंग कर कई स्थानों पर विश्राम करते हुए, जगत का उद्धार करते हुए, धीरे-धीरे चलकर पवन की भाँति गुरू बाबाजी हरिद्वार पहुँचे । आगे मेले की काफ़ी चहल-पहल थी । तारनहार जी ने जगत को अज्ञान के अन्धकार में देखा । शीतल नदी में स्नान कर रहे थे और देह को धो रहे थे और समझ रहे थे कि मन से पापों का मैल धो रहे हैं । निर्मल जल में डुबकिएँ लग रही थीं और मन दशों दिशाओं को भाग रहा था । पितरों को जल दे रहे थे, तर्पण कर रहे थे और गायत्री का पाठ कर रहे थे, पर घरों से भाई भाई के साथ, लड़कर आया था और वहाँ पर भी कई झगड़े और विरोध मनों में हो रहे थे । हाँ बुरे कर्म पीछा नही छोड़ रहे थे, पर स्नान पर जोर दिया जा रहा था । "मैं पहले, मैं पहले" का घमासान भी मच रहा था । पण्डे दान माँग रहे थे, यदि सीधी तरह नहीं मिलता तो वर और श्रापों का भय दिखाकर जबरदस्ती भी ले रहे थे और कह रहे थे -- दान । सायंकाल को नदी में दोनों में रखकर दिये बहाये जाते थे और आरती व मीठे घण्टों को झंकार होती थी । सवेरे फूल (मृतकों की हड्डियाँ) बहायी जाती थीं, स्नान होते थे और पितरों को जल दिया जाता था । यह अज्ञान, मानों का अन्धकार और मनों का पतन देखकर कौतुकी जी आप भी एक दिल जल में जा खड़े हुए । पूरब की ओर से सूर्योदय हुआ था उसकी ओर पीठ कर दी, मुँह पश्चिम की ओर कुछ उत्तर का रुख लेकर जल देने लगे । पश्चिम की ओर पानी देते देखकर लोग चकित होकर चारों ओर खड़े होने लगे । पहले तो लोग आपस में बातें करते थे, पर जब काफ़ी भीड़ जमा हो गई तब लोग आपसे ही घूर-घूर कर पूछने लगे, तू कौन है ? पश्चिम में पानी क्यों देता है ? पश्चिम की ओर ता मक्का है । बता, यदि तू हिन्दू है तो पितरों को पानी दे, देख पूरब की ओर से सूर्योदय हो रहा है, बता तू कौन है ? तब जगत के अज्ञान पर नेत्र सजल करने वाले और उनकी अकल पर हँस देने वाले नयनों के एक कौतुकी चमत्कार दिखाया और कृपापूर्ण नेत्रों वाले ने पूछा, "तुम पूरब को पानी क्यों दे रहे हो ?" उन्होंने कहा, पितरों को तृप्त कर रहे हैं, कुछ लोग सूर्य को जल दे रहे हैं । हाँ,......." ।

कौतुकी सतगुरू जी–तुम्हारे पितर कतनी दूरी पर हैं ? सूर्य कहाँ पर है !

लोग–पितृ लोक में, लाखों हज़ारों, करोड़ों कोसों पर । सूर्य भी दूर है ।

गुरू जी–तो भला है, हाँ-हाँ.........। और फिर पानी देने लग पड़े ।

लोगों में से एक पण्डि–तू भाई फिर अपने काम में लग गया, हमने उत्तर दिया हमें भी उत्तर मिलना चाहिए ।

---

१. नानक प्रकाश में हरिद्वार का प्रसंग कुरुक्षेत्र के प्रसंग के साथ ही दिया है । यह प्रसंग सितम्बर १९२८ ई० में इस पुस्तक के पहले संस्करण के लिए लिखा गया था ।

गुरू जी–भाई सज्जनो, मेरा इस ओर को ग्राम है; घर की खेती है । हमारे देश में वर्षा नहीं हुई । तुम्हें देखकर मैंने कहा चलो यहाँ से ही जल पहुँचा देखें, जिससे खेती सूखने से बच जाय ।

यह सुनकर सारे हँस पड़े । कोई कहता, बावला है । कोई कहता 'देखो आजकल भी इतने सीधे लोग हैं; गंगा का जल गंगा में गिर रहा है और उसके लिए खेतों में पहुँच रहा है ।

एक सुजान व्यक्ति–भले सज्जन ! अपने हाथ क्यों थका रहे हो, यह तेरा जल खेतों को नहीं जाता । तेरे खेत दूर पश्चिम भी ओर हैं, गंगा पूरब को जा रही है ।

गुरू जी–अच्छा जी ! इस धरती पर मेरा दिया हुआ पानी मेरे खेतों को नहीं पहुँचेगा ! हैं जी ?

हाँ ! सतगुरू नानक देव जी, आपकी युक्ति का अनोखा ढंग ! लोगों के लिए हार गए पर आपकी हार में प्रश्न करने वालों की हार हो गई । सारे सोच में पड़ गए । लगे अंटसंट बकने ।

एक–कहता तो सत्य है।

दूसरा–भूले ही रहे, कितनी स्पष्ट बात है ? सौ-दो-सौ कोसों पर अर्पित पानी नहीं पहुँचाता, लाखों कोसों पर कैसे जाता होगा ?

तीसरा–कलेजा निकाल लिया है । हमें पण्डों ने मूर्ख बना दिया है ।

चौथा–यह लो भाई, निकाली है न बात, स्वाद आ गया । हमने सोचा, कोई कौतुकी है ।

पाँचवाँ–(गुरू जी की ओर देखकर) भाई भले सज्जन जी ! बात तो आपने बढ़िया कही है मन में चोट कर गई है पर यह तो संकल्प की बात है न ।

गुरू जी–तुम्हारे संकल्प ही तुम्हें नरकों में ले जा रहे हैं ।

मनुष्य–हमारे संकल्प तो 'हरि हरि' के हैं, 'हरि हरि' कहने वालों को नरक में भेजते हो ?

गुरू जी–हाँ ठीक है, तुम्हारे हाथ में माला का मनका है, पर मन स्त्री, पुत्र, धन, धाम, व्यवहार, कार, घरबार, अनेको धन्धों का स्मरण कर रहा है । मन वहाँ पर जायेगा, जहाँ पर इसकी लौ लग रही है, हाँ, जिन संकल्पों की लौ में मन है वहीं पर जाकर प्राप्त होगा ।[1] जल पितरों को दिया जा रहा है, पर मन दस-दिशाओं में भटक रहा है, मन की लालसाओं में गोमुखी माला में लिये कुशा के आसन पर बैठे हो, नयन बन्द हैं, मनके पर मनका ठक-ठक गिरता है, पर मन जंजालों में उड़ रहा है । शीतल नीर में डुबकी लग रही है सर्दी के कारण मुँह थर-थर करता कह रहा है, हरि, हरि, हरि । मन सर्दी के कारण मनोराजी संकल्पों में उड़ता है, जिधर-जिधर मन, उधर-उधर जीव की गति ।

मनुष्य–बात तो यह भी सच्ची कही है, पर आपको क्या पता कि किसका मन दौड़ रहा है ? न जाने मन भगवन्त में ही लगे हुए हों ।

---

१. साई बसतु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ । [सूही महला १]

तब गुरू जी ने दो चार समाधि वालों के मनों की ठीक उड़ान गति, मस्जिद के काज़ी के मन की गति की भाँति बता दी ।[1] एक का पता दिया किसका मन मुलतान में व्यवहार कर रहा है, दूसरे का काबुल, तीसरे का दिल्ली । जिन-जिन व्यवहारों तथा सोचों में जिस जिसका मन व्यस्त था, स्पष्ट बता दिया तब लोगों पर भय-सा छा गया, नयनों में श्रद्धा भर आई; आप किनारे पर बैठ गए और चारों ओर लोग बैठ गए । जब समागम जुड़कर ठठ बँध गया तब दाता ने जीवों के अज्ञान के पर्दे दूर किए । सारा सच्चा मार्ग बताया एक वाहिगुरू में लौ लगाने का मार्ग समझाया कि यह रास्ता है, नाम जपो, हुजूरी में निवास करो, उठते-बैठते, चलते-फिरते उस स्वामी की हुजूरी में रहो, उस प्यार था रसभरी हुजूरी से ओझल न होवो, यों समझो कि जिसका नाम जिह्वा पर है वे हाज़र हैं और हम हुजूरी में हैं । जिस प्रकार पवन अंग-संग है, जहाँ जाओ, सोओ चलो बैठो, सदा अंग संग है, दिखाई नहीं देती पर है, वैसे वह पवन से भी सूक्ष्म परम तत्व अंगसंग है प्यार, रस तथा आनन्द उससे हर समय फव्वारे की भाँति छूटता है, उसकी हुजूरी में रहने से वह स्वाद हमें भी आयेगा यदि वह सदैव जागृत अस्तित्व में, उस अंगसंग 'शक्ति' में हमारा मन रहेगा । तो मरकर भी हम वहाँ पर ही जाएँगे । हाँ का व्यवहार करो, भई कार-व्यवहार, कोई व्यवसाय कोई काम करके कमा कर रोटी खाओ । कमाकर बाँटकर खाओ ।[2] कृत्य कमाई में से देकर भला मनाओ । काम कार्य अवश्य ही करो, निखट्टू न बनो, दूसरों की कमाई पर अपने निर्वाह का भार डालकर उनको कष्ट मत दो । करो कोई कृत्य करो, पर जो करो सुन्दर ढंग से करो । कमाओ पर धर्म-कृत्य द्वारा । हाँ कमाई करने में मन की आवश्यकता है, मन यदि कामों की ओर जाएगा तो हुजूरी में किस तरह बसेगा ? हाँ, भाई हुजूरी में इस प्रकार बसेगा : हाथों से काम करो, मन की शक्ति की जितनी आवश्यकता है, सो कृत्य को दो, भली तरह दो । काम काज़ बुद्धि तथा होश से करो, कपट तथा छल के साथ मत करो । दूसरे की बुराई की मनशा से मत करो, बुद्धि के साथ, विचार से, ध्यान देकर । सुन्दर व्यवसाय करोः पर बीच-बीच अवकाश मिलता है, सवेरे, संध्या तथा रात को अवकाश होता है । पहले अवकाश का 'समय' हुजूरी में निवास करते हुए सफल करो । फिर हाथ में काम में लगा रहे, मन ईश्वर की ओर लगाए रखो । कुछ समय के पश्चात् मन हुजूरी से बाहर नहीं आया करेगा । हमारे तथा स्वामी के बीज में भूल का पर्दा है । भूल निकाल दो याद में निवास करो, याद हुजूरी में रखती है । 'हुजूरी सिक्खों का मूल है' यह समझकर परमेश्वर के नाम जपने को इस 'हुजूरी के अभ्यास' की लकुटिया समझो । नाम का अभ्यास मन को अज्ञानता से निकालता है और हुजूरी में लाता है; हाँ नाम हुजूरी में निवास है ।

जब श्री गुरू जी सच का डंका बजाकर चुप हो गए तब वे जीव जो प्रेरित हो गए थे, कहने लगे, 'हमारे साथ चलकर भोजन कीजिए'' । आगे गए तो रेखाएँ निकालकर चौका बना कर रसोई तैयार हो रही थी । जब स्वच्छ तथा संयमी ब्राह्मण अन्दर गए तब सतगुरू जी बोले, ''चौका अपवित्र

१. श्री गुरु बाबा जी ने आप कहा है :–
गुपतु प्रगटु सभी जाणीऐ, जे मन राखै ठाइ'' ।

२. घालि खाइ किछु हथहु देहि।। नानक राहु पछाणहि सेइ ।।

हो गया है । अपवित्र चौके का भोजन कौन करे ?" ब्राह्मणों ने करबद्ध कहा, "जी काठ धोकर चौका लगाकर अन्न धोकर, और सुखा कर स्वयं स्नान करके पूर्ण रूप से स्वच्छता के साथ रसोई बनाई है" ।

गुरू जी–पर तुमने अन्दर जाकर अपवित्र कर दी है ।

ब्राह्मण–छूत वाला कौन छुआ है । हम कुलीन ब्राह्मण हैं । कोई अछूत चाण्डाल डोम कसाई तो आया नहीं ।

गुरू जी :–

कुबुधि डूमणी कुदइया कसाइणि पर निन्दा घट चूहड़ी मुठी क्रोध चंडालि ।।
कारी कढी किआ थिऐ जां चारे बैठीआ नालि ।।

[सिरी राग की वार महला १]

सतगुरू जी ने बताया कि तन के स्वच्छ करने से क्या हुआ है, अपवत्रि होने वाली वस्तु अन्दर वह बुद्धि है जो पशुवृत्ति को अधिकार में नहीं रखती और मुक्त छोड़ती है । विचार कर लो कि कितनी छूत उस वृत्ति को लगती है जिसके सिर पर श्रेष्ठ बुद्धि का अंकुश नहीं हैं । वह डोमणी की भाँति नीच जाति है अथवा नहीं, जो बुरे-मन्दे गीत गाकर लोगों के मनों को मलिन करती हैं ।

निर्दयता, अत्याचार, दूसरों का बुरा करना और अपना भला चाहना यह कसाईपन है कि नहीं ? दूसरे का माँस नोचना और अपना स्वाद लेना, यह स्वभाव वाली वृत्ति, अपने बुरे स्वभाव की छूत दूसरों के मनों को लगाती है कि नहीं ? दूसरे की निन्दा, दूसरे के यश को, नाम को, वैभव को बट्टा लगाने की मंशा, यह हैं न अन्दर दूसरे की निन्दा का निवास ? लोगों में मैं भला प्रसिद्ध होऊँ और दूसरे का अपयश हो तब मेरा नाम अधिक फैले, यह अछूत है कि नहीं ? दूसरे के सच्चे अथवा झूठे अवगुणों, पापों, बुराइयों, कमियों का मैल आप इकट्ठा करना, अछूत का सा काम है कि नहीं? अपने सुन्दर मन को इस गन्दगी की दुर्गन्ध लगाना फिर लोगों को निन्दा सुनाकर उस गन्दगी की छूत उनको लगाना, जिनकी निन्दा करना उन्होंने आगे से तप्त होकर करना, इस प्रकार लोगों का निन्दा करने का स्वभाव बन जाना । निन्दा चूहड़ी पंचायत की प्रधान है। ड्योढ़ियों में, मजलिसों में, हुजरों में, जहाँ पर चार मित्र बैठे, वहीं पर निन्दा चूहड़ी ही प्रधान है । जहाँ पर दो चार मिले वहाँ पर किसी और की निन्दा छिड़ती है । फिर एक बात हँसी वाली यह है कि उन निन्दा करने वालों की निन्दा कहीं और हो रही होती है, तो तीसरी बुरी छूत लगाने वाली नींच निन्दा है । चौथा, क्रोध सबसे बड़ा और बुरी छूत वाला चांडाल है । क्रोध अग्नि है, आप जलती है, दूसरे को जलाती है । जब तुम्हारे साथ कोई क्रोध का बचन करे तो तुममें भी क्रोध की अग्नि धधकती है । है कि नहीं क्रोध छूत लगाने वाली ? फिर इसकी छूत अग्नि की छूत की भाँति है, आप जलती है और जिसको छू जाए, उसको जलाती है । क्रोध जलता है, जिस पर पड़ता है उसको जलाता है । मन इसके साथ जलता है, तन इसके साथ जलता है । अब तुम जो चौके में घुसे हो, मन में विचार करो कि अपवित्र कर दिया है अथवा नहीं ?

यह ब्राह्मण पहले सतगुरू जी के वचनों से कुछ श्रद्धालु होकर तो आए थे, पर उनके अपने अन्दर के मन के भाव और तन के कर्म तो वही थे, अब जब उन्होंने अपने अन्दर के स्वभाव का चित्र खींचा हुआ देखा तब चरणों पर गिर पड़े और बोले–

"किस तरह क्षमा कीजिए, पापी हैं ।"

बख्शने वाले ने तब श्लोक गाया–

'सचु, संजमु करणी कारां नावणु नाउ जपेही ।
नानक अगै ऊतम सेई जि पापां पंदि न देही ।।१।।

[वा : सिरी रागु महला १-२०]

ब्राह्मण–हे दाता ! अपना सेवक बना लीजिए ।

गुरू जी–हमारी सिक्खी (शिष्यत्व) कठिन है, पर सहल भी है । जो धन तुम्हारे पास है, पापों द्वारा आया है, तुमने कुकर्मों द्वारा उनका संचय किया है, भगवन्त के नाम पर लुटा दो ।

यह सुनकर उन्होंने धन उसी समय बाँट दिया । यह देखकर उस दाता की ओर से अनुकम्पा की झड़ी लग गई, नाम का दान दिया गया, साईं के चरणों के साथ लौ प्रदान की गई । आपने उनके मनों को साईं की ओर लगाकर हुजूरी में हाज़िर रहने वाले सुखी बना दिये । ढंग बता दिया कि मन एक रस में रहे और अन्दर से एक उच्चता, एक प्रतीत, हर समय साईं के साथ-साथ होने की चलती रहे ।

इस प्रकार जब अनेकों लोग सिक्ख हो गए और पाखण्ड बनावट के ढंगों से लौट पड़े तब बाह्मणों पण्डितों का एक जत्था सतगुरू जी को कर्मकाण्डों और उनकी बनी हुई पगडंडियों के लाभ बताने आया कि किस प्रकार इतने पुनीत और प्रभावशाली गुरू जी, उन बँधे हुए मार्गों पर चलते रहे । पण्डितों ने यज्ञों तथा होमों की स्तुति की, पर आपने वचन किया–भली बात सदैव भली है, पर बनावट तथा मनों को कैद करने वाली रीति कभी अच्छी नहीं होती । हमें सच का ढंढोरा देना है, सुनो जिसके उत्तम भाग्य हैं, सुनो और सुनकर अनसुनी करो, जिनके दुर्भाग्य हैं ।

अग्नि में अन्न-घी डालकर उसे व्यर्थ मत करो । प्रजा दुखी तथा गरीब है । सच के प्रमियो ! नाम में लगे हुओं को अन्न दो, यही होम है और यही यज्ञ है । शेष रही स्तुति सो उसकी मुझे आवश्यकता नहीं । स्तुति मक्खी है जो सच की खीर पर बैठकर उसको बुरी छूत लगाकर उसको बुरा करती है । सच के सेवक को तो सच का आधार है, स्तुति-रूपी मक्खी की आवश्यकता नहीं ।

सूचना–इसी प्रसंग को कविता में इस प्रकार लिखा गया था ।

□□

१३ गंगा यात्रा

सतगुरू पच्छिम की ओर मुँह किया और टेढ़े खड़े हो गये
कितने ही पानी की अँजुलियाँ भर-भरकर आगे गिरा दीं
जब पाँच-चार बार इस तरह अँजुलियाँ भर-भरकर डालीं

तो हरिद्वार के नर-नारी ध्यान लगाकर देखने लगे
लोगों ने आकर कहा कि हे पुरुख तुम उलटा काम करते हो
सूर्य की ओर पीठ करके किसको पानी पहुँचा रहे हो
सतगुरू ने कहा कि हे सज्जनो मैं खेती को पानी दे रहा हूँ
कहीं मेरे खड़े खेत सूख न जायँ इससे यहाँ से पानी पहुँचा रहा हूँ
हँस कर लोगों ने कहा कि हे भाई खेती को ये पानी नहीं मिलेगा
क्योंकि तू गंगा का पानी गंगा ही में डाल रहा है और तेरी खेती दूर है
विहँस कर तब गुरू जी ने कहा कि हे सज्जनो ! तुम भर-भर अंजलि पानी देते हो
और सूरज के देश पहुँचाते हो तो वह वहाँ कैसे पहुँच जाता है?
मेरे खेत इसी धरती पर हैं और यदि वहाँ पानी नहीं जाता
तो तुम्हारा जल सूर्य मण्डल में कैसे पहुँचेगा ।
लोगों के कलेजे में बात चुभी और हैरानी-सी छा गई
पैरों पड़ कर लोगों ने कहा कि दाता तुमने गहरी नींद से जगा दिया
आपने हमारे भ्रम की दीवार गिरा दी और सच्ची दीवार खड़ी कर दी है
आप हमें जल से निकाल कर मरुभूमि में न डाल देना वरन् अच्छी जगह पहुँचाना ।
तब सतगुरू ने सब की ओर गहरी नजर से देखा
अपने नयनों में सूर्य से भी अधिक तेज भरकर देखा
जो सबके नयनों को छूता हुआ उनके हृदयों में प्रवेश कर गया
और उनका अन्तस् जो नींद में सो रहा था उनको प्रज्वलित किया ।
सूर्य अन्दर चढ़ आया और एक बार ही भभूका-सा उठा
प्रकाश की छूत से प्रकाश आ गया और खुशी की एक लहर-सी दौड़ गई
आप से आप प्रकट हो गये जिससे सूर्य मलीन दीखने लगा
और अपने अन्तस् का सूर्य साफ-सुथरा और उज्ज्वल दीखने लगा ।
और प्यार के रंग में रंग कर खुशी के साथ चिल्लाने लगे
और धन्य गुरू नानक धन्य गुरू नानक की ध्वनि प्रत्येक जीभ ने गुंजरित की ।
धुर से जग का निस्तार करने के लिये गुरू नानक आये हैं ।
सतगुरू ने बढ़ी हुई भीड़ देखकर नाम का चक्र चलाया
और भ्रम-मोह-माया के पर्दे को चीर-चीर करके दिखा दिया
सत् नाम का चक्र चलाकर झकझोर कर आपा जगा दिया
और ज्ञान चक्षुओं का दान देकर जीवन दान दिवाया
हृदय-दीपक का दीप जगा कर गुरू ने सोये हुओं को जगा दिया
प्रेम-रूपी सूर्य को आपा देना यही जल चढ़ाना उसने सिखाया
मन-मन्दिर तन वेष कलन्दर घट तीरथ में नहाओ
नाम प्रभू का चित्त बसाओ फिर कर जन्म न पाओ ।

□□

१४ कुरुक्षेत्र का सूर्य-ग्रहण[१]

शनैः-शनैः चलते और अनेकों का अन्धकार दूर करते, सूर्य-ग्रहण का मेला सुनकर श्री गुरू जी कुरुक्षेत्र आ पहुँचे ।

जिस समय ग्रहण लग रहा था, सब नर-नारी स्नान तथा दान में व्यस्त ने, उस समय सतगुरू जी ध्यानमग्न बैठे थे और मरदाना ईश्वरीय रंग में जगत-आधार जी का कीर्तन कर कर रहा था । इस समय एक रानी और उसका पुत्र आ पहुँचे । यह अपना राज्यधिकार खोकर आए थे । मार्ग में राजकुमार ने एक मृग का शिकार किया था । उसको पता नहीं था कि आज ही ग्रहण है । जब वह तीर्थ को आ रहा था तब आगे गुरू जी का सौन्दर्य प्रदान करता हुआ चेहरा देखा । ऐसा कुछ अगम्य आकर्षण हुआ कि घोड़े से उतर कर चरणों पर गिर पड़ा । रानी भी डोले में से उतरी, सीस झुकाया, मृग महाराज के आगे रखा । आपने आज्ञा की कि मटकी में डालकर पकाना आरम्भ कर दो । उधर राजा के दासों ने मृग का माँस पकाने के लिये रख दिया, इधर राजा ने अपना दुःख गुरू जी को कह कर सुनाया, और प्रार्थना की कि इस प्रकार का आशीर्वाद दीजिये जिससे मेरा राज्याधिकार मुझे वापिस मिल जाए । गुरू जी ने कहा यदि राजा, राज्य को अपने सुखों के लिये समझे, तो राज्य दुखों का मूल है । यदि राजा राज्य को प्रजा की सेवा समझे और उसको अपनी सन्तान जानकर पालन-पोषण करे और मन का झुकाव साईं के अस्तित्व के साथ लगाकर रखे तब राज्य में झेले हुए दुख परोपकार के लिए हो जाते हैं । राज्य भी मानो कृत्य बन जाता है । जिसकी सुरत साईं के साथ एक स्वर रहता है और जो 'सब का भला' करने में देह को सफल करता है, उसका संसार में आना सफल है । हे राज्य पुत्र ! यदि तू साईं से लग जाय और प्रजापालन का ख्याल पक्का करे तो राज्याधिकार का लौट आना कोई बड़ी बात नहीं ।

इतने में दूर से पण्डितों, साधुओं और दूसरे लोगों ने धुआँ देखा अतः अधिक क्रोधबान होकर बोले–"तू कौन है, तेरा धर्म–हैं तेरा धर्म क्या है ? ग्रहण के समय चूल्हा गर्म किया है । हैं !" सतगुरू ने कहा–"भूख मिटाने के लिए चूल्हा जल रहा है" तब पण्डित पाण्डेय क्रोध में भरकर मारने के लिए उमड़े । यह देखकर सतगुरू जी ने कहा, "यदि देग में पक रहा माँस ग्रहण में वर्जित है और हमें मारना ग्रहण में विहित है तो बड़ी प्रसन्नता से आइए, और यदि कुछ विचार करना है तो कर लीजिए ।" यह सुनकर वे कुछ लज्जित हुए । फिर शीघ्रता से नानू नामक दिग्विजयी पण्डित को बुलवा भेजा । उसने आकर मांस पर चर्चा छोड़ दी । गुरू जी ने उसको बताया कि यह मनुष्य-जन्म पशुओं से उच्च योनि है । मनुष्य-देह में पशु-वृत्ति से वितर्क वाली बुद्धि एक बढ़ी हुई

१. यह प्रसंग इस पुस्तक के संस्करण के लिए (१६२८) में लिखा गया था । ग्रहण का प्रसंग भाई मनी सिंह जी की जन्म साखी में इस स्थान पर है, नानक प्रकाश में यह प्रसंग गुरू जी के माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् दिया है ।

वस्तु है । बुद्धि का स्वामी की ओर लगाने से एक और बुद्धि उदय होती है जिसको सिद्धि अथवा सुध कहा जाता है । फिर मनुष्य को जीवन का उच्च रस प्राप्त होता है, पर यदि उन पशुओं वाली अनेकों सोचें तथा व्यवहार वाली अनेकों वृत्तियों में ही भटकता फिरे तो इसका अपना-आप मारा-मारा फिरता है । चंचलता से मन अपने बस में नहीं रहता तुमने जो कर्म, धर्म, व्रत, पूजा, स्नान, दान बनाए हैं, ये सारे शरीर के कर्म हैं । तुम यह कर्म कर्मपात्र करते हो; मन का मैल तथा चंचलता तुम दूर नहीं करते । इस प्रकार के कर्म धर्म, करने वालों को अहं में बाँधते हैं । अब ग्रहण लग रहा है, यह प्रकृति की एक घटना है । कहाँ सूर्य और कहाँ तुम ! कितना सूर्य और कौन-सा राक्षस उसको रोकने वाला । तुम स्नान कर रहे हो, दान कर रहे हो, मन उसी तरह पहले की भाँति धन्धों में फँसे पड़े हैं । इस वृत्ति के ऊपर तुमने ईश्वरीय पैबन्द नहीं लगाया । तुम्हारा मांस न खाना कोई पुण्य नहीं । ज्ञान में तुम जाग्रत नहीं हुए, ध्यान-सिद्धि तुमने प्राप्त नहीं की, परमेश्वर के प्यार में तुम नहीं आए । सुरत पशु-सूरत ही रही है । न मनुष्य-रूप में आई है, ने देवता-रूप में । यदि मांस न खाओ तो कौन-सी बड़ाई है, यदि खाओ तो क्या बड़ाई है । माँस का झगड़ा तुम में प्रधान है, पर पराया धन, पराया अधिकार, पराई स्त्री ये तुम्हें माँस खाने की अपेक्षा बुरे नहीं दिखाई देते । अपने शरीर के साथ प्यार करना, यह भी माँस के साथ प्यार करना है । पापों के साथ प्यार करना भी माँस के साथ प्यार करना है । इस मांस का तुमने त्याग नहीं किया । शेष रही मनुष्य के प्राकृतिक रूप से माँस के साथ लगाव की बात । सो माँस से पैदा होना, माँस से दूध पीना, पलना, सारे माँस के व्यवहार हैं । फिर तुम शास्त्रों की दुहाई देकर कहते हो कि उनमें माँस वर्जित है, पर शास्त्र की यज्ञों में, होम में, विवाह आदि उत्सवों में मांस वर्जित बताये हैं और सारे पूर्वज माँस का प्रयोग करते थे । किस विचार से तुम्हें केवल माँस का त्याग धर्म लगता है, पर दिन-रात के व्यवहार पाप-रूपी, माँस की अपेक्षा बुरे नहीं दीखते । चित्त की वृत्ति तुम्हारी देह के प्यार से, जो माँस है, ऊँची नहीं उठती । देह से प्यार करके ही मनुष्य सारे पाप करता है, फिर माँस अथवा माँस का प्यार और माँस से उत्पन्न पाप तुम्हारे साथ हैं, माँस खाने तथा न खाने के झगड़े और इस पर बहस करनी और सिर फोड़ने तक के युद्ध रचा लेना भूल के अतिरिक्त और क्या हैं ? फिर तुम्हारे पुरोहित, राजा पातशाह, क्षत्रिय, शूरवीर सभी माँस खाते हैं, उनका दान तुम लेते हो, तुम दान लेने वाले माँस न खाने से स्वर्ग में जाओगे और वे दान देने वाले माँस खाने के कारण नरक में जायेंगे । हैं ![१]

नानू-आपने बड़े जोर से वाक्य उच्चारण किये हैं और हमारी समझ के अन्धकार को प्रकाश दिया है । बातें सख्त हैं, चुभती हैं, पर है । सच्ची । कृपया यह बताइए कि मांस खाना तुम्हारे धर्म में उचित हैं कि अनुचित ?

गुरू जी-यह देह एक प्रकार की पशु देह तथा माँस है, इसमें जो सुरत ने मति तथा मन और

१. गुरू ग्रंथ साहब में मलार राग में "पहिला मासहु निंमिआ" के 'सलोक महला १' का यह सारांश है ।

अन्त में बुद्धि का अवस्था प्राप्त कर ली है, यह पशु की अपेक्षा बात हुई है, मनुष्य इसलिए सोच-विचार वाला है । अब इसको चाहिए कि बुद्धि से और ऊँचा उठे और सुध में आवे । सुध वही बुद्धि है जिससे मानो अनुभव खुलता है, अकल तथा बुद्धि से उच्च, 'अपने-आपकी सूझ' हो आती है । आया इस जगत् के मूल के साथ प्रत्येक समय एक स्वर हुआ रहता है, जिससे यह एक ऊँचा रस लेता है; जो रस कि पशु-वृत्ति के रस से भी और मनुष्य-वृत्ति के मन, तथा मस्तिक के रस से भी ऊँचा होता है और वह आपे में से आता है । इसको ज्ञान कह लो, ध्यान कह लो पारदर्शक दृष्टि, कह लो, साक्षी पद में स्थित होना कह लो; इससे दृष्टापद में स्थिति होती है। हे पण्डित ! कर्तव्य है ।

पण्डित–फिर मनुष्य ईश्वर हो जाता है क्या ?

गुरू जी–यही तुम्हारा भुलावा है । तुम कर्तव्य तो करते नहीं और बातों में छलाँगें लगाते हो । मनुष्य पशु है, इसकी देह पशुओं की भाँति है । इसका पैदा होना, पलना, खाना-पीना सब कुछ पशुओं की भाँति है, देह के होते हुए यह खेल जारी रहता है । जब जीव इनसे वैराग्य धारण करता है और खाना-पीना तथा अन्य शारीरिक आवश्यकताओं को व्रतों, हठों तथा तपों द्वारा विजय प्राप्त करना चाहता है तो उलटा हो-होकर गिरता है । यह शारीरिक आवश्यकताएँ हैं, इनका दमन अच्छा नहीं, इनको संयम में लाना है । खाने-पीने के झगड़ों में पड़कर अन्य कष्ट सुरत के लिए उत्पन्न नहीं करने चाहिए । एक नियम बना लो, उसीसे खाने-पीने के झगड़े दूर हो जाएँगे ।

'बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु ।।
जितु खाधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ।।१।।

[सिरी राग महला १]

जिस वस्तु के खाने से शरीर में रोग आये और मन में विकार उत्पन्न हों, उसके खाने को दुःख समझो । इस पशु की आवश्यकताएँ बुद्धि तथा संयम से पूरी करते तथा इनमें दुखी न होने से एक तो मनुष्य स्वस्थ रहता है दूसरा यत्न करे तो अन्तस् की उन्नति करता है, फिर बुद्धि मण्डल में से सिद्धि के मण्डल की ओर चल पड़ता है । ईश्वर का प्यार इसमें कोई नया जीवन भर देता है और मनुष्य मानो देवता-रूप बन जाता है ।

हमारा स्वभाव जो पशुओं के साथ एक-सा है यह मानो एक खट्टेका पेड़ है, उसके ऊपर जो बुद्धि तथा सिद्धि की उन्नति होती है वह देवता स्वभाव का पैबन्द लगता है, जिस प्रकार खट्टे के पेड़ पर सन्तरे का पैबंद लगता है । इस प्रकार जो खट्टे का मूल पेड़ है, वह काटा नहीं जाता, वह नीचे से रस लाता है और पेबंद को देता है, पैबंद उस रस को आगे ले जाकर सन्तरे का फल पैदा करता है । हाँ, यदि खट्टे की कोई शाख पनप पड़े तो उसको काटा जाता है । इस प्रकार मनुष्य अपने अन्तस को देव बना सकता है, सिद्धि के मण्डल में ले जा सकता है । लौ में ऊँचा हो सकता है । यह सब कुछ भुलाकर तुम केवल तप-व्रत आदि कठिनाइयां, दिलगीरी वाली उदासी तथा शरीर का

पालन करने वाली वस्तुओं को त्याग करके मानो खट्टे के पेड़ को काटने का यत्न करते हो । पर मन वहाँ-का-वहाँ, उदासी में, गिनतियों में तथा कर्म-काण्ड करते जोर लगाते शरीर के पाशविक स्वभावों में मानो खट्टे-का-खट्टा ही रहता है । यह अवस्था, पण्डित जी दुर्बल अवस्था है ।

नानू सोच में पड़ रहा था । अचानक वृत्ति सच की अवस्था में आ गई और वह धीमी आवाज में बोला–

नानू–अंगमी बातें करने वाले दाता ! ठीक है मैंने वेद-शास्त्र पढ़ और दिग्विजय भी की । मैंने स्कन्ध के भविष्य पुराण में पढ़कर अनुमान लगाये कि नानक नामक अवतार के होने का समय है और मैंने अपने नानू नाम को 'नानक' नाम बनाकर कीर्ति प्राप्त की, पर आज पता चला है कि वह नानक तुम हो । मैं अब से फिर नानू ही कहलाऊँगा, आप कृपा करके यह दान दीजिए जिससे मेरी लौ लगे । वह त्याग, किस प्रकार दूर हों जो किए जाते हैं, पर होते नहीं ? वनों में जा-जाकर, थोथे तपों में देह को खपा-खपाकर–मैंने लोग देखे हैं–जो फिर पशु-वृत्ति में आ जाते हैं । वेदान्तवेता 'ब्रह्म ब्रह्म' कूकते, 'सारे ब्रह्म दृष्टि' कहते पशु वृत्ति के वेगों से नहीं छूटते, केवल चर्चा में, विद्या की चंचलताओं में और कथन में बसते हैं, जैसे आपने कहा है कि खट्टे के ऊपर सन्तरे का पेवंद नहीं लगता, लगता है तो टूटता नहीं ।

गुरू जी–मन कहते हैं जानने को, मन वह इन्द्र है जो जानने वाला है । मन सोच अथवा विचार मण्डल में बसता है पर यह 'अनेक चिन्तन' में रहता है । जिस वस्तु को तुम शास्त्र पढ़े लोग वृत्ति कहते हो, ज्ञान उस पर सवार हो जाए तो वह साईं के देश की ओर रुख करे, वह देश के रंग रस की परछाई अपने में ले सफल ज्ञान का फल लगे । यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि मन जो अनेक चिन्तन में रहता है, एक चिन्तन में न आ जावे । प्रत्येक प्राणी का मन दिन रात, जागते-सोते, काम करते समय अथवा अवकाश में प्रत्येक दशा में सोचों में है, अर्थात् बेकार तथा व्यर्थ चिन्तन में है । यह 'अनेक चिन्तन' मन की चंचलता है । मन की चंचलता दुर्बलता है जुड़ना, एकाग्र होना, यह मन की शक्ति है । जो मन जुड़ता है वह शक्तिशाली होता है, जो शक्तिशाली होता है वह ऊपर को उठता है । जुड़ने वाला मन निर्मल भी होना चाहिए जो निर्मल है और जो ऊँचा उठता है वह मन से निर्मल बुद्धि में और निर्मल बुद्धि से सुध में पहुँचता है । सुध वाले को 'सकल भवन की सुधि' प्राप्त होती है । वह साथी पद में, दृष्टा दशा में, हालत फाहलियत में अपने-आपको अनुभव करता है । शरीर तथा मन से भिन्न, और साईं के साथ लौ में निरन्तर मेल में । फिर वह किसी आनन्द में अथवा प्रसन्नता में रहता है । हाँ, पण्डित जी ! जगत का मेल जिसका यह सारा खेल है–साईं, स्वामी, जो आत्मिक शक्ति है–वह नेत्रों का विषय नहीं; पर हमारे आपे के सुध मण्डल के दृष्टा दिशा की ओर अनुभव द्वारा प्रतीत होती है । सो इस शरीर का त्याग, इसकी प्राकृतिक और वर्जित भूखों का त्याग उसका मार्ग नहीं, न ही थोथे जप-तप, त्याग, संन्यास आदि दिलगीरी और हृदय का पतन करने वाले कर्म में पड़कर इसके साथ रुष्ट होने का मार्ग है । मार्ग यह है कि शरीर की तृष्णाएँ तथा आवश्यकताएँ जो हैं, उनके लिए साईं ने हमें बुद्धि दी है, इन आवश्यकताओं को

बुद्धि के साथ तोलकर संयम से पूरा करें । पशु की बुद्धि की भाँति नहीं जो बेबस अपनी 'मनमानी' की ओर उठकर दौड़ता है, पर बुद्धि के साथ इन तृष्णाओं को विहित ढंग से पूरा कीजिए, बुद्धि से पूछो कि सचमुच भला क्या है वह करो फिर नाम जपो नाम स्मरण से इस शरीर में निवास करने वाली बुद्धि लौ मण्डल में जाती है । नाम के साथ अनेक चिन्तन एक चिन्तन में, हाँ एक व्यापक ज्योति के चिन्तन में आ जाना होता है । यह 'एक चिन्तन' में ज्यों-ज्यों बढ़ेगा, शक्ति बढ़ेगी, दृष्टि खुलेगी प्रतीत होगी कि स्मरण के मूल का अर्थ है याद करना, प्रसन्न होना, प्यार करना । स्मरण का फल है, वृत्ति का उदय होना, स्मरण करते हैं ईश्वर का, उसके साथ प्यार उत्पन्न होता है, वह आनन्द स्वरूप है उसको प्यार वृत्ति के साथ स्मरण करने से आनन्द आता है ।

नानू (और श्रद्धा में भरकर) कृपा करो और यह दान दीजिए, चरणों में लगा लो । तब गुरू जी ने कृपा करके नाम का दान प्रदान किया । इस ठिकाने पर सतगुरु के मार्ग पर अनेकों लोग आये ।[1]

□□

१. यहाँ पर गुरुद्वारा विद्यमान है ।

१५ मनसुख और शिवनाभ

सतगुरू का प्यारा सिक्ख लाहौर का व्यापारी मनसुख, जब सतगुरू जी उदासी धारण करके चल पड़े तो उनके ध्यान में मग्न किसी आवश्यक व्यापार के लिए, आप संगलादीप गया। वहाँ पर राजा शिवनाभ के नगर में गुरू नानक देव जी के प्यारे सिक्ख ने व्रत न रखा, शालग्राम की पूजा न की तो राजा के दास उसको राजा के पास ले गए और कहने लगे :–

दास–हे राजा कृपालु ! यह मनुष्य अधर्मी है । सागर के पार से यहाँ पर आया है और कुमार्ग पकड़ा है । न ही इसने शालग्राम की पूजा की है और न ही एकादशी का व्रत रखा हैं । इसको देख-देखकर सारी दृष्टि आश्चर्यित हो रही है और सभी इसको बुरा कह रहे हैं ।

राजा[1] (मनसुख से) तूने न तो स्नान किया न पूजा की और न व्रत धारण किया । न ही तूने संयम, नियम और तिलक धारण किया । तूने यह निराली चाल क्यों धारण की है और माता-पिता की रीति का पालन क्यों नहीं किया ?

मनसुख–हे राजा! सुन लो, यह जगत वृक्ष के समान है । इसके सिर पर मुक्ति का फल लग रहा है । फल प्राप्त करने के दो मार्ग हैं । एक चींटी का मार्ग है दूसरा पक्षी का, जिस पर पक्षी उड़कर जाते हैं ।

राजा–मैंने यह निराली रीति नहीं सुनी, मुझे यह सब-कुछ खोलकर समझाओ ।

मनसुख–तप, हठ, तीर्थ संयम सारे, व्रत-नियम और चार कर्म। यह चींटी मार्ग है राजा ली । इसमें बहुत कष्ट होता है । चींटी की भाँति प्रतिदिन चल-चलकर मरता है । जिसको पूर्ण गुरू मिला है और जिसका हृदय आकर्षित होकर हिल गया है । जिसके मन में प्रेमकण का निवास हुआ है और स्मरण की वर्षा हुई है । जिसके हृदय में प्रभु के चरणों का प्रेम लगा है, प्रतिदिन हृदय आकर्षित होता है । जो ईश्वर की स्तुति में उड़ान लगाता है, जो नाम-रूपी गगन में उड़ान लगाता है । जो इस प्रकार आकर लौ में जागृत होता है ।

---

१. गुरू नानक प्रकाश आदि में यह प्रसंग सतगुरू जी के तलवण्डी से चलने के साथ दिया है। भगीरथ मैलसीहाँ का निवासी था जो सुलतानपुर के निकट है । उसको सतगुरू जी का सतसंग सुलतानपुर में प्राप्त हुआ जब सुलतानपुर में गुरू जी व्यापार की दुकान बनाकर बैठे थे । हाँ, जब परोपकार करते, अन्न देते और धन बाँटते थे अतः गरीबों के विवाह आदि में सहायता देने का एक ग्रहस्थ धर्म पूरा करने वाला रंग उस समय वहाँ पर होना अधिक जँचता है ! यह साखी पीछे आ चुकी है, देखो अंक ६ । पुरातन जनम साखी ने यह प्रसंग दूसरी उदासी के आरम्भ में दिया है, तब गुरू जी ने करतारपुर डेरा डाला था और आकाशी वृत्ति का ठाठ था, और तत्काल ही मनसुख की साखी देकर संगलादीप की दूसरी उदासी होने में कुछ समय नहीं पड़ता। संगलीदीप बड़ी दूरी पर था और राजा अधिक समय विरह में रहा, यह समय बिल्कुल ही थोड़ा रह जाता है, इसलिए हमने यह प्रसंग यहाँ पद दिया है ।

यह सौभाग्यपूर्ण पक्षी वाला मार्ग है । जिसको यह मार्ग मिला है, उसकी सारी चिन्ता समाप्त हुई है । पक्षी प्रतिदिन नये मार्ग बनाता है, उसको सड़क तथा पगडंडी की आवश्यकता नहीं होती है । इसी प्रकार प्रेमी प्रतिदिन उल्लास में भरता है । बहुत उल्लास के कारण उसके हृदय में उमंग भरती है । सदा उल्लास और उत्साह भरा रहता है, प्रतिदिन नया मार्ग ही लेता है । वे आनन्द में रहते हैं और आनन्द में उड़ान लेते हैं और अगम गगन में उड़ान लेते हैं । हर घड़ी नवीन लहर उठाती है, प्रतिपल नवीन चाव उत्पन्न होता है । जिनके हृदय में उल्लास है वे चींटी-मार्ग को क्या जानते हैं । अहं के साथ सारे कर्म करते हैं, जो जप, तप, व्रत आदि धर्म हैं । जिस प्रकार मैंने अहं का मार्ग कहा है, चींटी-मार्ग का किसने आनंद नहीं लिया ।

हे राजा सुनो, यह एक अनुपम कथा भी है । पक्षियों के मार्ग पर चलने से अहं की भीत टूट जाती है ।

राजा—हे शाह तुम धन्य हो, तुम्हारा समर्थ गुरू कौन है ? जिस गुरू ने तुम्हारे सीस पर हाथ रखकर तुम्हारा उद्धार किया है ।

मनसुख—गुरू नानक स्वामी प्रतिपालक है । वह ही दीन दयालु और पाप का नष्ट करने वाला है । नाम लेने से नयनों में जल भर आता है और कण्ठ भर आया है ।

राजा—तुमने प्रेम के वेग वाला तीर नाम लेते ही खींचकर मारा है । यह तीर कैसा है ? विरह का छेदा हुआ है और तेज फुँकार वाला है । एक प्रकार का फणधार कलेजे में आ घुसा है । इस तीर की अनी चुभाकर हृदय में कोई असाध्य-सा घाव कर दिया है । तुमने जादू किया है, तुमने आकर्षण करके खींच लिया है ।

मनसुख—प्रेम के बिना यह देह डरावनी है, मरघट की भाँति उजाड़ है । चाहे कोई सुन्दर है, उच्च कुल वाला है, बुद्धिमान है और भाग्यशील राजा है, यदि उसको विरह का आकर्षण नहीं लगा, प्रेम-भावना उसमें जागृत नहीं हुई तो वह मृतक के समान है और उसका ज्ञान काग के बोलने के समान है ।

राजा—मेरे अन्दर एक भारी आकर्षण हुआ है, तू मुझे सुलतानपुर वाले गुरू के साथ मिला दे । जिस गुरू के नाम में अधिक आकर्षण है, जिसका नाम सुनते ही सारे प्राण खिंचे जाते हैं । जिस गुरू के शिष्य के तीर बड़ा आघात करने वाले हैं, हे सिक्ख उस गुरू के दर्शन मुझे भी करा दो । मेरा जी राज के कार्य से ऊब गया है और राज्याधिकार मैंने दूर फेंक दिया है । हमें राज्य की आवश्यकता नहीं क्योंकि हम तो सौभाग्यवान हो रहे हैं । हमको तो प्रियतम की खोज में चलना है चाहे इसके लिए हमें कष्ट ही क्यों न सहन करने पड़ें । हमारी इच्छा है कि हम प्यारे की धूल में मिल जाए और इसके लिए जो भी कष्ट आए सहन कर लें ।

मनसुख—हे राजा ! उसकी खोज की आवश्यकता नहीं, केवल उसको हृदय में धारण करने की जरूरत है । हृदय में उसका प्रेम धारण करके ध्यान लगाओ तो गुरू को प्रत्यक्ष रूप में देख सकोगे । ऐसा करने से खींच खाकर गुरू जी आप आएँगे एक मन होकर उनका स्मरण करो । गुरू जी आप अन्तर्यामी हैं और उनका विरद दासों का प्रतिपाल करने का है ।

राजा–मुझे कोई निशान-चिन्ह बता कर जाना जिससे मैं उनके आने पर पहचान सकूँ ।

मनसुख–जब उनके दर्शन होंगे तो मन को अच्छे लगेंगे । एक बड़ा भारी आकर्षण होगा, नयन फव्वारों की भाँति बरसेंगे, हृदय में उमंग आयेगी । गर्दन तथा कण्ठ पुलकित हो उठेंगे, अंगों में शान्ति तथा असीम प्यार का जाएगा । नयन झुकेंगे और शरीर भी स्वयं साथ झुकेगा, उनके चरणों में लौ लगेगी ।

राजा-हे प्यारे मनसुख । तुम मेरे पास ही रहो, तुम्हारे दर्शन करके मुझे सुख की प्राप्ति होती है ।

मनसुख–हे राजा ! दर्शन की प्रेम-भावना तुम्हारे हृदय में उत्पन्न हुई है । मैं अपने देश को जाना चाहता हूँ, वहाँ जाकर बहुत से काम धन्धे करने हैं । करुणामय गुरू नानक देव कृपा करके आएँगे । मुझे गुरू जी का एक सिक्ख समझना। तुम्हें सच्ची बात बता चला हूँ । सतगुरू जी आप इस स्थान पर चरण रखेंगे और तेरी साध पूरी होगी । गुरू जी का विरद है सदा दयालु होना । वह आप कृपा करके मिलता है ।

राजा–मेरा मन मोर की भाँति हो गया है, कभी तो गुरू जी मेघ बनकर मिलेंगे । चातक कच चित प्यास को पुकार रहा है, दर्शन-रूपी स्वाति की इच्छा कर रहा है । मेरे नेत्र चकोर हो गए है, कब गुरू जी अपना चन्द्ररूपी मुख दिखायेंगे ।

इस प्रकार गुरू का सिक्ख मनसुख, राजा शिवनाभ को सिक्खी (शिष्यत्व) के प्रेम में जीवित करके गुरू नानक देव के अनुराग में लगाकर देश को आया ।

"अस प्रकार भूपति अभिलाखा,
दिन प्रति बिटप बधति जिउं साखा ।
रैन विखै निद्रा जिन त्यागी ।
दिन मैं भूख पिआसा भागी ।
प्रेम अधार जीवना जिह को,
लोचन चलत रहत जल तिह को ।
कितिक दिवस अस भाँति बिताये,
जिस के जागे भाग सुहाए ।

[नानक प्रकाश]

□□

१६ पानीपत[1]

कुरूक्षेत्र में नानू को मार्ग पर चलाकर और अनेकों का उद्धार करके गुरू जी नीचे की ओर चल पड़े और पानीपत आ पहुँचे । नगर के बाहर एक कुए का ठिकाना किया । कुछ समय के पश्चात् एक फ़कीर का चेला यहाँ पर पानी लेने के लिये आया । इस दिन (धर्म) के खोजक का नाम शेखर ताहर था, जिसका प्रसिद्ध नाम आम जनता में शेख टटीहरी पड़ गया था जब इसने गुरूजी को तथा मरदाना को बैठा देखा, तब फ़कीर जानकर दर्शनों के लिये भाँति नयन जोड़कर टक लगाई । पहरावा फकीरी था और यही अनुमान लगाता था कि ईश्वर के कोई फकीर हैं और माथे पर ईश्वरीय दमक है, तो उसने झुककर सलाम (प्रणाम) की और कहा, 'हे अल्ला के दरवेश ! सलामालैकम ।' गुरू जी ने उसकी ओर दृष्टि भरकर देखा और कहा-- 'अलेख को सलाम, परी के दस्तपोश ।'[2]

शेख ताहर सुनकर आश्चर्यित हो गया कि यह क्या बात हुई, मेरे सलाम का उत्तर होना चाहिए था 'वा अलैकुम सलाम ।' इस फ़कीर ने कहा कि 'अलेख को सलाम है' कि तेरे सलाम का उत्तर मैं नहीं देता, मैं अपने ईश्वर को जो निरन्तर है, उसको मानता हूँ । या न जाने इसका भाव यह है कि सलामती (सुरक्षा) न तेरी है न मेरी । सदा सलामत अलेख (ईश्वर) है । बातें तो दोनों ही हैं, पर शरह (धर्म) के बाँधे हुए नियन के विरुद्ध बात करना, यदि किसकी सामर्थ्य है । चलकर पीर जी को बताया जाये कि आज एक बहुत, साहसी दरवेश देखा है जिसने सलाम को फेरकर उलट दिया है । इस प्रकार सोच-विचार करता टीहरी, पीर के डेरे पर आया । उसका पीर शेख शरफ गद्दी पर विराजमान था, जिसको प्रायः लोग खेश शरफ ही कहा करते थे । शेख शरफ का असली नाम बू अली कलन्दर था, जो ईरान से आकर यहाँ पर बसा था । इसकी गद्दी पर जो इस समय विराजमान था उसको भी शरफ कहते थे । टटीहरी शेख ने आकर अपने गुरू को बताया कि पीर जी ! आज एक दरवेश देखा, जिसने मेरा सलाम लौटा दिया है । उसके चेहरे से ईश्वरीय जलाल देखकर मैंने सादर, सलाम किया, पर उसने लौटा दिया ।

पीर ने पूछा, 'उस ने क्या कहा ?' तब टटीहरी ने कहा, 'उसने कहा, अलेख को सलाम, पीर के दस्तपोश ।' यह सुनकर पीर चौंक पड़ा । कहने लगा--बेटा । जिसने अलेख को सलाम किया, उसने सलाम नहीं लौटाया, तुम्हें सुमति प्रदान की है कि मनुष्य को अपने ईश्वर के आगे प्रत्येक समय झुके रहना चाहिये । बेटा ! वह कोई महापुरुष है चल उसका दर्शन करें । यों कहकर पीर जी तैयार

---

१. पुरातन जन्मसाखी में तो सज्जन ठग की साखी के पश्चात् पानीपत की साखी दी है, पर भाई मनी सिंह जी ने घर से चल कर कुरुक्षेत्र का प्रसंग पहले दिया है, फिर पानीपत का । नानक प्रकाश ने जहाँ पर कुरुक्षेत्र की साखी दी है साथ ही हरिद्वार की भी दी है ।

२. पुरातन जन्मसाखी ।

हुए और ताहर को साथ लेकर उस स्थान पर आये,जहाँ पर गुरू बाबा और मरदाना बैठै थे । पीर ने आकर सलाम किया तो गुरू जी ने उसी तरह उत्तर दिया । फिर शेख ने पूछा,[१] कहाँ से आये हो ? आप ने उत्तर दिया–यहीं से आये हैं । तब शेख ने अधीर होकर पूछा–बस एक 'मैं पन' ही लटा-पटा है आपका ? तब बाबा ने उत्तर दिया, ''मैं'' पन का मान नष्ट हो चुका है ।[२] तब शरफ ने कहा कोई प्रश्न करूँ तो उत्तर दोगे क्या ? तब गुरू जी बोले–सहर्ष । तब फकीर ने पूछा–

आप फकीरी भेस में हैं, पर फिर सिर पर केश रखे हैं । बैराग्य धारण किया, घर-बार का त्याग किया और मुँड मुँडाया । आप कौन फ़कीर हैं ?

गुरू जी--फकीरी है मूँडन, शरीर का नहीं । मन के मुँडे बिना फकीर की जुगत मन को प्राप्त नहीं होती । मन के मूँडे जाने की जुगत यह है कि इसको काटकर गुरू के आगे रख दे, अर्थात् अपनी मन की मति तो सारी त्याग दे और गुरू की मति को अपनी बना ले । अपने मन की मति अहं की ओर ले जायेगी, सृष्टि के साथ द्वेष सिखायेगी, जिस करके जगत् में द्वेष, विरोध तथा दुख है । गुरू की मति परमेश्वर को पिता समझना और सृष्टि को अपने भाई समझना सिखाएगी । सो मन की मति का त्याग करना और गुरू की मति पर चलने का यह फल होगा कि सब को अपना भाई समझेगा और अपने-आपको सबकी रेणु समझेगा । यही पुरुष बेरागी होता है और यही गुम के वचनों को परखने वाला होता है । गुरू की मति पर चलकर जब वह आप सुखी हो जाता है तो दूसरों के लिये भी सुखदायी हो जाता है । उस के परखने में यह बात आ जाती है कि गुरू की मति सचमुच ऊँची वस्तु है । फिर वह गुरू की मति पर चलकर परखने के साथ निश्चय करके कि मैं ठीक मार्ग पर चल रहा हूँ, गुरुमुख हो जाता है । पर ऐसा गुरुमुख मन को जीत देने वाला कोई एक ही होता है । गुरुमुख अपने अहं तथा स्वार्थपरता के भरे मैं-मेरी वाले अन्तर वाले रसों से ऊँचा हो जाता है ।

फिर फकीर ने पूछा कि गुदड़ी तुम्हारी किस धर्म की है ? तब गुरू बाबा ने उत्तर दिया–गुरुमति का दास हो रहना और मन में नाम दृढ़ करना, यह है फ़कीरी का वास्तविक भेस । शब्द के अभ्यास

---

१. यह प्रश्न साखियों में उस भाषा में दिये हैं जो उस समय फारसी में मिल रही पंजाबी भाषा का एक रूप ले रही थी और गुरू जी के उत्तर उनकी भाषा में नहीं दिये पर साधु भाषा और पंजाबी सम्मिलित हैं, जिनका अनुमान है कि गुरू जी के मुख से निकले हूबहू वाक्य नहीं हैं क्योंकि न उनकी भाषा है और न ही गुरू ग्रन्थ साहिब में अंकित हैं ।

भाई मान सिंह जी केवल इतना ही लिखते हैं कि शरफ ने पूछा--''नित्य पूछा पण्डित ज़ोयसी । पीआ कभी मिलावा होइसी ।'' तब वचन हुआ ''शाह शरफ न थी उतावला (अधीर मत हो), क्यों दर्शन भूल बावला ।'' संभव है यह बातें शाह शरफ़ के साथ हुई हों । संभव है, शरफ़ दो हुए हैं । पानीपत वाले तो शेख शरफ़ करके लिखे हैं ।

यह पद्यांश भी प्राचीन हैं, पर गुरू ग्रन्थ साहिब में नहीं हैं ।

२. जन्म साखी भाई मनी सिंह में इस प्रकार का उल्लेख है । (प्रश्न) कुजा अमाद (उत्तर) ई जा आमद । (प्रश्न) असमन मनी (उत्तर) सुमन समाम । शुद्ध पाठ इस तरह होना चाहिए—अज़ कुजा आमदी=तू कहाँ से आया है? अज़ीं जा आमदम--मैं यहाँ से ही आया हूँ । असत माल मनी=क्या तुम्हारी मैं ही तुम्हारा माल है ?

के साथ संकल्प-विकल्प की सदा बहने वाली नदी को बालू की भाँति निःसंकल्प कर लेना, फिर उसमें टिककर सहज में सुखी हो जाना, हर्ष शोक को खा जाना और काम-क्रोध आदि दुष्टों को जीत लेना, यों अन्तस में शुन्य में टिक जाना, यह है गुदड़ी की जुगत । यह गुदड़ी पहन कर वासना-तृष्णा के परिवार का त्याग कर दिया है और मैं सुखी हो गया हूँ । यह तो है गुदड़ी जो मेरे मन की चारों ओर पड़ी है । यह गुदड़ी अन्तस को साधु बनाने वाली, यह अन्दरले जीवन और धारणा का चिन्ह है, यह पहनकर मैं प्रसन्न हूँ और सुखी हूँ । तब फिर फकीर ने पूछा--यह कोपीन तुम्हारी किस धर्म का चिन्ह है ?

गुरू जी--जो दीक्षा गुरू के उपदेश से मिले उसको सहज भाव के साथ पकड़ लेना, पाँच इन्द्रियों को बस में रखना, दृष्टि को बाँधकर दृष्टमान पदार्थों के पीछे मन को भ्रमण करने से रोकना, दसों ही द्वारों को संयम में कर लेना, अठाहठ हाटों को देख लेना, यह है अन्तस की लंगोटी, जिसने यह धारण कर ली है उसको जन्म, मरण दुःखी नहीं करते यह लंगोटी पहनकर वह मति होने से जो तेज बढ़ता है उसका सुख भोगता है । गुरू की उच्च सति के साथ यों अपनी छोटी मति विशाल हो जाती है । लंगोटी पहनने की जुगत यह है ।[1]

फिर पीर ने पूछा--हे दरवेश ! तेरे पाँवों में जो पहरावा है (भाव जो तुम नंगे पाँव हो[2]) यह किस धर्म का चिन्ह है ? तब गुरू जी ने मुस्कराकर उत्तर दिया--अज्ञान अँधेरा ! ज्ञान प्रकाश है, सो फकीर दिन-रात हृदय में टिके रहने वाला पूर्ण न्न करे । अग्नि, पवन, पानी के बल के नीचे धरती के ऊपर वृक्ष की भाँति पैदा होकर तथा सहन शक्ति की रीति धारण करे । कोई काटे, कोई उखेड़े, वृक्ष की भाँति सब-कुछ सहन करे, पर रोष न करे, हाँ वृक्षों की-सी सहनशीलता धारण करे, सहन करे, पर आप किसी का बुरा न करे । नदी के जल की-सी रीति धारण करे । कोई प्यार के साथ जल ले, अथवा कोई क्रोध से, वह नेकी करता ही चला जाता है। इस तरह का दही की भाँति मथिआ जाने वाला जीवन धारण करके फिर उपराभ रहे, तो सहज में उसके पैर टिक जायेंगे, ब्रह्म में निवास हो जायेगा । जो ब्रह्म को जानने के बिना जूते का त्याग करेगा, अर्थात् फकीर बनेगा उसकी जड़ नहीं चलेगी ।[3]

यह सुनकर पीर ने फिर प्रश्न किया, हे दरवेश ! यह बता कि उस दरवेश का अमल, रहन, भेस, वेष क्या होगा जिससे सफल हृदय दरवेश कहलाने के योग्य हो ? तब श्री गुरू जी ने उत्तर

---

१. 'गुरु सबदु द्रीखिआ महि सहिज गहनं ।। पंच हन्द्री दिलि अटल रहिनं ।। दिसटि बंधि भरमता रहीअं । दस ही दुआरे ताले चड़ीअं ।। अठ सठि हाट ताड़ करनं । लैइ लंगोटी जरा न मरनं ।। पहिर लंगोटी रहै इकेला ।। उलटि लंबि का पीवै उआ जला ।। बिलंद मति गुर हिरीछोटी ।। इहु जुगति नानक पहिरिबो लंगोटी ।।३।। [पुरातन जन्मसखी]

२. पाउपोशि तिआगि, चे ज़ेंबाशि ।। [पुरातन जन्मसखी]

३. सरब गिआन अहिनिस डीतं । पावक पवन जाति मति कीतं ।। धरनि तर वर की रहत रहनं ।। काटन खोदन मनमहिसहिनं ।। दरीआउ सैले रीति बाछं ।। भाइ भाइ ओहु करै हाछं ।। इहु मथनु, मथ कै रहै उपरानं ।। सउ सहजि पाउपोस होइि ब्रहमु । बिन ब्रहम चीने पाउपोस तिआगे ।। कहै नानक ओर तिड़ि ना लागे ।।४।। [तिड़=घास की जड़]

दिया--भाई ! दरवेश कठिन वस्तु है । पहरावे तथा वेष में नहीं रखी हुई, जीवित मृतक हो संसार में जो द्वेष, विरोध, माया के मोह में फँसा पड़ा है, इस में से निकले और अन्तस भी जीवित हो उठे, फिर जो विकारों में मन जाग रहा है इसको सुला दे । लोग इसको ठगें, दुर्व्यवहार करें, पर यह अपने स्थान पर न आये, जान-बुझकर अपने-आपको ठगाता फिरे । अन्दर-बाहर से साफ़ होकर परमेश्वर को मिले । हे परमेश्वर ! इस प्रकार का कोई मन से तेरी दहलीज़ के साथ चिपट रहा दरवेश हो तो जगत् को शीतल करे । हाँ, जिसको हर्ष नहीं, शोक नहीं, क्रोध नहीं, अहं नहीं, खुदी नहीं, लालच नहीं, हाँ जो लोहे और मिट्टी को समान समझे, फिर उचित-अनुचित, धर्म तथा अधर्म की कमाई की सूझ रखे, एक परमेश्वर का भरोसा रखे, अन्य किसी के भरोसे पर न रहे, मन एकाग्र हो, अन्दर का कमल प्रकाश में हो, दशम द्वार में टिकाव रखता हो और साईं के नाद का ज्ञाता हो, इस प्रकार के साधु की महिमा कोई नहीं लख सका और कोई नहीं कह सका ।'[1]

अब मरदाना ने रबाब बजाया और गुरू जी का प्यारा शब्द 'हम जेर जिमी दुनिआ पीरा मसाइका' बड़ी मधुर ध्वनि के साथ गाया ।

ईश्वरीय नाद सुनते ही फकीर किसी अकहि रंग में एकाग्र हो गया । वहाँ पर जहाँ पर मन बुद्धि की पहुँच नहीं, हाँ जिस बात की मन-बुद्धि खोज करते हैं और वह मिलती नहीं । क्योंकि मन-बुद्धि तो वह हथियार हैं जो इस जीव को जगत् में जीवित रहने तथा इसके पालन-पोषण को लिये सहायक हैं । जहाँ पर जाकर इन्होंने स्थिर हो जाना है हाँ, वह बात जो इन से परे 'अनुभव' में है, उसका अनुभव हो आया । इस अनुभवी रंग में रहकर अथवा पीर की सुरत ने फिर मन बुद्धि के मण्डल की ओर मोड़ लिया तो पीर ने कहा– वाह ! वाह ! ईश्वर के सुधारे हुओं का क्या सुधार किया जाये, उनका दर्शन ही काफी है ।' तब आकर हाथ चूमे, पाँव चूमे और डेरे पर आया । तब बाबाजी और मरदाना चले गए ।[2]

□□

---

१. "जीवता मरे जागत फुनि सोवै जानत आपु मुसाबै ।।
सफन सफा होइि मिलै खालक कउ तउ दरवेश कहावै ।।१।।
तेरा जनु है को अैसा दिल दरवेसु ।।
सादी गमी तमक नाही गुसा खुदी हिरसु नाहीं एसु ।। रहाऊ ।।
कंचनु खाकु बराबरि देखै हकु हलालु पछाणै ।।
आई तलब साहिब का मानै अवर तलब नहीं जानै ।।
गगन मंडल महि आसणि बैठे अनहदु नादु बजावै ।।
कहु नानक साधू की महिमा बेद कुरान न पावै ।। [पुरातन जन्मसाखी]

२. पुरातन जन्मसाखी ।

१७ दिल्ली

यमुना पर्वतों को छोड़ती हुई, शिवालिक से गुज़रती, मैदानों को हरा भरा करती दिल्ली आ पहुँचती है । 'शाहजहानबादी दिल्ली' से दो तीन मील ऊपर को यमुना का किनारा इस ओर बहुत ऊँचा है इतना कि यमुना की ओर देखो तो टीला-सा लगता है और इसको किसी फकीर के नाम पर कहते भी 'मजनू का टीला' है; स्थान बहुत रमणीक और सुन्दर दृश्य है । परली ओर हरी घास का मैदान दिखाई देता है । इस ओर के इलाके को, जिस ओर टीला है, 'तिमारपुर कहते हैं' यहाँ पर कभी आक्रमणकारी तैमूर ने डेरा डाल रखा था और उसी के नाम पर यह नाम पड़ गया लगता है । आज सवेरे ही इस टीले पर एक सुन्दर वृक्ष के नीचे कीर्तन की आवाज़ आ रही है । गुरू के सँवारे श्री मरदाना जी कीर्तन कर रहे हैं और अदेश के स्वामी के प्यारे श्री गुरू नानक देव जी अपने प्रियतम का यश कीर्तन सुन रहे हैं । पानीपत से चलकर कई स्थानों पर ठहरने, सौभाग्य बनाते आप दिल्ली आ गए हैं । यह रमणीक स्थान देखकर डेरा डाल दिया है, नदी के किनारे, जहाँ पर प्रकृति अपना चमत्कार दिखा रही है । थोड़ी-दूरी पर लोदी पातशाह का फीलखाना (हाथीखाना) है ।

जब कीर्तन की समाप्ति हुई और श्री गुरु जी ढलवान पर स्वच्छ हुई यमुना के दर्शन करने और जब तरंगों की चंचलता को देखने के लिए बैठ गये, कीर्तन द्वारा रस रंग रातें कानों में रोने की आवाज़ आई । द्रवित हृदय वाले, प्यारे से सँवारे मन वाले, कविता से, सुक्ष्म भावों की प्रतीत के साथ कोमल हृदय वाले श्री गुरू नानक देव जी के मन में मनुष्य पीड़ा की झनझनाहट छिड़ पड़ी-हे भगवंत ! जगत किस प्रकार दुःखी है, जिधर देखो, दुःख-ही दुःख है ।[1] हे दाता ! अपने जगत पर कृपा करो । आप इन भावों में प्रार्थना मग्न थे कि रोने चिल्लाने की आवाज़ और तेज़ हो गई, तब आपने मरदाना से कहा--जाओ भाई--हृदय की पीड़ा की आवाज़ पर पहुँच कीर्तन रसों के रसिक कानों द्वारा मनुष्य के बैनों को भी सुन और पता लगा कि क्या हैं । यदि कुछ हो सके तो करें । मरदाना गया और सूचना लाया कि दाता ! जिन हाथीवानों ने हमारी सेवा की है, उनका हाथी मर गया है, वह रो रहे हैं । तब कृपा के स्थान वनों में जाकर बैठने वाले, पर मनुष्य की पीड़ा दूर करने के लिए मनुष्यों में आकर बैठने वाले सहानुभूति करने वाले आप वहाँ पर चले गए । ठिकाना निकट ही था । जाकर पूछने लगे भाई रोते क्यों हो ?

महावत-ईश्वर के सँवारे हुए दाता ही ! हाथी मर गया है ?

गुरू जी-फिर हाथी तो पातशाह का है, उसको धन की परवाह नहीं, एक मर गया दस और खरीद लेगा, तुम किस लिये रोते हो?

महावत--पातशाह यह रोना तो इसलिए है कि इसके मरने का क्रोध कहीं हमारे पर न टूट पड़े

---

१. नानक दुखीआ सभु संसार । [रामकली वार महला १]

कि यह हमारी बेपरवाही के कारण मरा है । दूसरे आजीवका बनी हुई थी, हम आज ही बेकार हो जाएँगे । फिर जब और हाथी आयेगा, न जाने फिर हमें रखा जाये अथवा कोई आकर हमारा स्थान ले ले, हमारी आजीविका बड़ी कठिन है, हाथी रखना प्रत्येक व्यक्ति के बस की बात नहीं, पातशाह, राजा ही हाथी रखते हैं, उनकी नौकरी बड़ी कठिनाई से मिलती है ।

यह तो अपनी कथा सुना रहा था और परिवार साथ-साथ विलाप कर रहा था, जिससे दयालु मूर्ति का हृदय और द्रवित हो जाता था । तब आपने कहा--''बच्चो ! बीबियो चुप हो जाओ और मेरी बात सुनो । यदि तुम्हारा हाथी जीवित हो उठे तो फिर नहीं रोवोगे क्या ? उन्होंने चुप होकर बात सुनी और कहा--जी फिर तो हँसेंगे, सुखी होंगे, पर फ़कीर साईं ! मरे कब जीते हैं तब आपने नयन ऊँचे हो गये और ईश्वरी कण्ठ से नाद हुआ :--

सबदि मरै ता मारि मरु भागो किसु पहि जाउ ।।
जिसकै डरि भै भागीऐ अंमृतु ताको नाउ ।।
मारहि राखहि एकु तू बीजउ नाही थाउ ।।

[मारू महला १]

''मारहि राखहि एक तु बीजउ नाही थाउँ'' बार-बार गा रहे हैं और नेत्र मुँदे जाते हैं। महावत और उसका परिवार और अन्य महावत लोग खड़े देख रहे हैं । भय छा रहा है, चुप हैं और ईश्वर वाले की ओर देख सारे रहे हैं । गरीब लोगों में विश्वास अधिक होता है । विश्वास के बेड़े पार होते हैं । प्रतीक्षा कर रहे हैं, कि सन्त हैं, फकीर हैं, न जाने रेख में मेख मार ही दें । थोड़ी देर के पश्चात् नयन खुले । जगत-पीड़ा पर पसीजे नेत्र जगत्-प्यार के साथ सजल हो रहे थे । उन सजल नयनों ने दु:खियों की ओर देखा और सुन्दर रसना ने वचन दिया किया । जाकर इसके मुँह पर हाथ फेरो और वाहिगुरू कहो ।[1] तब आज्ञा मानकर हाथी के मुँह पर महावत ने हाथ फेरा और मुँह से वाहिगुरू कहा । वाहिगुरु के प्यारे हाथी को देख रहे थे, वाहिगुरू कौतुकहार खेल कर रहा था । हाथी वाहिगुरू की जीवन-शक्ति की रौ के साथ हिल पड़ा और अंगड़ाई ली और छोटे-छोटे नयन खोलकर बड़े बढ़े हुए शरीर को लेकर काँपता-काँपता उठ खड़ा हुआ पंखों की भाँति कान हिलाये, सूँड ऊपर नीचे की, सूँड का मुँह खोला और छोटे नयनों से प्राणदाता जी की ओर देखा । हाँ, भाई मनुष्यों की अजीवका दाता हाथी तुझे इसीलिए खड़ा कर दिया है कि तू जीवों को जीविका देने वाला था ।

हाथी जीवित हो गया, यह समाचार दावाग्नि की भाँति फैल गया । पातशाह[2] को सूचना पहुँच चुकी थी कि उसका मन प्यारा हाथी मर गया है, हाथियों के वैद्य की प्रार्थना भी, कि किस कारण मरा है पहुँच गई थी कि अचानक समाचार पहुँचा कि हाथी एक अनोखे फकीर साईं, ईश्वर के फकीर ने जीवित कर दिया है । उसी समय कर्मचारी भेजे गये जो जाकर पता ले आये कि बात सत्य है ।

---

१. पुरातन जन्मसाखी
२. उस समय दिल्लीपति इब्राहीम लोदी था, जिसको जन्मसाखी में ब्रह्मबेग लिखा है ।

हाथियों के अधिकारी ने भी जाकर देखा और बताया कि पातशाह ! बात सच्ची है, हाथी जीवित हो उठा है । अचम्भित तथा और अचम्भित होकर पातशाह उठकर चल पड़ा । वह लोधी पठान पातशाह, जिसके हाथों अनेकों हिन्दू कष्ट उठा चुके थे; फकीर दुःखी हुए थे, आप आया और आकर हाथी देखा : जीवित है, तसल्ली की कि ठीक मर गया था । तब गुरू बाबा के पास आया और नमस्कार करके कहने लगा, "हे दरवेश ! यह हाथी आपने जीवित किया है ?" तब श्री गुरू जी ने कहा--

"हे मनुष्यों के राजा ! मारने तथा जीवित करने वाला तो साहिब आप है, फकीरों की प्रार्थना होती है, कृपा ईश्वर की है ।"[1]

पातशाह–फकीर साईं । मैंने बात समझी नहीं ।

तब आपने कहा–मारना तथा जीवित करना साहिब (ईश्वर) का अपना काम है, अन्य किसी का नहीं, फकीर के पास तो केवल प्रार्थना है शुभ काम के लिए किसी समय भी प्रार्थना फकीर कर सकता है, वह सुनने वाला ईश्वर सुन लेता है, यदि वह चाहे तो कृपा भी कर देता है । फकीर की तो प्रार्थना ही होती है । दया फिर भी ईश्वर के हाथ में है । तब पातशाह चकित होकर कहने लगा कि यदि तुम प्रार्थना करो तो क्या फिर यह मर भर जाये ? मारो तो ! तब श्री गुरू जी मुस्कराये । फिर नयन गम्भीर हो गये, माथे पर बल-सा पड़ा और फिर ऊपर आकाश की ओर देखा और कहने लगे–"मारैं जीवावै सोई ।। नानक एकसु बिनु अवरु न कोई ।।"[2]

यह कहते गये हाथी गिरता हुआ नीचे हो होता हुआ लेट गया । लम्बे-लम्बे स्वाँस आये, नयन टकटकी बाँधकर मुँद गये, हाथी की मृत्यु हो गई ! यह देखकर पातशाह तथा उसके साथ आये सारे चकित हो गये । कुछ सहम गये, कुछ चुप्पी छा गई, पर फिर पातशाह को एक बात सूझी और कहने लगा अब जीवित कर दो । तब श्री गुरू जी हँस पड़े और कहने लगे–हे मनुष्य पर आज्ञा चलाने वाले ! अब यह नहीं उठ सकता । यह खेल नहीं था, फकीर की प्रार्थना और ईश्वर की दया थी । जहाँ पर सत्कार की आवश्यकता होती है । तब पातशाह ने कहा क्या कारण है ? तब श्री गुरू जी ने कहा--"सुनो पातशाह ! लोहा लोहा है, अग्नि नहीं है, अग्नि में डालो तो लाल अंगार हो जाता है । यह रत्ती-भर हाथ पर उसको जलाये बिना टिक नहीं सकता अग्नि का अंगार कोई क्षण-भर हाथ पर टिक जाता है । वैसे ही ईश्वर के रंग में लाल हो चुके ईश्वर की सट्टी उठा लेने पर उनकी सट्टी उठने से रह जाती है । भाव यह था कि फकीर ईश्वर का प्यारा व्यक्ति होता है, पर दिन-रात ईश्वर के स्मरण में रहने के कारण अग्नि में पड़े लोहे की भाँति भक्ति उस ईश्वर का रूप हो जाता है; उससे फिर वह बात हो पाती है जो वह ईश्वर के संयोग वाला चाहता है, कि वह हो ।

तब पातशाह के साथ जो नज़ाम[1] नामक फकीर था, वह समझ गया और पातशाह को कहने लगा 'दरवेश कामल है ठीक कहता है, ईश्वर अपने प्यार में अपने प्यारे की बात मान लेता है और

---

१. पुरातन जन्म साखी ।

२. पुरातन जन्म साखी ।

अनुकम्पा कर देता है, पर प्यारे के किये हुए को वह उलटाता नहीं, उसका विरद है ।' वह पातशाह जो अत्यन्त कठोर था अब नरम हुआ, कहने लगा—हे दरवेश ! कुछ स्वीकार करो ।' तब गुरू जी ने कहा – 'हमें एक ईश्वर की माँग है, उसकी भूख है, उसकी आवश्यकता है, अन्य भूखें मर चुकीं हैं; अन्य कोई इच्छा नहीं, एक ईश्वर के दर्शनों की इच्छा है ।[२] पातशाह ने सब समझ लिया कि यह पूरण फकीर है । जो कुछ फकीरों में देखना चाहता था देखा और प्रणाम करके चला गया और गुरू बाबा जी वहाँ से चल दिये ।[३]

□□

---

१. गुरू नानक प्रकाश ।

२. नानक मुखि खुदाइ कि बिआ बेपरवाही । असां तलब दीदार की बिआ न काई ।।

[पुरातन जन्मसाखी]

३. इस टीले पर गुरुद्वारा है, गुरू नानक देव जी की यादगारी चरण पादुका हैं । गुरू हरगोबिंद जी ने भी यहाँ पर ठिकाना किया था ।